इलाचन्द्र जोशी साहित्य और समीक्षा

भूमिका लेखक

डा० इन्द्रनाथ मदान

लेखक

प्रो० प्रेम भटनागर

१९५६

मध्य प्रदेश साहित्य प्रकाशन, बिलासपुर

जीवन सहचरी उर्मिल को—
प्रेम भटनागर

विषय सूची

भूमिका

इलाचन्द्र जोशी की उपन्यास-कला का मूल उद्देश्य पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर व्यक्ति चिन्तन एवं व्यक्ति-विश्लेषण है। वह स्वयं व्यक्ति के अन्तर्जगत की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करते हुए लिखते हैं—'आधुनिक मनोविज्ञान ने अत्यन्त परिपुष्ट प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया है कि मानव-मन की भीतर की अतल गहराई में एक गहन रहस्य, अपार, अपरिमित जगत् वर्तमान है, जिसकी एक निजी स्वतन्त्र सत्ता है। यह जगत् किसी भी बाहरी भौतिक अथवा सामाजिक अनुशासन से परिचालित नहीं होता।' इसलिए वह प्रेमचन्द की सामाजिक परम्परा का परित्याग कर, अर्थात् बाह्य सामाजिक परिस्थितियों के चित्रण का पथ छोड़कर, मानव के अन्तस् चेतना के गहरे स्तरों में प्रविष्ट होकर उसके भीतर दमित वासनाओं तथा कुण्ठित भावनाओं का विश्लेषण करने का प्रयास करते हैं। उनकी उपन्यास-कला का विकास वैयक्तिक समस्याओं के चित्रण द्वारा व्यष्टि तथा समष्टि में सामञ्जस्य खोजने के प्रयत्न का द्योतक है। 'लज्जा' से 'जहाज का पंछी' तक उनका उपन्यास-साहित्य 'अहं' की समस्याओं का निरीक्षण एवं परीक्षण करने के उद्देश्य से प्रेरित है। श्री भटनागर ने प्रस्तुत पुस्तक में जोशी जी की औपन्यासिक रचनाओं की समीक्षा द्वारा उनके चिन्तन एवं कला के स्वरूप का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। इस आलोचनात्मक निबन्ध में उपन्यासकार के जीवन-दर्शन, प्रेम तथा विवाह सम्बन्धी धारणाओं, चरित्र-चित्रण तथा कथानक-सम्बन्धी विचारों का विस्तृत एवं गहन अध्ययन उपलब्ध होता है। आलोचक ने जोशी की उपन्यास-कला के मूल में फ्रायड के यौन-सम्बन्धी सिद्धान्तों को प्रेरक शक्ति के रूप में स्वीकार किया है। परन्तु इस सम्बन्ध में मेरी निजी धारणा है कि जोशी जी का उपन्यास-साहित्य फ्रायड के यौन-सम्बन्धी सिद्धान्तों से इतना प्रभावित नहीं है जितना एडलर के हीनता-भावना-सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों से प्रेरित है। जोशी जी के उपन्यासों में प्रायः सभी कथा-नायक तथा नायिकाएँ इसी हीनता की भावना से ग्रस्त हैं। उनका हीनता जन्य अहं उग्र रूप धारण कर उनके जीवन की गतिविधि को संचालित करता है। पुरुष-पात्रों के अहं की पूर्ति के लिए नारी को साधन बनाने के प्रयास में उनका अहं आहत होकर अनेक ग्रन्थियों का शिकार बन जाता है। आधुनिक नारी पुरुष के निरंकुश अहं तथा प्रभुत्व को स्वीकार करने

से इन्कार करती है। पुरुष तथा नारी के परस्पर विरोध के फलस्वरूप मानसिक तनाव की स्थिति का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। जोशी जी इस स्थिति को व्यक्ति-विकास के लिए घातक समझते हैं। इसलिए उन्होंने पुरुष की अहंवृत्ति पर कठोर एवं गहरे आघात किये हैं, जिससे वह सचेत तथा सजग होकर निजी व्यक्तित्व के संतुलन को स्थापित कर सके। श्री भटनागर ने लेखक की प्रत्येक उपन्यास-रचना का विश्लेषण कर उसके मूल उद्देश्य को उद्घाटित करने का पूरा प्रयास किया है, जिससे उनकी पैनी आलोचनात्मक दृष्टि का परिचय मिल जाता है। उनका निबन्ध जोशी जी की उपन्यास-कला के विश्लेषण का न केवल प्रथम प्रयास है, वरन् मौलिक प्रयास है।

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इन्द्रनाथ मदान।
पंजाब विश्वविद्यालय।

इलाचंद्र जोशी साहित्य और समीक्षा

जीवन और व्यक्तित्व

कलाकार की कला का मूल्यांकन करने से पूर्व उसके व्यक्तिगत जीवन का परिचय प्राप्त करके व्यक्तित्व का विश्लेषण कर लेना हितकर हुआ करता है, क्योंकि कला कलाकार के व्यक्तिगत जीवन की दमित अनुभूतियों, स्मृतियों एवं कल्पनाओं की अभिव्यक्ति है। कलाकार का व्यक्तित्व जितना महान एवं गौरवपूर्ण होगा उसकी कला उतनी ही महत्त्वपूर्ण और सम्पूर्ण होगी।

जोशी जी का जन्म मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में त्रयोदशी की शुभ तिथि को संवत् १९५९-तदनुसार तेरह दिसम्बर १९०२ को अल्मोड़े के एक सुसंस्कृत ब्राह्मण कुल में हुआ। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। कुछ शताब्दियाँ हुईं कि आपके पुरखे मैदान छोड़ कर पार्वतीय प्रदेश में आ बसे थे। वहीं पर पढ़-लढ़ कर जीविका अर्जन करते और पार्वतीय जीवन की विभीषिका देखते हुए जीवन यापन कर रहे थे।

आपके पिता स्वर्गीय पंडित चन्द्रवल्लभ जोशी एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। चित्रकला और मूर्तिकला से उन्हें विशेष प्रेम था। आप जीवन के प्रति एक दार्शनिक दृष्टिकोण तो रखते ही थे किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि यथार्थ के प्रति पूर्ण रूप से उदासीन रहे हों। उन्होंने जीवन में कभी भी यथार्थ की अवहेलना नहीं की और न ही अपने को यथार्थ में डुबाये ही रखा। "अनबूड़े बूड़े, तिरे जे बूड़े सब अंग" वाली कहावत आपके जीवन पर पूर्णतया चरितार्थ होती है। जीवन के सभी अंगों में बूड़े रहने के कारण वह उनसे उबर भी गये थे।

आपकी माता जी विशेष पढ़ी लिखी न होने पर भी परम कुशल महिला थीं। वह कभी यथार्थ से विमुख नहीं हुईं। उन्होंने जीवन की प्रत्येक विषमतम परिस्थिति का डट कर मुकाबला किया और इनके लालन-पालन में कोई कमी उठा न रखी। वह जीवन की गहराईयों में डूबकर अमूल्य रत्न संजो लाईं। गीता के निर्लिप्त एवं निरासक्त जीवन दर्शन की आप पर एक गहरी छाप पड़ी थी और आपने भी एक दार्शनिक दृष्टिकोण अपना लिया था।

आपके बड़े भाई डा० हेमचन्द्र जोशी एक बड़े भारी विद्वान् हैं। भाषा शास्त्री हैं। जिस घर में पल कर यह बड़े हुए, वह पहाड़ी वातावरण से घिरा था। प्रातः-

कालीन सूर्य के प्रकाश में रंजित हिमालय के दर्शन नित्य नियमित रूप से होते थे। सन्ध्या को सूर्यास्त-छटा भी हिमाच्छादित पर्वतों पर एक अपूर्व मोहक दृश्य इनके आगे प्रस्तुत करती थी।

जहाँ एक ओर परिवार की विद्वत् मण्डली इनके व्यक्तित्व को बनाने लगी वहाँ दूसरी ओर प्रकृति भी नित नवीन नृत्य दिखाने लगी शिशु जोशी कुछ गीत रचने लगा और गाने लगा। डा० हेमचन्द्र सदृश्य प्रेरक भाई प्रोत्साहन प्रदान करने लगा और जोशी का व्यक्तित्व निखरने लगा।

आपका शैशव काल विशेष रूप से सुखकर व्यतीत हुआ। सबसे छोटे पुत्र होने के कारण सभी के लाड और प्यार के भाजन बने रहे। घर में ही साहित्यिक और सांस्कृतिक वातावरण भी उपलब्ध हो गया तथा स्वजनों से ही साहित्यिक अभिरुचि के अनुकूल प्रेरणा भी मिली। घर में ही पिता जी का निजी पुस्तकालय था, जिसमें देशी, विदेशी साहित्य की बहुत सी श्रेष्ठ पुस्तकें उपलब्ध थी। आपके बड़े भैया में एक अपूर्व लगन रही है, नित प्रतिदिन नवीनतम पुस्तकें पढने और खरीदने की। यह शौक अपने आप मे महत्वपूर्ण है, जो दोनों भाइयों मे रहा है। कही से भी पता चला नही कि अमुक श्रेष्ठ पुस्तक छपी है, कि आपने झट से उसे प्राप्त किया नही। यही क्रम चलता रहा और आप धीरे-धीरे संसार की श्रेष्ठतम पुस्तकों का स्टाक अपनी लाइब्रेरी में भरते गये। निजी पुस्तकालय की सुविधा होने के कारण आप अध्ययन और मनन की ओर उन्मुख हुए।

हाईस्कूल के जीवन-काल में ही विश्व-साहित्य की चुनी हुई पुस्तकों का अध्ययन और मनन आपने कर डाला। रामायण, महाभारत, और कालिदास की रचनाएँ पढी, साथ ही शेली, कीट्स और टेनीसन की कविताएँ भी। उपन्यास के क्षेत्र में आप ने टालस्टाय, डास्टावस्की और चेखव की कृतियो के साथ-साथ फ्लोबेर, रोमारोला तथा जोला की रचनाएँ भी पढ डाली। छोटी-सी उमर और इतना बड़ा भारी साहित्य—फल यह हुआ कि आपको साहित्यिक कृतियाँ पढ़ने का चस्का पढ गया। कोर्स की पुस्तकों मे अधिक जी ही न लगता। जैसे-तैसे करके मैट्रिक पास किया और घर से भाग खड़े हुये।

घर से भाग कर आप कलकत्ता पहुँचे। वही आपकी भेंट बंगला के (बंगला के ही क्यो विश्व साहित्य के कहिए) श्रेष्ठ उपन्यासकार शरत् चन्द्र चट्टोपाध्याय से हुई। आप उनसे पहिली बार सन् १९२१ में मिले जब कि आपकी आयु उन्नीस वर्ष की थी। यह मिलन भी अपूर्व ही रहा। परिचय मित्रता में परिणित हो गया। घनिष्ठता बढ़ती गई और साहित्यकार के मन पर साहित्यिक संस्कार पड़ते गये। शरत बाबू बड़े ही सहृदय मानव थे। वह व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करना जानते थे। मानव-हृदय की उन्हे परख थी। उन्होंने जोशी मे दबे कलाकार को उभारा। दोनों

मित्रों में प्रायः प्रतिदिन नाना साहित्यिक विषयों पर डट कर वाद-विवाद होता। मानव-मन के विभिन्न रूपों को दोनों कुरेदते ही चले गये और उसके विराट स्वरूप को विविध आकार दे-देकर अपने-अपने साहित्य में प्रस्तुत करने लगे।

कलकत्ता में आपको यथार्थ जीवन के अनेकों कटु अनुभव प्राप्त हुए। एक ओर लाखों जनों का ठाठें मारता हुआ जन-समुदाय और उसका व्यस्त जीवन, जहाँ सभी प्रातः से उठ कर सायं पर्यंत जीविका जुटाने की धुन में एक दूसरे से सटे हुए होने पर भी मन से पूर्णतया दूर बढ़ते हैं, चलते हैं और बेखबर चलते हैं; तो दूसरी ओर परम अनुभूतिशील यह कलाकार जो सोचता है जीवन क्या है, व्यक्ति क्या है, संसार क्या है, प्रकृति क्या है, नारी क्या है और भाव क्या है?—कहाँ हुआ इन दोनों का मिलाप। क्या कलाकार कलकत्ता मय हो गया अथवा कलकत्ता कलाकार मय हुआ? प्रश्न जटिल है। दोनों ने ही एक दूसरे को अपने में समेटा और लपेटा है। कलकत्ता ने ही लेखक को जीवन के जीवट रूपों का साक्षात्कार कराया है और उसी के जन-जीवन को विविध रूपों में आपने अपनी दो प्रसिद्ध रचनाओं 'जिप्सी' और 'जहाज़ का पंछी' में अमर कर दिया है। कलकत्ता केवल मात्र एक विराट नगरी ही नहीं है, अपितु जीवन-अभिनय को दिखाने वाली सजीव रंगस्थली भी है, इस निष्कर्ष पर दोनों रचनाओं को पढ़ते ही हम पहुँच जाते हैं।

जोशी जी की जन्म स्थली अलमोड़ा चारों ओर से पार्वतीय घाटियों से घिरी हुई है। पहाड़ी प्रदेश में जीवन जटिल बन जाता है। शेष संसार से एक मात्र संबंध का साधन मोटर का भी उन दिनों वहाँ प्रविष्ट न हुआ होगा और चालीस मील दूर एक रेलवे स्टेशन काठगोदाम तक पहुँचने के लिए जिन कठोर मार्गों और विकटतम परिस्थितियों में से होकर कलाकार को गुजरना पड़ा होगा—उनकी कल्पना मात्र ही काया में एक अजीब सी सनसनाहट पैदा कर देती है। किन्तु उसे तो आना था और वह आया भी। वह भी सब दुविधाओं को पार करता हुआ—भावलोक और कल्पना-जगत् के मधुरतम पाश के बन्धन को काटता हुआ। कविता के मनोहारी संसार से भागता हुआ जब यह कलाकार हाँफता सा मैदान में उतरा तो इसने जीवन के नग्न रूपों को और परखा। प्रकृति का साथ छूट जाने पर कवि जोशी के हृदय पर आघात पहुँचा। किन्तु उसकी पूर्ति मैदान के औपन्यासिक बालू में कर दी। लेखक को लिखे एक पत्र के उत्तर में कलाकार ने स्वीकार किया है कि हाई स्कूल समाप्त करने के कुछ ही समय बाद से मुझे काव्य-जगत के परी लोक से उतर कर जीवन के ठोस धरातल पर आना पड़ा। तब से मेरा आज तक जीवन के ऐसे कठिन और कठोर संघर्षों से वास्ता पड़ा है कि घोरतम यथार्थ की उपेक्षा करना मेरे लिए असंभव हो गया।

आपके साहित्यिक व्यक्तित्व के तीन पहलू हैं। आप जन्म से ही प्रकृति प्रेमी हैं

और घोर रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ आपके अन्तर्मन में जड़ें जमाये बैठी हैं। दूसरे आदर्शवादी हैं। साथ ही घनघोर यथार्थवादी भी। इन तीनों रूपों का विश्लेषण कर देना परम आवश्यक है।

प्रकृति के रमणीय वातावरण में पले होने के कारण उसकी एक अमिट छाप आपके व्यक्तिगत जीवन और साहित्यिक रचनाओं पर पड़ी है। विजनवती के रोमांटिक गीत और छायावादी कविताएँ इसका ज्वलन्त प्रमाण हैं। आपके श्रेष्ठतम उपन्यास संन्यासी की काव्यमयी भाषा और जमुना आदि के प्रवाहमय वर्णन भी इसी धारणा की पुष्टि करते हैं।

आपका आदर्शवाद भी अपूर्व है। एक सुसंकृत ब्राह्मण-परिवार में पलने के कारण आदर्शवाद के प्रति मोह परम आवश्यक और स्वाभाविक है। साथ ही जीवन की विकटतम परिस्थितियों में से गुजरने के कारण यथार्थ के प्रति उन्मुख होना भी कोई जादू के डंडे का खेल नहीं रह जाता। समाज और नीति के उच्चतम सिद्धान्तों के आप कायल रहे हैं। सांस्कृतिक मान्यताओं और नैतिक मर्यादाओं के प्रति आपके हृदय में विशिष्ट स्थान है। यथार्थ के प्रति एक संतुलित दृष्टिकोण है, जिसके द्वारा व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण होने की अधिक संभावना है और हानि होने का कोई खटका नहीं है।

आदर्श और यथार्थ केवल मात्र वाद के स्वरूप में जोशी जी को स्वीकृत नहीं हैं। उन्होंने जीवन में न तो कभी कोरी भावुकता और काल्पनिक आदर्शवाद का ढिंढोरा पीटा है और न ही कुत्सित यथार्थ का राग अलापा है। आदर्श और यथार्थ का एक मिश्रित रूप उन्होंने आँका है और उसी का साक्षात्कार अपने पाठकों को कराने का प्रयत्न भी किया है। वह सशक्त शब्दों में उन लोगों का विरोध करते रहे हैं जो केवल मात्र वाद विशेष का प्रचार भर करने के लिए किसी भी वाद का आश्रय लेते हैं। जीवन और साहित्य दोनों में ही जो वाद स्वतः ही सहज रूप में घुस आये वही उन्हें प्रियकर है, अभीष्ट है। प्रचारार्थ प्रयुक्त वाद के वह घोर विरोधी हैं।

आपका आदर्शवाद बनावटी और दिखावटी आदर्शवाद कभी नहीं रहा। जीवन की विकटतम और विपरीततम परिस्थितियों में भी आप अपने स्वकल्पित आदर्शों पर बड़ी शान के साथ डटे रहे हैं। आपके स्वकल्पित आदर्श का प्रथम सिद्धान्त है कि मानव अपने प्रति ईमानदार रहे। आपकी दृष्टि में वह व्यक्ति जो अपने प्रति ही ईमानदार नहीं रह सकता, कदापि-कदापि समाज का हित नहीं कर सकता, दूसरों के प्रति और ईमानदार नहीं रह सकता। दूसरा सिद्धान्त है—अटूट लगन। किसी को प्राप्ति के लिए व्यक्ति में सतत परिश्रम की चाह और अटूट लगन का आवश्यक है। परम दुर्गति की परिस्थितियों में ही इन दोनों सिद्धान्तों की प्रा करती है। जोशी जी को स्वयं जीवन में भूखे रहकर, ठोकरें खाते हुए

यह परीक्षा देनी पड़ी है और बड़ी वीरता का परिचय देकर फर्स्ट-क्लास नम्बर लेकर इसमें वह सफल भी हुए हैं।

आपके विचारानुसार यह समाज बड़ा जालिम ठहरता है, जो पग-पग पर व्यक्ति की उन्नति के मार्ग में नित्य नये अवरोध प्रस्तुत करता चलता है, किन्तु वीर लोग घबराया नहीं करते, वे तो चट्टान की तरह अपने आदर्शों पर डटे रहते हैं और बढ़ते रहते हैं।

जोशी जी ने अपने सत्तावन वर्षीय जीवन में यथार्थ की आंधी के अनेक झोंके सहे हैं। प्रकृति-प्रेम से ओत-प्रोत जुही की कली से भी कोमल हृदय यौवन में पदार्पण करते ही जीवनगत विकलता और विच्छिन्नता से ओत-प्रोत हो गया। दूसरों में आत्म करुणा जगाने की कला से अनभिज्ञ, परम आदर्शवादी युवक सहज पारिवारिक स्नेह और सौहार्द से भी वंचित रहा और कई वर्षों तक निरुद्देश्य घूमता रहा। घूमते हुए उसे अधिकतर अवज्ञा, तिरस्कार, उपेक्षा और घृणा का प्रसाद मिला, शारीरिक और मानसिक थकान मिली किन्तु फिर भी ओजस्वी साहित्यकार घबराया नहीं।

यौवन के आते ही यौवन का आनन्द कौन लूटना नहीं चाहता? यौवन के उन्माद का नशा किस पर नहीं चढ़ता, प्रेम के गीत कौन नहीं गाता? किन्तु यौवन और प्रेम, सौंदर्याकर्षण और चपलता सभी को अपने जाल में जकड़ने में समर्थ नहीं हैं। भौतिक विषमता और कठोर यथार्थ से टक्कर लेने वाले आदमी विरले ही होते हैं और उन्हीं विरलों में हमारे हिन्दी उपन्यास-जगत के इन्दु श्रीयुत इलाचन्द्र जोशी भी हैं। वह एक कुतूहली दर्शक के नाते प्रेम और सौंदर्य को देखते भर रहे, उसमें डूबने की कोशिश उन्होंने न तो कभी की ही और न ही किसी दूसरे को उस दिशा में डूबते देख उसका समर्थन ही किया। हाँ आवश्यकता पड़ने पर उसका विरोध अवश्य किया और व्यक्तिगत उन्नति के मूल्य पर किया।

प्रेम के क्षेत्र में भावुकता की अपेक्षा यथार्थ और आदर्श दोनों को ही आपने बड़ा महत्व दिया है। अपने वैयक्तिक जीवन में आप कभी भी किसी की ओर प्रेम करने को उन्मुख नहीं हुये, भले ही कोई ललना आप पर स्नेहोन्मुख होकर आपकी ओर झुकी। ऐसी प्रत्येक ललना को आप जीवन की यथार्थ स्थिति से अवगत कराते रहे। अपने आदर्शों की रक्षा हित आपको अनेक बार 'तुम पुरुषार्थहीन हो। नपुंसक हो। कायर हो।' आदि व्यंग्यबाण भी सुनने पड़े, किन्तु फिर भी यह महारथी घबराया नहीं, डिगा नहीं। हाँ यह जरूर हुआ कि अनेक बार कुछ विद्रोहात्मक और विनाशात्मक विचार उनके मस्तिष्क में बवंडर हलचली मचाने के लिए आते रहे। इन्होंने अनेक बार असामाजिक और अनैतिक मार्ग पर चलने की बात सोची, किन्तु जब-जब यह ऐसा सोचते तब-तब इनके अवचेतन में बैठा देवता इन्हें धिक्कारता रहा और उस मार्ग को स्वीकार करने से पूर्व एक चेतावनी ही देता रहा—रे जोशी तुझे

यथार्थवाद की आधारशिला पर जीवन-सम्बन्धी आदर्शात्मक स्वर्णिम सिद्धान्तों का हिमालय खड़ा करना है और उस हिमालय के ऊपर मंडित शुभ्रश्वेत हिम जिस पर सूर्य की किरणों के विविध रंगों का खेल देखना है, यदि यों ही डगमगा गया तो जीवन भर न उभर सकेगा।

इनके बारे में यह कहा गया है कि जोशी जी ने हिन्दी कथा-जगत को एक 'नयी धारा' दी है। तब आपने कहा—"कुछ लोग इसे प्रशंसा के रूप में ले सकते हैं, पर मैं अनिवार्य रूप से ऐसा नहीं मानता। केवल एक 'नयी धारा' दे देना, या एक तथाकथित 'नया स्कूल' कायम कर देना ही कोई बड़प्पन की बात नहीं हो सकती। बड़प्पन तो तभी माना जा सकता है जब उस नयी धारा, नये स्कूल का उद्भावन समाज में प्रचलित गतानुगतिक विचार-पद्धति में तीव्र आघात करने और उसमें किसी हद तक परिवर्तन करने में समर्थ हो।" बड़प्पन न मानने की बात लिख कर जोशीजी ने अपनी महानता का परिचय दिया है।

वास्तविक बात यह है कि जोशी जी द्वारा प्रवालित स्कूल ने यथेष्ट उन्नति तो अभी करनी है किन्तु इधर कुछ वर्षों में जितनी भी उन्नति इस क्षेत्र में हुई है उसे हमें प्रतिष्ठित स्थान देना ही पड़ता है।

आपके स्वभाव की विचित्रता भी अवलोकनीय है। यद्यपि शैशव से ही आपने लेखन-कार्य आरम्भ कर दिया था और जब सातवीं कक्षा में पढ़ते थे, उन्हीं दिनों 'सुधाकर' नाम से एक हस्तलिखित साहित्यिक मासिक पत्रिका निकाली थी, जिसमें यदा-कदा कविवर पंत और यशस्वी नाटककार गोविन्द वल्लभ पंत की रचनाएँ प्रकाशित होती रहीं, तो भी पुस्तक रूप में कोई चीज़ छपाने की लालसा आप में कभी जाग्रत नहीं हुई। इसे एक संयोग मानें या मित्र बन्धुओं का सुझाव कि घृणामयी (लज्जा इसी पुस्तक का नव संस्करण है) पुस्तकाकार में हमारे सामने आयी। इस लघु उपन्यास को आपने सन् १९२७ में लिखा था और इसका प्रकाशन सन् १९२९ में जैनेन्द्र बाबू के प्रथम उपन्यास परख के साथ हुआ।

सन् १९२० से लेकर सन् १९४० तक लेखक का काल आपके जीवन का संघर्ष काल है। इन बीस वर्षों में इन्होंने जीवन के सैंकड़ों उतार-चढ़ाव देखे। दसवीं की कक्षा पास करने के पश्चात् आप कलकत्ता चले आये। वहीं कई वर्षों तक बेकारी या अर्ध बेकारी की अवस्था में रहे। स्थिरता या तो आपके जीवन में आई नहीं, आई तो उससे आपका अधिक लगाव न रहा।

सन् ३२ में अपने बड़े भाई डा० हेमचन्द्र जोशी के साथ मिलकर मासिक पत्रिका 'विश्वामित्र' का प्रकाशन आरम्भ किया। उन्हीं दिनों संन्यासी लिखना आरम्भ किया। यह रचना छः मास तक धारावाहिक रूप से 'विश्वामित्र' में छपती रही, किन्तु कुछ सामयिक परिस्थितियों के कारण पत्रिका का प्रकाशन स्थगित हो गया।

१९ वर्ष तक उन्होंने भी आंधी का सामना किया और सन् ३८ में पुनः लिखना शुरू किया, ३९ में इसे पूरा कर पाये। '४० में यह पुस्तकाकार में छप पाई। संन्यासी कदाचित इनकी सर्वोत्तम रचना है। इसके प्रकाशन के साथ-साथ आप साहित्य-गगन में इन्दु सम चमकने लगे। वैयक्तिक साधना प्रतिफलित हुई और आपको साहित्यिक प्रेरणा मिली। आप मानसिक विश्लेषण के आधार पर नित नवीन प्रयोगात्मक साहित्य लिखने लगे। लगभग आठ वर्षों तक यह साधना अपनी तीव्र गति से चलती रही और हिन्दी जगत् को आपने प्रति वर्ष एक-से-एक बढ़कर अनुपम देन दी। 'दीवाली और होली', 'प्रेत और छाया', 'पर्दे की रानी' चिर स्मरणीय हैं। शेष रचनाओं का भी समुचित आदर हुआ है। स्वतन्त्रता के पश्चात् जब भारतीय साहित्यकारों का मान बढ़ा तब आपको भी पूछ हुई। आकाश-वाणी में आपको भी प्रतिष्ठित स्थान मिल गया और आपके कंधों पर नई-नई जिम्मेदारियाँ आ पड़ीं। साहित्य-साधना भी चलती रही और चल रही है किन्तु उसकी गति मध्यम पड़ गई है।

जिन साहित्यकारों तथा विचारकों से आप प्रभावित हुए हैं उनकी सूची बड़ी लम्बी है और नाम भी भारी भरकम हैं। प्राचीन तथा अर्वाचीन, भारतीय और पाश्चात्य दोनों साहित्यों का गहन अध्ययन आपने किया है। एक सीमा तक वह उनके प्रभाव को अपने ऊपर स्वीकार भी करते हैं।

प्राचीन भारतीय साहित्य में महाभारत ही आपको सर्वाधिक प्रिय रही है। आप इसे विश्व का सबसे बड़ा, सबसे प्राचीन और सबसे सुन्दर उपन्यास मानते हैं। न केवल आकार की दृष्टि से अपितु कला की दृष्टि से भी व्यास रचित महाभारत नामक ग्रंथ बेजोड़ है। उसमें वर्णित उपकथाएँ व घटनाएँ किसी भी उपन्यासकार को अनन्त प्रेरणा प्रदान कर सकती हैं, ऐसा आप मानते हैं। महाभारत में चरित्र भी बेजोड़ हैं। महाभारत के पात्र इतने सजीव और मोहक हैं कि एक ही दृष्टि में किसी भी पाठक को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। उन्हीं पात्रों से प्रभावित होकर सम्भवतः आपने मानव-मन के अनन्त रूपों का अध्ययन कर डाला और उन्हें रूपांतर कर हमारे आगे पेश भी किया है।

महाभारत काल के पश्चात् सबसे प्रिय कवि और नाटक जिन्होंने आपको प्रभावित किया है, महाकवि कालिदास हैं। कालिदास के प्रबल समर्थक होते हुए भी आपने कवि के कटु आलोचकों, विशेषकर घटखर्पर आदि की निन्दा नहीं की। आपने 'भिन्न रुचिर्हि लोकः' नामक निबन्ध में लिखा है—"मैं उसकी ईमानदारी में संदेह नहीं करता और न यह कहकर उसकी बात टाली जा सकती है कि वह या तो मूर्ख था या ईर्ष्यालु। उसे मैं मूर्ख इसलिए मानने को तैयार नहीं हूँ कि उसने जो दृष्टांत उपस्थित किया है वह जीवन की यथार्थता की दृष्टि से पूर्णतः युक्तिसगत है। ईर्ष्यालु वह हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता, पर जब वह अपनी बात के पक्ष में एक वजन-

दार तर्क दे रहा है तब हमे उस तर्क के आधार पर ही उसकी मनोवृत्ति का परीक्षण करना चाहिए, न कि अनुमान से।" इस प्रसंग द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जोशी जी प्रभाव को ईमानदारी से ग्रहण करते हैं। वह उसे यथार्थ की कसौटी पर कस कर अपनाते हैं न कि केवल भावुकता के प्रवाह में बह कर। हाँ, यह अवश्य है कि प्रभाव का सम्बन्ध आप रुचि से अवश्य जोड़ते हैं।

आप हिन्दी साहित्य के प्रथम कलाकार है जिन्होंने साहित्यिक क्षेत्र मे मनोविज्ञान को प्रश्रय दिया है। मनोविज्ञान में विशेष रुचि होने के कारण आपने मनोवैज्ञानिक कथाकारों और विचारकों के प्रभाव को ग्रहण किया है। यदि आपने प्राचीन ग्रीक साहित्य में से ईस्काइलुस के नाटकों के प्रभाव को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है तो वह भी केवल मनोवैज्ञानिक रुचि विशेष के कारण ही समझिये और यदि तुलसीदास, गेटे, रवीन्द्र और शैली तथा कीट्स की रचनाओं की प्रशंसा की है तो भी मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर ही।

जोशी जी की विशेष प्रसिद्धि का श्रेय इनके उपन्यासों को है। उपन्यास लिखने की प्रेरणा इन्हे शैशव में ही रूसी तथा फ्रांसीसी उपन्यासकारो तथा विचारकों की रचनाएँ पढ़कर मिली। आपने लेखक को लिखे एक पत्र में स्वीकार किया है कि उपन्यास के क्षेत्र मे उन्हे सबसे अधिक उन्नीसवी शती के रूसी लेखकों ने प्रभावित किया है, और उनमें भी टालस्टाय, डास्टाएव्सकी और चेखव के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। फ्रांसीसी साहित्यकारो मे फ्लोबेर (flaubert) की प्रसिद्ध औपन्यासिक रचना 'मादाम बोवेरी' की शैली उन्हे पसंद है। उसके बाद फ्रांस मे केवल रोमाँ रोलां ही एक ऐसे कथाकार हैं तथा विचारक थे जिन्होने उन्हे बहुत अधिक प्रभावित किया।

हिन्दी उपन्यास-साहित्य की प्रगति से आप पूर्णतः सतुष्ट हैं। आपके मत के अनुसार यह साहित्यिक गतिविधि निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर हुई है। विशेषकर पिछले पन्द्रह-बीस वर्षों मे तो हिन्दी जगत मे कुछ ऐसे उपन्यास आये हैं जो विश्व-साहित्य के चुने हुए उपन्यासो के साथ टक्कर ले सकते हैं। उनका स्तर बहुत ऊँचा है। भावों की प्रौढ़ता उनमे उपलब्ध हो सकती है। कला-सौष्ठव की तुला पर वे पूर्ण उतरते हैं। शैलीगत मौलिकता का परिचय उनसे मिल सकता है।

संस्कारों का इस जीवन में विशिष्ट महत्व और प्रभाव सदैव बना रहा है। जन्मजात संस्कार और बाल्यकालीन स्मृतियाँ कभी-कभी हमारे जीवन की दिशा परिवर्तन कर देती हैं। शैशव अवस्था में मन सरल होता है, बुद्धि तीव्र होती है।

आस्था का प्रभाव भी अमिट है। जीवन के नियम अति सरल हैं और जिज्ञासा का संबल घोर-से-घोर विपदा में भी सहायक हुआ करता है। धार्मिक, पारिवारिक और सामाजिक आस्थाएँ हमारे व्यक्तित्व को बनाने अथवा बिगाड़ने में विशिष्ट योग दिया करती हैं। एक ब्राह्मण-कुल में जन्म, मध्यवर्गीय परिवार में लालन पोषण और पहाड़ी जीवन की भरपुर, स्निग्ध एवं शीतल वायु ने विनम्र जोशी की रचना की है।

इलाचंद्र जोशी साहित्य और समीक्षा

कला और कृतित्व

मनोविज्ञान को अपनी कला और साधना का मूल आधार बनाने वाले, मध्यम वर्ग, विशेषकर निम्न मध्य वर्ग के मनोविकारग्रस्त व्यक्तियों की जीवनगत अनुभूतियों एवं कल्पनाओं का विश्लेषण करने वाले, तथा मानव के अहंभाव पर कुठाराघात कर निर्भयकता पूर्वक जीवन की नव व्याख्या करने वाले यह प्रथम कलाकार हैं।

मनस्तत्व की प्रधानता होने के कारण इनकी कृतियों में वैयक्तिक प्रवृत्तियों का बाहुल्य है, किन्तु ये प्रवृत्तियाँ स्वस्थ सामाजिक प्रवृत्तियों के विकास में अधिक अवरोध प्रस्तुत नहीं करतीं, अपितु अधिकतर उन्हें प्रेरणा देती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। कतिपय आलोचकों ने इनकी व्यक्ति सापेक्षता को समाज निरपेक्ष एवं नीति विरुद्ध सिद्ध करने की चेष्टा की है, जो विचारणीय है। यह ठीक है कि आपने प्रचलित सामाजिकता का विरोध किया है, उसे व्यक्ति के व्यक्तित्व प्रकाशन के मार्ग में एक बाधक माना है, किन्तु यह गलत है कि वह असामाजिक प्राणी है, अनैतिक जीव है, अवाञ्छनीय व्यक्ति है। उनका व्यक्तिगत जीवन इस तथ्य का ज्वलन्त प्रमाण है कि वह सदाचारी, समाजसेवी, देश भक्त, साहित्य प्रेमी सहृदय मानव हैं जो कला के क्षेत्र में विशिष्ट दृष्टिकोण रखते हैं। आप व्यक्तिवाद को औपन्यासिक कला में प्रतिष्ठित करने वाले पहले कलाकार हैं। पतित-से-पतित और कुत्सित-से-कुत्सित व्यक्तियों को भी वह बराबर स्नेह करुणा और श्रद्धा की दृष्टि से देखते आये हैं और उन्हें अपने उपन्यासों एवं कथाओं के परम आकर्षक पात्रों के रूप में प्रस्तुत करते रहे हैं। इनके मतानुसार पतित-से-पतित पात्र में भी कुछ स्वर्ण-कण होते हैं जो उसकी अनन्त दुर्बलताओं तथा क्रूरताओं के मध्य छिपे रहते हैं और औपन्यासिक सफल कला के फलस्वरूप प्रकाश में लाये जा सकते हैं। इसलिए व्यक्ति-चरित्र-विश्लेषण प्रधानता ही आपके कथा-साहित्य में मिलती है।

कथानक

स्वच्छ और स्वस्थ समाज निर्माण हित उन्होंने वैयक्तिक मनस्तत्व का पल्ला पकड़ा है। वर्तमान युगीन समाज में से कुछ विशिष्ट पात्रों को चुना है और उनसे संबंधित किंचित घटना-चक्रो एवं कार्य व्यापारो के माध्यम से कथा-सूत्र को घुमाया है। प्रत्येक घटना के मूल मे व्यक्ति विशेष की तत्कालीन मानसिक अवस्था का चित्र खींचा गया है तथा परिणाम स्वरूप कार्य व्यापारों के लिए आन्तरिक जगत् को भी उतना ही जिम्मेदार ठहराया गया है जितना बाह्य संसार को। आपके उपन्यासों के कथानकों में अन्तर्जगत तथा बहिर्जगत का अपूर्व चित्रण हुआ है। अधिकतर इन्होंने अन्तर्जगत को अधिक महत्व दिया है किन्तु फिर भी बाह्य जगत् की नितान्त उपेक्षा नहीं की है। अन्तर्जगत को प्रमुख स्थान देने का कारण भी इनका मनोविज्ञान शास्त्र से अधिक प्रेम रखना है। इनकी कथाओं में मनोवैज्ञानिक तत्वों को प्रमुख स्थान दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कतिपय मनोवैज्ञानिक तथ्यो का उद्घाटन करने के लिए कथानक रचे गये हैं।

जोशी जी मूलत. व्यक्तिवादी मनोविज्ञान उपन्यासकार हैं। फिर भी इनके उपन्यासो के कुछ कथानक सामाजिक धरातल पर खड़े हैं तो कुछ मे वैज्ञानिक तथा सामाजिक दोनों प्रवृत्तियों का सन्निवेष हुआ है। इनके कथानकों को तीन भागो में विभाजित कर सकते है :—

(क) विशुद्ध व्यक्तिवादी
(ख) सामाजिक
(ग) मिश्रित

विशुद्ध व्यक्तिवादी रचनाओं के अन्तर्गत लज्जा, संन्यासी, निर्वासित, पर्दे की रानी, प्रेत और छाया आते हैं। मुक्तिपथ और सुबह के भूले सामाजिक उपन्यास हैं। जिप्सी तथा जहाज का पछी मिश्रित श्रेणी रचनायें की हैं।

विशुद्ध व्यक्तिवादी कथानको में कथायें व्यक्ति विशेष की जीवनानुभूतियों, स्मृतियो एवं कल्पनाओं को संचित करके रची गई हैं। इनमे व्यक्ति ही प्रमुख होता है और समस्त कथानक उसके इर्द-गिर्द घूमता है। व्यक्ति विशेष अपनी राम कहानी स्वयं पाठको के सम्मुख प्रस्तुत करता है। वह अपनी जीवनगत क्रीड़ाओं और कार्य कलापों का विश्लेषणात्मक अध्ययन कथा के रूप मे पाठको के आगे पेश करता चलता है। विशिष्ट व्यक्तिवादी उपन्यास व्यक्ति के अहं की एकांतिकता पर कठोर प्रहार करने के लिए आत्मकथात्मक_कथानक को लिये हैं। प्रारम्भिक उपन्यास लज्जा, पर्दे की रानी तथा प्रेत और छाया इसके ज्वलंत प्रमाण हैं। ये चारों ही विशुद्ध व्यक्तिवादी कथानक रखते हैं। इन चारो उपन्यासो मे कथा सूत्र को कथा नायकों

अथवा नायिकाओं ने पकड़ रखा है, वे ही इसे भ्रमरी की भांति घुमाते हैं। इनके कथानकों में मनोविश्लेषणात्मक प्रसंगों की भरमार है। कथा नायक कथा का आरम्भ ही विश्लेषणात्मक प्रसंग देकर करते हैं। प्रथम दो उपन्यासों की प्रथम पृष्ठों पर दी गई कुछ पंक्तियाँ इसका प्रमाण हैं—'घृणा ! घृणा ! मेरी सारी आत्मा आज घृणा के भाव से ओत-प्रोत है। मुझ हत्यारी नारी ने आज समस्त प्रकृति को, सारे विश्व को, अपने अन्तस्थल की घृणा से लोप पोत कर एकाकार कर दिया है।"[1]

"......मैं सारी सदा आलस्यमय जीवन बिताने के बाद अन्त को जब भाग्य की विडम्बना से अकस्मात् सन्यासी बन बैठा और देश-माता के वीर पुत्रों की प्रेरणा से शहर में आकर एक जोशीला व्याख्यान देने के कारण जेल के अन्दर ठूंस दिया गया, तो उस पराश्रित अवस्था में किसकी व्याकुल आत्मा का हाहाकार चट्टानों पर पछाड़ खाती हुई तरंगिणी के गर्जित रुदन के समान मेरे हृदय को हिलाने लगा ? किसकी निपट निस्सहायावस्था की कल्पना से मैं रह-रह कर पागलों की तरह छटपटाने लगा ?"[2]

इन विश्लेषणात्मक प्रसंगों को पढ़ते ही पाठक की उत्सुकता जाग उठती है। उसे नायकों से एक दम सहानुभूति हो जाती है। वह झटपट उनके अतीत जीवन से जानकारी प्राप्त करने की चाह से वशीभूत कथा-सूत्र को पकड़ लेना चाहता है और पकड़ते ही उसमें लीन हो जाता है। और लेखक भी कथा सूत्र को नायकों के हाथ में देकर निश्चिन्त हो जाता है। नायक ही कथानक को घुमाते हैं—पर इसका एक दुष्परिणाम भी हो जाता है। कथानक सुसगठित नहीं रह पाता। इन उपन्यासों के कथानक अधिकतर असगठित हैं, अस्वाभाविक घटना-चक्रों से भरपूर हैं। यह जानकर इन कथानकों में घटित घटनाओं के कार्य और कारणों में एक शृंखला जोड़ने की चेष्टा लेखक ने की है और वह मनोविज्ञान का आश्रय लेकर की है। नायक उपन्यासों में आई प्रत्येक घटना के कारणों को खोजता है और मनोविश्लेषण द्वारा उस पर प्रकाश डालता है, किन्तु कहीं-कहीं ये मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि मूल कथा का सूत्र परे पड़ जाता है और चारों ओर मनोविज्ञान-ही मनोविज्ञान दृष्टिगोचर होने लगता है। विशेषकर 'सन्यासी' और 'प्रेत और छाया' के कथानकों में यह दोष दृष्टिगोचर होता है। कहीं-कहीं पर तो एक-एक पृष्ठ में तीन-तीन विश्लेषणात्मक प्रसंग दे दिये गये हैं और कहीं-कहीं इस विश्लेषणात्मक प्रसंग को कई-कई पृष्ठों तक घसीटा गया है। ऐसे ही स्थलों पर उपन्यासों के कथानकों में कथा-तत्व गौण हो गया है और कतिपय मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का पिष्ट-पोषण किया गया प्रतीत होता है। सन्यासी का नायक नन्दकिशोर शिमला पहुँच कर जब पुनः जयन्ती साक्षात्कार करता है तब उसके मन का तार-तार झंकृत हो उठता है, यहां तक तो ठीक है

१. लज्जा पृष्ठ
२. सन्यासी पहला परिच्छेद चौथी पंक्ति

किन्तु वह मूर्ति उसे आलोक में डुबोकर तरह-तरह की मनोवैज्ञानिक कलाबाजियाँ दिखाती है, यह समझ में नहीं आता। आधुनिक हृदय उनके मन को भाने लगे, पर तो जैसे गया, किन्तु एक दिन सायंकाल जब सैर को निकला तो कल्पना में ही खो गया, आश्चर्यचकित कर देने वाली बात है। और कल्पना भी साधारण नहीं, असाधारण है, मायामयी है जो मायाराज्य की रहस्यमयी परी को लाकर नन्दकिशोर के मनोराज्य में बिठा देती है, उसे दिन में ही स्वप्नलोक में घुमाती है। निर्जन एकान्त में सघन कुञ्ज की छाया तले खड़ी नायिका, और कोई नहीं जयन्ती, की ही प्रतिमूर्ति है, प्रतिच्छाया है जो फ्रायडियन मनोविज्ञान के स्वप्न-संसार के प्रभाव का नतीजा है, जिसके चमत्कार द्वारा जहाँ एक बार जयन्ती नन्दकिशोर के मन में आकर कौंध जाती है तो तुरन्त ही शोघ्रता से घनघोर रूप धारण कर शीघ्रता से फट भी जाती है। और दूसरे ही पल शांति की मार्मिक मूर्ति मन में हजार रूप धारण कर हलचल मचा देती है जिससे नायक एक दूसरे प्राण के कथा-क्षेत्र में कूद पड़ने पर प्राप्त होता है। कैलाश का 'हल्लो' कह कर उसे चौंका देना, अर्थ स्वप्नावस्था से जगा देना, इसका प्रमाण है।

प्रेत और छाया में चेतन और अवचेतन मन में हो रहा सतत संघर्ष ही कथानक का आधार है। पारसनाथ का अवचेतन मन कुंठित है, उसमें कुछ ग्रन्थियाँ पड़ चुकी हैं। उसे अपना पिता एक मनोविकार ग्रस्त पिशाच दृष्टिगोचर होता है और माता एक कुल-कलंकनी कुलटा। अतः उसका अपना अवचेतन मन विद्रोहात्मक, कुल एवं समाज-घातक-ग्रंथियों से जकड़ा मन है। ठीक है। किन्तु वही जब मंजरी सदृश परम सात्विक आत्माओं के सम्पर्क में आता है तब भी अपने आत्मा का कलुषित मल धो नहीं पाता। उसे प्रत्येक नारी छाया और अपनी आत्मा प्रेत दृष्टिगोचर होती है। जैसे एक प्रेत छाया का पीछा करता है वैसे ही वह भी प्रत्येक नारी का पीछा करता है। इस उपन्यास में एक लम्बे समय तक पारसनाथ मंजरी प्रणय चलता है और जब प्रणय की परिणति निकट आती है तो उसी समय मंजरी की माँ की मृत्यु हो जाती है। वह भयंकर रात, उस भयंकर रात का वह भयंकर दृश्य (मंजरी की माँ का मृतक शव) निहारते ही पारसनाथ काँप उठता है। उसके अवचेतन मन में एक गाँठ पड़ जाती है। उसे लगता है कि मृतक शव उसे खा जायगा, वह उसे कदापि-कदापि मंजरी से खुल कर न खेलने देगा। और मंजरी से ही क्या ? हम पढ़ते हैं कि समस्त कथानक में लगभग पाँच छः बार पारसनाथ जब-जब प्रेम-क्रीड़ा में रत होने लगता है एक प्रेतात्मा उसके सामने आकर खड़ी हो जाती है। और मानव-मन की सम्पूर्ण विवशताओं को लाकर पारसनाथ में उँडेल देती है। और वह कथा-तत्व की अवहेलना कर तत्संबंधी मनोविश्लेषणों में उलझ जाता है, खो जाता है।

सामाजिक उपन्यासों के कथानकों का रूप इतिवृत्तात्मक है। इनमें कथानक

का म्न गुम्फित, रोचक और परम आकर्षक है। कथा का आरम्भ, मध्य और अन्त पूरा-का-पूरा स्पष्ट तथा सुनिश्चित है। मुक्ति-पथ में सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया गया है। 'सुबह के भूले' सामाजिक वर्गों अमीरों तथा गरीबों के मनोभावों का सुन्दर चित्रण है। इसमें धनी मानी समझे और कहलाये जाने वाले लोग कथानक को विशिष्ट दिशा में मोड़ देते हैं, घटनाओं को प्रभावित करते हैं। गिरिजा मोहनदास के परिवेश से लौटती है तो अपने डेढ़नुमा मकान के लिए मन में एक ही भावना लेकर लौटती है, घर छोड़ती है तो अपने जीवन को बहुत ऊँचा उठाने के लिए छोड़ती है। सिनेमा-समाज का भी कथानक में यथेष्ट स्थान है। सिनेमा जगत की दुनिया में भी अधिकतर ढोंग, चापलूसी तथा दुश्चरित्रता की प्रधानता ही है किन्तु यत्र-तत्र हेमकुमार सदृश कुलीन पात्र उसे गिरिजा की कुमारियों के लिए आकर्षण का केन्द्र बनाये दृष्टिगोचर होते हैं। मुक्ति-पथ में जिस प्रकार के आश्रम की कल्पना की गई है वह सामाजिक उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द जी के प्रेमाश्रम से किसी भी सीमा में कम नहीं है। हम देखते हैं कि जोशी जी ने अपने इन उपन्यासों के कथानकों में सामाजिक समस्याओं का भी सजीव चित्रण किया है, यथा सम्भव इन समस्याओं के समाधान हित उपाय भी सुझाये हैं।

प्रेत और छाया में चेतन और अव

मिश्रित कथानक प्रधान उपन्यासों में व्यक्ति चरित्र-विश्लेषण प्रवृत्ति को मूल आधार रखने पर भी लेखक ने सामाजिक प्रवृत्तियों का घेरा खींच दिया है, जिनसे होकर कथा घूमती है। जहाँ एक ओर सन्यासीमें लेखक को नन्दकिशोर और उसका भाव जगत देखने और दिखाने के अतिरिक्त समय ही नहीं मिला, वहाँ जिप्सी और जहाज का पंछी में उसने अधिक सजग होकर कला को पकड़ा है, कथानक को रचा है। इन दोनों उपन्यासों के कथानक आत्म चरित्र विश्लेषणात्मक आकार लिये हैं किन्तु अपने आस-पास के समाज में डुबकियाँ लगाते चलते हैं, वे प्रायः डूब नहीं जाते, हाँ बीच-बीच में तैरते हुए थिर भर जाते हैं, ऐसा उसी समय होता है जब व्यक्तिवादी प्रवृत्ति जोर मारती है अथवा वे उभर-उभर कर सामने आते हैं अपने नाना रूप दिखाते हैं।

जिप्सी में कथाकार ने एक साथ दो कथानकों को चुना है और दोनों को एक दूसरे में गुम्फित कर दिया है। एक ओर रंजन मनिया की कथा है तो दूसरी ओर वीरेन्द्र शोभना कहानी है। रंजन व्यक्तिवादी नायक है अत. अपने रोमांस में व्यक्तिवाद की गंध भर देता है। वीरेन्द्र सामाजिक प्राणी है अतः कथा में सामाजिकता ले आता है। किन्तु उसकी पत्नी शोभना उसके सामाजिक जीवन से तंग आ चुकी है और व्यक्तिवादी, उच्छृंखल जीवन बिताना चाहती है। एक ओर वह वीरेन्द्र के कट-मर जाने पर छटपटाती है तो दूसरी ओर मनिया रंजन के व्यक्तिवादी स्वभाव से टूटकर बम्बई

लाल द्वारा संचालित संस्था में सम्मिलित हो जाती है। दूसरी ओर उसका पति रंजन भी अपने जैसी प्रकृति वाली रमणी शोभना से सांठ-गांठ बढ़ा लेता है। व्यक्तिवाद और समाजवाद का यह गुम्फन अद्वितीय है। इससे कथानक में एक चमक आ जाती है, किन्तु यह चमक असली सोने की चमक नहीं है, रोल्ड गोल्ड की चमक है, जो मनोवैज्ञानिक आँधी के कुछ झोंको से ही उसे मैला कर देती है। कथा में आये हुए हिप्नोटिज्म के अधिकांश झोंके इसे प्रवेग देते हैं।

'जहाज का पछी' में यह बात नहीं है। यह जोशी जी की औपन्यासिक कला की स्वर्णिम किरण है जो चारों ओर प्रकाश फैलाने में समर्थ हुई है। 'जहाज का पंछी' कथानक-प्रधान कृति नहीं है, चरित्र-प्रधान कृति है। इसमें कथानक न होकर, छोटी-छोटी घटनायें हैं, यह कहें तो अधिक उचित होगा। ये घटनायें सामाजिक हैं जो व्यक्ति विशेष (कथा नायक) के जीवन को प्रभावित करती चलती हैं। इनमें युग-चित्रण सजीव हो उठा है। छोटी-से-छोटी घटना भी मर्म-स्पर्शी है और शिक्षाप्रद है। एक दूसरी से असबंधित होते हुए भी प्रत्येक घटना अपने आप मे परिपूर्ण है। कथा के अन्त में लीला-नायक प्रणय के रूप मे संश्लिष्ट कथानक की व्युत्पत्ति होती है जो कौतूहल प्रधान, उत्सुकतावर्धक और कल्पना-तत्वो से रची हुई है। इसमे भाव लोक और दृष्टा जगत का अपूर्व मिश्रण हो गया है।

चरित्र चित्रण

जोशी जी के सभी उपन्यास चरित्र-प्रधान हैं। इनके पात्रो की विशिष्ट चारित्रिक विशेषताएं हैं। दुर्बल-से-दुर्बल और पतित-से-पतित पात्र को लेकर लेखक ने परम सहृदयता के साथ उसकी दुर्बलता और पतित अवस्था के कारणो की खोज की है। असाधारण-से-असाधारण और अपसाधारण-से-अपसाधारण चरित्र को लेकर उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए उसका चारित्रिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। नायकों के यौन-संबंधी मनोविकार, और प्रेम तथा सौंदर्य के प्रति स्वच्छन्द उच्छृंखल आचरण, नायिकाओ का विचित्र मुखावरण और सकोचपूर्ण आत्मसमर्पण, प्रेम के क्षेत्र में परकीया आलिंगन तथा स्वकीया के प्रति ढोंग एवं प्रवचनापूर्ण व्यवहार जोशी जी के कतिपय पात्रों मे देखने को मिल जाते हैं। पात्रो की इन बुराइयों का मूल स्रोत भी लेखक ने ढूंढ निकाला है। उनकी अन्तंर्दृष्टि बड़ी सूक्ष्म है, बाल की खाल निकालने की क्षमता रखती है।

जोशी जी ने चरित्र-चित्रण भी मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मक प्रणाली द्वारा किया है। प्रधान पात्र आत्मविश्लेषण द्वारा अपने-अपने चरित्र पर प्रकाश डालते चलते हैं। कतिपय गौण-पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण कहीं-कहीं प्रधान पात्रो द्वारा किया गया है तो कही पर स्वयं लेखक द्वारा। लेकिन चरित्र-चित्रण मे पूरी चमक वहीं-वहीं पर आई है जहाँ पर स्वयं मनन करते हुए नायक अथवा नायिका आत्म-

सम्बन्धों का द्वार बन्द रहा और अन्तर्द्वन्द्वों से मानसिक पक्षों का ऐसा शिकार बन गया कि इतने वर्षों के बाद भी अभी तक उससे फिर उबर भी नहीं उठ पाया है, एक ओर मनुष्य की जड़ता और अकर्मण्यता की परिस्थिति से उन्नति के चरम शिखर की ओर ले जाने और दूसरी ओर उसे विकासशील पराधीनता और अराजकता के गर्त में ढकेल कर [illegible] उसकी ही उन्नति का मूल कारण बना ? और ये उत्तार प्रारम्भ में कब, कैसे और कहाँ-कहाँ रूप में परिणत हुए, इन सब बातों की खोज तथा ऐसे ढंग से करने की इच्छा मेरे मन में बहुत दिनों से थी, जो एक दम नया और मौलिक हो। पर इस सम्बन्ध में अपनी सारी शक्ति मैंने अपने विश्वविद्यालय के साथियों से बेकार की बहस करने में नष्ट कर दी। उसके बाद मैं जीवन के जिस चक्कर में पड़ा उससे मेरी रही-सही शक्ति भी जाती रही। अब जीवन भर आवारा फिर कर निकम्मा बने रहने के अलावा और किसी बात की आशा मुझे नहीं दिखाई देती थी। यदि मेरे भीतर की दानवी-शक्ति उचित मार्ग पर चलती तो मैं या तो पुरातत्व अथवा इतिहास के क्षेत्र में क्रान्ति मचाता या समाज-सुधारक अथवा दलोद्धारक बन कर एक मान्य नेता के पद का प्रयासी होता।"[1]

इस विश्लेषण से दो बातें प्रकाश में आती हैं। एक तो एक असाधारण पात्र का चारित्रिक पक्ष, दूसरे प्रेरणा का महत्व। नन्दकिशोर ने अपने चरित्र के गौरवपूर्ण अतीत का वर्णन भी किया है और दयनीय, हेय वर्तमान का रहस्योद्घाटन भी। साथ ही उस यह भी बताने दिया कि उचित प्रेरणा के अभाव में वह नीचे ही नीचे गिरता चला गया है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या उसे शान्ति द्वारा उचित

---

१. सन्यासी पृष्ठ ३४३-४४

प्रेरणा नहीं मिली ? उत्तर सरल है। वह है कि उसे प्रेरणा तो मिली किन्तु अपूर्ण प्रेरणा मिली। शान्ति के साथ अनुचित एवं असामाजिक, वैयक्तिक सम्बन्ध जोड़ने के कारण वह पग-पग पर घबराता, कतराता और शर्माता रहा है। बड़े भैया के आ जाने पर भी उनसे दृढ़तापूर्वक अपने प्रेम कृत्य को नहीं कह पाया। वह विवाह के स्वस्थ पहलू को न समझ सकने के कारण शान्ति को शंका और ईर्ष्या की दृष्टि से देखने लगता है और केवल शांति को ही नहीं, बलदेव, रमेश यहाँ तक कि सारे समाज को ही हेय समझता है। समाज के अस्तित्व और उसकी आवश्यकता के महत्व को स्वीकार नहीं करता। शांति द्वारा प्राप्त थोड़ी बहुत प्रेरणा को भी छू-मंतर कर उड़ा देता है। जयन्ती के साथ विवाह की स्वीकृति भी अपनी वासना-पूर्ति और प्रतिहिंसा की भावना की तृप्ति-हित देता है। ऐसे असाधारण पात्र समाज और देश दोनों के लिए कितने खतरनाक हैं, इस बात के महत्व को बताने के लिए नन्दकिशोर सदृश्य पात्रों की अवतारणा जोशी जी ने की है।

पात्रों की चरित्रगत असाधारण अथवा असाधारण दशा का एक कारण उन पर पड़े जन्मगत संस्कार हैं और वैयक्तिक दृष्टिकोण की एकान्तिकता भी है। प्रेत और छाया का पारसनाथ तथा पर्दे की रानी की निरंजना का असाधारण चरित्र उनका जन्म-सम्बन्धी संस्कार है। दोनों पात्रों की विकृत मानसिक दशा अपने-अपने माता तथा पिता के दूषित चरित्र की जानकारी का परिणाम है। संस्कारों का चरित्र बनाने अथवा बिगाड़ने में कितना बड़ा हाथ होता है, इस तथ्य से जोशी जी खूब परिचित हैं तभी तो उन्होंने अपने उपन्यासों के चरित्रों में कई एक प्रधान मोड़ संस्कारों द्वारा प्रस्तुत किये हैं। वेश्या-पुत्री निरंजना और नन्दिनी दोनों के हाव-भाव यदि पूर्णतया वेश्याओं जैसे नहीं हैं तो भी एक सीमा तक उनका अनुकरण अवश्य करते हैं।

चरित्र-चित्रण

जोशी जी के सभी उपन्यास चरित्र-प्रधान हैं। इनके चरित्रों की भी विशिष्ट चारित्रिक परम्परायें हैं। प्रमुख पात्र आत्ममुखोद्‌घोरित चारित्रिक सुख दुःख, प्रेम और घृणा, मधुरता और कटुता जीवन में शुक्ल और कृष्ण पक्ष की भाँति आया करते हैं। इनमें भी अधिकता दुःख, घृणा और कटुता की ही होती है। चिंता और समस्याओं, दुविधा और कठिनाइयों का कोई ओर-छोर ही नहीं होता किन्तु उनसे दो-चार होना और हँसकर उनका स्वागत करते हुए दृढ़ता पूर्वक जीवन में आगे बढ़ना किसी-किसी को ही आता है। जोशी जी के अन्तिम उपन्यासों के कुछ नायक जीवनगत कटुता की अनुभूति करते हैं विपरीततम परिस्थितियों में से ईमानदारी के साथ पग रख कर मार्ग बनाते चलते हैं। 'मुक्तिपथ' के राजीव और सुनन्दा, 'जहाज का पंछी' का नायक और 'जिप्सी' की मनिया इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। 'सुबह के भूले' की गिरिजा भी इनमें से किसी से भी पीछे नहीं रहती।

जोशी जी ने अपने पात्रो का चरित्र-चित्रण करते समय एक विशेष बात पर ध्यान रखा है। वह मानव हृदय की अधिकतम तहो को खोलकर उसमे विद्यमान अधिकाश भावनाओ और महत्वाकांक्षाओं का प्रदर्शन करना चाहते है। इस प्रदर्शन मे एक सीमा तक सफल भी हुए हैं। जीवन में हम देखते हैं कि कठिनाई उस समय आती है जब मन मे अन्तर्द्वन्द्व की आंधी चलती है। दो विरोधी भावनाओ की टक्कर होती है तो पात्र विशेष का रूप दयनीय हो उठता है। वह पाठक की पूर्ण सहानुभूति प्राप्त कर लेती है। निर्वासित का महीप नीलिमा से मिलने का वायदा करने पर भी समय से पूर्व सोचता है, जाऊँ या न जाऊँ ! प्रेत और छाया का नायक पारसनाथ तो प्रत्येक बार पतन-मार्ग पर चलने से पूर्व अन्तर्द्वन्द्व मे फँसा नजर आता है। वास्तव मे हमारे मन के तीन भाग होते हैं। चेतन, अवचेतन और अर्धचेतन। इनमें से चेतन और अवचेतन मे प्राय. सतत सघर्ष चला करता है। अवचेतन मन मे हमारे जीवनगत अनुभव एव महत्वाकांक्षाएँ छिपी रहती हैं, जो हमारे चेतन को सचालित किया करती हैं। दूसरी ओर चेतन मन अधिक जागृत रहने के कारण चचल, गतिमय होता है। अवचेतन की गम्भीरता पर झुंझलाता भी रहता है और किसी भी गलती का दायित्व अवचेतन पर ही डाल दिया करता है, जिसे अवचेतन कभी सहज रूप में स्वीकार नही करता, दोनो मे एक टक्कर होती है और अन्तर्द्वन्द्व बढ़ जाता है।

जोशी जी के कुछ पात्र अपने निकटवर्ती पात्रो का विश्लेषण करते हैं और कुछ उनकी खरी-खोटी आलोचना। कुछ पात्र अपने सम्बन्धियो से अटूट प्यार करते हैं तो कुछ अकल्पनीय घृणा। अधिकाश पात्रो मे एक विध्वसकारी प्रवृत्ति है जो प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की प्रलयकारी भावना से आते हैं। कुछ पात्र अपनी सम्मोहक शक्ति के प्रयोग से दूसरो को आकर्षित कर उन्हें विनाश के पथ पर ढकेल रहे है तो कुछ उन्हें आत्मतृप्त का साधन बनाने में जुटे हैं। पर्दे की रानी की निरजना और जिप्सी के रजन महोदय इसी प्रकार के पात्र हैं। नारी पात्रो की तुलना मे पुरुष पात्र कम गम्भीर हैं। वे अधिक उच्छृंखल भी हैं और कायर भी। छोटी-छोटी बात पर नारी पात्रों की खिरौरी करते दृष्टिगोचर होते हैं, उनसे क्षमा मांगते दिखाई पड़ते हैं। आपके चरित्र परम स्पष्ट और परम आकर्षक हैं।

यथार्थवाद और जोशी जी !

वस्तुतः जोशी जी यथार्थवादी उपन्यासकारों की कोटि में आते हैं। आपके उपन्यासों में एक ओर समाज का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया गया है और दूसरी ओर पात्रो का यथार्थ नग्न चित्रण किया गया है। सुबह के भूले में एक ऐसे समाज का रूप प्रस्तुत किया गया है जो सर्वशक्ति सम्पन्न है, धनी है, शिष्ट कहलाता है अतः ऊपर से देखने में परम आकर्षक है किन्तु भीतर से असहाय, निर्बल और स्वार्थी है,

ढोगी है। जिसके चारो ओर कृत्रिमता और आडम्बर का जाल बिछा हुआ है; जिसके निकट पहुँचने पर पता चलता है कि उसका यथार्थ रूप क्या है। मोहनदास, चन्द्रमोहन और शाता जिसके प्रतिनिधि पात्र हैं। व्यक्ति का मान ये लोग उसकी वैयक्तिक विशेषताओ के कारण नही करते, अपितु सामाजिक स्तर देख कर करते हैं, पारिवारिक महत्व जानकर करते हैं।

'मुक्ति पथ' तथा 'जहाज का पछी' प्रेमचन्द द्वारा प्रतिष्ठित आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा मे आते हैं। इन दोनों कृतियों में हमें क्रमशः प्रेमाश्रम तथा 'रगभूमि' पढने का आनन्द आता है। दोनों का आरम्भ यथार्थवादी परम्पराओं के अनुसार हुआ है और अन्त आदर्शोन्मुख प्रवृत्ति के साथ किया गया है। मुक्तिपथ का राजीव छोटी-मोटी नौकरी प्राप्त करने के लिए दर-दर की ठोकरें खाता है किन्तु उसे आश्रय तो प्राप्त है, कृष्णा जी के घर आनन्द के साथ न सही, चिताओ के साथ ही समझ लो, सो जाने और खा-पी लेने की सुविधा तो उसे मिली है किन्तु 'जहाज के पछी' का नायक तो आकाश की खुली छत के नीचे भी निश्चिन्त होकर नही सो पाता। प्रति पल उसे पुलिस-मैन का खटका बना ही रहता है, समाज का साधारण-से-साधारण प्राणी भी उसे सदेह की दृष्टि से घूरता है, आश्रय देने अथवा कोई और सुविधा जुटाने की तो बात ही क्या ? सभी प्रकार के सघर्षों के बीच में दृढता पूर्वक, धैर्य पूर्वक खडे रहकर पूरी योजनायें बनाकर जहाँ राजीव अन्त मे आदर्शोन्मुख समाज की स्थापना करने में सफल होता है, वहाँ 'जहाज का पंछी' का नायक तो और कई पग आगे बढ गया है। उसने राजीव की तुलना में अधिक सघर्ष देखे और झेले हैं, यथार्थवादी जीवन के विविध अखाड़ो मे वह कूदा है और पहलवानी कर, कुछ करामात दिखाकर अपना मार्ग स्वयं बनाता चलता है। उसमें युग-चेतना साकार हो उठी है। अन्त में वह हमारा पथ प्रशस्त करता दिखाया गया है, वह यथार्थवादी मनुष्य में आदर्शवादी मानव को जगाता है, कुविचारो वाले दानवो मे सद्भावों का संचार करता है। प्रलोभनों के आगे वह सिर नही झुकाता; लीला के मोहक प्रणय के जाल में नही फँसता, वासनाओ का दास नहीं बनता बल्कि सब पर विजय पाकर आदर्शवादी समाज की स्थापना के स्वप्न को साकार करता है जहाँ व्यक्ति के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का पूरा मूल्याकन हो, उसकी श्रेष्ठता का मान हो और दोषों तथा अभावों की भर्त्सना न होकर सस्नेह सुधार हो, उसकी सर्वांगीण उन्नति की पूरी सुविधा हो।

'कला कला के लिए' के सिद्धान्त पर आपका साहित्य पूर्ण उतरता है। अतः यह चिरायु है। आपके साहित्य में मानव की मौलिक प्रवृत्तियो का सहज चित्रण हुआ है। प्रेम और घृणा; दुःख तथा सुख; विरह, संयोग; कटुता, माधुर्य; कपट आडम्बर; आदि मनोद्गारो का सहज और स्वाभाविक चित्रण हमें इनकी कृतियों मे पढने को मिलता है। किसी पात्र का हृदय आवश्यकता से अधिक अनुभूतिमय है तो किसी का

असमाधारण कुण्ठित। पावन स्मृतियाँ एवं अनुभूतियाँ, कल्पनाएँ एवं भावनाएँ पाठक को सभी कुछ विस्मृत कराकर जोशी जी के कला-संसार में समेट लेती हैं। इनकी कला में हमें एक ओर माँ का ममत्व तो दूसरी ओर नारी के नारीत्व के दर्शन होते हैं।

मन को पूर्णतः मथ कर वशीभूत कर लेने वाले मनस्तत्व से परिपूर्ण प्रसंग इनकी कला के अभिन्न अंग हैं। विशेष परिस्थिति में विशिष्ट पात्रों की मानसिक चिंता और अन्तर्द्वंद्व पठनीय हैं। पात्रों का प्रेम और उनकी पारिवारिक एवं सामाजिक सीमाएँ कहीं मेल खाती प्रतीत नहीं होतीं। ये तो मन में एक अजीब सी उथल-पुथल मचा देती हैं। चाह कर भी कई बार नन्दकिशोर जैसे पात्र एक साहसपूर्ण पग नहीं उठा पाते और जब उठाते हैं तो एक भयावह परिस्थिति को निमन्त्रण दे देते हैं। जीवन की विकटतम-से-विकटतम परिस्थिति का हँसकर सामना करने का संकल्प करने वाले और कहीं-कहीं पर घोर निन्दनीय कापुरुषता का परिचय देते हैं। शारीरिक रूप से पूर्ण स्वस्थ नायक भी मानसिक अस्वस्थता के शिकार हैं। इनकी मानसिक अवस्था के जन्मजात कारण हैं। इनके जीवन में ऐसे क्षण भी आते हैं जब ये उन्नत होते हैं और ऐसे पल भी आते हैं जब अवनति के पाताल में भी गिर पड़ते हैं। और अन्त में इनकी मानसिक स्वस्थता इनको जन्मजात विकृत संस्कारों के धुल जाने पर ही प्राप्त होती है।

मन की मन में रह जाय। मन की बात न लब पर आय। परिवार यह चाहता है, समाज भी यही चाहता है। किन्तु व्यक्ति विशेष क्या चाहता है यह जानना हो तो लज्जा को पढ़िए, संन्यासी को पढ़िए। मन को संयम में रखना चाहिए, यह तो ठीक है किन्तु प्रेम-तत्व की अवहेलना कर उसे कुण्ठित कर देना तो श्रेयस्कर नहीं है। यदि ऐसा होता है तो वह कितनी क्रांति मचा देता है, इस तथ्य से परिचित होना चाहें तो मुक्तिपथ पढ़ें। मानसिक कुण्ठाएँ मस्तिष्क को किंचित विकृत ही नहीं करतीं कभी-कभी पूर्णतः भ्रान्त भी बना सकती हैं, 'प्रेत और छाया' तथा 'पर्दे की रानी' की कहानी इसकी ज्वलन्त प्रमाण हैं। आत्महत्याओं तथा निकट सम्बंधियों की हत्याओं के मूल में जहाँ एक ओर प्रतिहिंसा और प्रतिरोध की अग्नि धधक रही है वहाँ दूसरी ओर विकृत मानसिक ग्रंथियाँ भी उनका कारण हैं, जैसे शीला की हत्या, इन्द्रमोहन की हत्या और निरंजना की माँ की हत्या।

मन की उस अवस्था की तनिक कल्पना कीजिए जिसमें एक-एक क्षण में शत-शत भाव एवं विचार उठ-उठ कर गिर जाते हैं, भावनाएँ मचल-मचल कर रह जाती हैं। करुणा क्षोभ और आक्रोश से परिपूर्ण जीवन, भय, घृणा और वासना से रत जिन्दगी हमारी भावनाओं को आन्दोलित करती है। ऊपर से हँसने वाले मन में रोदन

रहें तो कभी रोने पर भी मन-ही-मन हँसने वाले पात्र हमें शान्ति, मंजरी तथा सुनन्दा के रूप में जोशी जी की रचनाओं में मिलते हैं। मन की व्यथा एवं गुत्थी खोलने के द्वार प्रशस्त करने वाले पात्र भी जीवन भर घुट-घुट कर मरते इनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होते हैं। मन को चोट कर, वासना की मशीन पर फूँक-फूँक कर पग रखने वाले पात्रों का भी अभाव नहीं रखा गया है।

जोशी जी ने अपने साहित्य की रचना किसी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक अथवा धार्मिक मत के प्रचार के लिए नहीं की है, हाँ उसमें दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की चर्चा अवश्य आई है। हमें आपके उपन्यासों में प्रेमचन्द जी के उपन्यासों की भाँति मिल-मालिक और मजदूर, किसान और भूमिधर शोषक और शोषित के मध्य हो रहे सतत संघर्ष के दर्शन नहीं होते; किसी वाद विशेष के प्रचार की गन्ध भी अधिक नहीं आती, हाँ कतिपय मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का विशद पोषण हुआ दृष्टिगोचर अवश्य होता है। किन्तु इसके फलस्वरूप उनके साहित्य का प्रभाव घट नहीं जाता, कला का मान-दण्ड बदल नहीं जाता।

समाज-चित्रण की अपेक्षा व्यक्ति-चित्रण अधिक हुआ है। प्रत्येक उपन्यास में तो नहीं कह सकते किन्तु अधिकांश उपन्यासों में घटना-चक्र कुछ इस प्रकार से आयोजित हुआ है कि अपहरण की बात ले देकर आ ही जाती है। और नायक दौड़-दौड़ कर नायिका विशेष के लिए पूरियाँ कचोरियाँ लाते हैं—'संन्यासी' का नन्दकिशोर, 'प्रेत और छाया' का पारसनाथ, 'मुक्तिपथ' का राजीव क्रमशः शान्ति, मंजरी और सुनन्दा का अपहरण करते हैं और उनके साथ पूरियाँ उड़ाते हैं। पूरियों का अत्यधिक वर्णन किसी उद्देश्य विशेष की पूर्ति नहीं करता अपितु साहित्य में लाने की अभिरुचि पर प्रकाश डालता है। अपहृत ललनाओं की मानसिक दशा परम वंदनीय है जो चिंताओं से ग्रस्त होने पर जीवन की विषम परिस्थितियों से होड़ लेती हैं।

जोशी जी की कला की विशिष्ट धारा है जो बहते हुए सभी को अपनी गति-यति की ओर आकृष्ट करती है। मानव की अनन्त मानवीय लीलाओं में से कुछ का अभिनय प्रस्तुत करती है। यहाँ हम पारसनाथ, नन्दकिशोर तथा लज्जा जैसे आत्मरत अपने ही दायरे में आबद्ध पात्रों को भी रेंगते हुए देखते हैं और मानवीय कर्मों का अतिक्रमण कर देवोचित कर्म करते हुए राजीव को भी निहारते हैं। कटाक्षाघात करती नन्दिनी और निरंजना को भी पाते हैं तथा प्रेमी पात्रों को प्रसन्न कर आत्मोत्सर्ग कर देने वाली शान्ति को भी मन में प्रतिष्ठित कर सकते हैं। पुरुष की स्वार्थपरता, संकुचता एवं क्रूरता भी इसमें प्रवाहित हुई है और नारी की कोमलता, स्निग्धता और भावुकता भी इसके साथ बही है अतः जोशी जी की कला चिरस्मरणीय है, वन्दनीय है।

भाषा तथा शैली

जोशी जी के उपन्यासों की टक्कर की भाषा हिन्दी साहित्य के बहुत कम लेखकों की कृतियों में पढ़ने को मिलती है। आपकी भाषा साहित्यिक खड़ी बोली है जो संस्कृत गर्भित है। इनकी भाषा में प्रवाह है, गति है। कहीं-कहीं भाषा अलंकारमयी बन गई है, विशेषकर उन स्थलों पर जहाँ प्राकृतिक छटा का वर्णन है। जब नन्दकिशोर अपने भाई के साथ रेलगाड़ी में बैठकर शिमला की ओर चला तब प्राकृतिक दृश्यों को देखकर कहने लगता है—"गाड़ी रेलवे लाइन के जिस भाग को अपने पीछे छोड़ आती थी ऊपर से वह एक विराट् और दीर्घाकृति सर्प की तरह पड़ी हुई दिखाई देती थी। कहीं वह चीड़ और देवदारु के घने पेड़ों की छाया के बीच में अपनी कुटिल वक्राकृति फैलाये हुए थी और कहीं भयंकर और गहरे गड्ढों के ऊपर।"[1]

जैनेन्द्र जी की भाँति आपने विविध शैलियों को नहीं अपनाया है। आपके साहित्य में अधिकतर आत्मव्याख्यात्मक शैली को अपनाया गया है। अधिकतम उपन्यास उत्तम पुरुष में चरित्र विश्लेषणात्मक शैली में लिखे गये हैं। पात्र अपने और अपने निकटवर्ती पात्रों के मन के पर्दों को खोलकर उनके भीतर एक झाँकी लगा जाते हैं और जो कुछ वे वहाँ देखते हैं उसी की व्याख्या करते हुए चलते हैं, घूमते हैं और अन्य साथियों को घुमाते हैं। इनके साहित्य में भाव-तत्व और चरित्र-विश्लेषण ही कथा की आत्मा है।

आत्मकथात्मक शैली के अन्तर्गत रचित साहित्य में अहं के सभी रूपों का विशेष विश्लेषण किया गया है। आत्मकथा के साथ-साथ स्वगत भाषण तथा संवाद भी पढ़ने को मिलते हैं। इस शैली की प्रधान विशेषता है एक अपूर्व प्रवाह। अपने अपूर्व प्रवाह में यह समस्त आन्तरिकता और उसके सूक्ष्म अवयवों को बहाती चलती है और उभर-उभर कर आई उर्मियों के समान उन्हें दिखाती चलती है। इसी शैली में घृणामयी, संन्यासी, प्रेत और छाया, पर्दे की रानी तथा जहाज का पंछी लिखे गये हैं।

दूसरी प्रकार की शैली में सुबह के भूले की रचना की गई है। इसमें वर्णनात्मकता की प्रमुखता है। सामाजिक विवरणों और आलोचनाओं की भरमार है।

जोशी जी के वर्णन, कथोपकथन और चित्रण परम स्वाभाविक हैं। भाषा पर आपका पूर्ण अधिकार है और वह पात्र तथा वातावरण के अनुकूल प्रयोग में लायी गई है। जहाँ भी व्यक्ति का चरित्र-विश्लेषण हुआ है वहाँ की भाषा परम वैज्ञानिक और अभिव्यंजक है। इसमें भावुकता के साथ-साथ, बौद्धिकता का मिश्रण भी हमें स्पष्ट झलकता है।

जीवन-दर्शन

जोशी जी का जीवन के प्रति विशिष्ट दृष्टिकोण है जिसे उन्होंने 'प्रेत और छाया' की भूमिका में तथा अपने अन्य निबन्धों में स्पष्ट किया है। आप जीवन के सहज, स्वच्छ, स्वस्थ एवं कल्याणकारी स्वरूप को स्वीकार करते हैं। मानव की सामूहिक प्रगति में आपकी पूर्ण आस्था है, प्राचीन संस्कृति में दृढ़ विश्वास है और इसके साथ ही साथ व्यक्ति की वैयक्तिकता में असीम अनुराग है। आप मूलतः व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के प्रेरक कहे जा सकते हैं। व्यक्ति के द्वारा समाज कल्याण और राष्ट्र उत्थान की बात सोचते और कहते हैं। चेतन के साथ-साथ अवचेतन मन की सत्ता को भी आप ने स्वीकार किया है। मनोविश्लेषण पर आपकी अगाध श्रद्धा है।

दमित वासनाएँ और अवचेतन मन

दमित वासनाएँ चाहे वे यौन सम्बन्धी हो या जीवन के किसी दूसरे पक्ष संबंधी, जीवन के विकास पर एक गहरी छाप रखती हैं। मानव-मन ठीक सागर की भाँति ही अनन्त, अथाह और गंभीर है; वासनाएँ रूपी उर्मियाँ इस पर नाचा-कूदा करती हैं और इसके गाम्भीर्य को रौंद भी देती है। जोशी जी के मतानुसार मनुष्य ने अब तक जो प्रगति की है वह अपूर्ण है। क्योंकि आज की सभ्यता उनके दृष्टिकोण से छिछली एवं अधूरी है। यहाँ मानव का मान अपमान; उन्नति अवनति सब उसकी बाह्य वेष-भूषा, आचरण और आडम्बरपूर्ण वार्ताओं पर निर्भर हैं। यदि ऊपर से बनाकर बात कर ली तो बढ़ निकले, बात बनानी न आई तो दबे पड़े रहे। मनुष्य का समस्त जीवन, उसके सब कार्य ऊपरी ठाठ-बाट स्थायी रूप से बनाये रखने के लिए सक्रिय एव सजग है। भीतर कितना द्वन्द्व है, हाहाकार मचा है; कोई नहीं जानता, कोई नहीं पहचानता। चेतन को तो यहाँ पर आवश्यकता से अधिक महत्व दिया जाता है; अचेतन की कोई बात ही नहीं पूछता।

हमारे अवचेतन मन में जीवनगत अनुभवों का अस्सी प्रतिशत अंश सदैव वर्तमान रहता है जो मनुष्य के जागृत (चेतन) स्वरूप को आन्दोलित करता है, चलाता है। वास्तव में अवचेतन मन की शक्ति असीम है और विस्फोटात्मक है। वह तूफान तक लाने की क्षमता रखती है। इसमें दबी वासनाओं को जितने ही जोर से सभ्य मनुष्य ने दबाने का प्रयत्न किया है। उतने ही वेग से वे रबर की गेंद की भाँति ऊपर को

'केवल बाह्य जीवन की सामाजिक-आर्थिक-व्यवस्था और उसके परिणाम स्वरूप वर्ग-संघर्ष को ही हमारी और भीतरी जीवन की एक मात्र परिचालिका शक्ति मानना और केवल उसी से सम्बन्ध रखने वाले मसलों की खोज के पथ को 'प्रगतिशीलता' का एक मात्र पथ बताना घोर भ्रमपूर्ण है। वर्तमान महायुद्ध ने इसे पहले से भी अधिक निश्चित रूप से यह बता दिया है कि बाह्य जगत की समस्त सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रगतियों और व्यवस्थाओं का सनातन मूल रूप से सामूहिक मानव की सामूहिक अज्ञात चेतना में भीतर दबे पड़े असंख्य संस्कारों के ही प्रस्फुटन और विस्फोट द्वारा होता है।'[1]

जोशी जी के इन शब्दों में अज्ञात चेतना पर जो बल दिया गया है वह अवचेतन मन के अतिरिक्त कुछ नहीं। वह फ्रायड के दर्शन से प्रभावित दृष्टिगोचर होते हैं। फ्रायड ने मानव-मन की तीन अवस्थाओं का जिक्र किया था चेतन, अर्धचेतन और अवचेतन। उन्होंने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किए थे और कुछ प्रमाणित परिणामों पर पहुँचे थे और उनके आधार पर अवचेतन मन को आवश्यकता से अधिक महत्व प्रदान किया था। उनका अवचेतन के प्रति दृष्टिकोण एकांगी और संकुचित है। वह केवल काम-प्रवृत्ति को ही मनुष्य की सब प्रवृत्तियों का मूल स्रोत मानते हैं। फ्रायडियन मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य के मन में कुछ ग्रंथियाँ एक आश्चर्यजनक अप्रत्याशित और अकल्पनीय रूप से फूट पड़ती हैं और मनुष्य के जीवन के विकास की दिशा ही बदल देती है।

'प्रेत और छाया' का दर्शन मूल रूप में फायडिन दर्शन है। सारी कथा के मूल में एक काम-ग्रंथि है जो काम कर रही है। पारसनाथ के चेतन मन को विकृत करने वाली भी काम-ग्रंथि ही है। यह इडिपस ग्रंथि है जो पिता पुत्र का संघर्ष करा देती है। पारसनाथ सदृश सुकोमल, सहृदय प्राणी के मस्तिष्क में विष घोल देती है और उसमें प्रतिशोध, प्रतिहिंसा, ईर्ष्या और कामुकता की गाँठ जोड़ देती है। सन्यासी का समस्त कथानक नन्दकिशोर की काम-ग्रंथि को लेकर चलता है।

---

१. 'प्रेत और छाया' की भूमिका से।

जीवन-दर्शन

जोशी जी का जीवन के प्रति विशिष्ट दृष्टिकोण है जिसे उन्होंने 'प्रेत और छाया' की भूमिका में तथा अपने अन्य निबन्धों में स्पष्ट किया है। आप जीवन के सहज, स्वच्छ, स्वस्थ एवं कल्याणकारी स्वरूप को स्वीकार करते हैं। मानव की सामूहिक प्रगति में आपकी पूर्ण आस्था है, प्राचीन संस्कृति में दृढ़ विश्वास है और इसके साथ ही साथ व्यक्ति की वैयक्तिकता में असीम अनुराग है। आप मूलतः व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के प्रेरक कहे जा सकते हैं। व्यक्ति के द्वारा समाज कल्याण और राष्ट्र उत्थान की बात सोचते और कहते हैं! चेतन के साथ-साथ अवचेतन मन की सत्ता को भी आप ने स्वीकार किया है। मनोविश्लेषण पर आपकी अगाध श्रद्धा है।

दमित वासनाएँ और अवचेतन मन

दमित वासनाएँ चाहे वे यौन सम्बन्धी हो या जीवन के किसी दूसरे पक्ष संबंधी, जीवन के विकास पर एक गहरी छाप रखती हैं। मानव-मन ठीक सागर की भाँति ही अनन्त, अथाह और गंभीर है; वासनाएँ रूपी उर्मियाँ इस पर नाचा-कूदा करती हैं और इसके गाम्भीर्य को रौंद भी देती हैं। जोशी जी के मतानुसार मनुष्य ने अब तक जो प्रगति की है वह अपूर्ण है। क्योंकि आज की सभ्यता उनके दृष्टिकोण से छिछली एवं अधूरी है। यहाँ मानव का मान अपमान; उन्नति अवनति सब उसकी बाह्य वेष-भूषा, आचरण और आडम्बरपूर्ण वार्ताओं पर निर्भर हैं। यदि ऊपर से बनाकर बात कर ली तो बढ़ निकले, बात बनानी न आई तो दबे पड़े रहे। मनुष्य का समस्त जीवन, उसके सब कार्य ऊपरी ठाठ-बाट स्थायी रूप से बनाये रखने के लिए सक्रिय एवं सजग है। भीतर कितना द्वन्द्व है, हाहाकार मचा है; कोई नहीं जानता, कोई नहीं पहचानता। चेतन को तो यहाँ पर आवश्यकता से अधिक महत्व दिया जाता है; अचेतन की कोई बात ही नहीं पूछता।

हमारे अवचेतन मन में जीवनगत अनुभवों का असंख्य प्रतिघात अंश सदैव वर्तमान रहता है जो मनुष्य के जागृत (चेतन) स्वरूप को आन्दोलित करता है, चलाता है। वास्तव में अवचेतन मन की शक्ति असीम है और विस्फोटात्मक है। वह तूफान तक लाने की क्षमता रखती है। इसमें दबी वासनाओं को जितने ही जोर से सभ्य मनुष्य ने दबाने का प्रयत्न किया है। उतने ही वेग से वे रबर की गेंद की भाँति ऊपर को

उद्घात मारती हैं। जोशी जी के शब्दों में अन्तर्मन के अतल में पड़ी ये प्रवृत्तियाँ वैय-क्तिक (और फलस्वरूप सामूहिक) मानव के [illegible] सामा-जिक संगठनों को एक लम्बे युग से [illegible] आई हैं और [illegible] रही हैं।

जोशी जी अन्तर्मन के महत्व [illegible] आवश्यकता से अधिक महत्व दे गये हैं। उनकी दृष्टि में वही प्रचार कारगर हो [illegible] निहित किसी विशेष प्रवृत्ति को उभारता है, जनता के मस्तिष्क को [illegible] छू लेता है। वह सशक्त शब्दों में कहते हैं :

"केवल बाह्य जीवन की सामाजिक-आर्थिक-व्यवस्था और उसके परिणाम स्वरूप वर्ग-संघर्ष को ही बाहरी और भीतरी जीवन की एक मात्र परिचालिका शक्ति मानना और केवल उसी से सम्बन्ध रखने वाले तत्वों की खोज के पथ को 'प्रगति-शीलता' का एक मात्र पथ बताना घोर भ्रममूलक है। वर्तमान महायुद्ध ने हमें पहले से भी अधिक निश्चित रूप से यह जता दिया है कि बाह्य जगत् की समस्त सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रवृत्तियों और व्यवस्थाओं का संचालन मूल रूप से सामूहिक मानव की सामूहिक अज्ञात चेतना के भीतर दबे पड़े असंख्य संस्कारों के ही प्रस्फुटन और विस्फोट द्वारा होता है।[1]"

जोशी जी के इन शब्दों में अज्ञात चेतना पर जो बल दिया गया है वह अव-चेतन मन के अतिरिक्त कुछ नहीं। वह फ्रायड के दर्शन से प्रभावित दृष्टिगोचर होते हैं। फ्रायड ने पहले-पहल मन की तीन अवस्थाओं का जिकर किया था चेतन, अर्धचेतन और अवचेतन। उन्होंने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किये थे और कुछ प्रमाणित परि-णामों पर पहुँचे थे और उनके आधार पर अवचेतन मन को आवश्यकता से अधिक महत्व प्रदान किया था। उनका अवचेतन के प्रति दृष्टिकोण एकांगी और संकुचित है। वह दमित काम-प्रवृत्ति को ही मनुष्य की सब प्रवृत्तियों का मूल स्रोत मानते हैं। फ्रायडिन मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य के मन में कुछ ग्रंथियाँ एक आश्चर्यजनक अप्रत्याशित और अकल्पनीय रूप से फूट पड़ती हैं और मनुष्य के जीवन के विकास की दिशा ही बदल देती हैं।

'प्रेत और छाया' का दर्शन मूल रूप से फ्रायडिन दर्शन है। सारी कथा के मूल में एक काम-ग्रंथि है जो काम कर रही है। पारसनाथ के चेतन मन को विकृत करने वाली भी काम-ग्रंथि ही है। यह इडिपस ग्रंथि है जो पिता पुत्र का संघर्ष करा देती है। पारसनाथ सहृदय सुकोमल, सहृदय प्राणी के मस्तिष्क में [illegible] और उसमें प्रतिशोध, प्रतिहिंसा, ईर्ष्या और [illegible]
का समस्त कथानक नन्दकिशोर की [illegible]

---

१. 'प्रेत और छाया' [illegible]

जोशी जी का दर्शन मूल रूप से फ्रायड द्वारा प्रभावित होने पर भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। यह फ्रायड के अतिरिक्त एडलर की हीन ग्रंथि वाले दर्शन से भी प्रभावित हैं और सबसे अधिक मान्यता युग के सामूहिक अवचेतनवाद को देते हैं। वह अन्तर्विज्ञानवाद की गिरती महत्ता नहीं कर सकते। वह इसे 'प्रेत और छाया' की भूमिका में प्रकाशित बाह्य चेतना से अधिक महत्व देते हैं। अपने मत की पुष्टि करते हुए वह लिखते हैं :

"याद रखिए कि मानव जीवन गणित नहीं है। मानव की अन्तश्चेतना के अगाध अतल में हिटलर की तरह एकच्छत्र शक्ति प्राप्त करने की जो दुर्दान्त और घातक लालसा आदि काल से डेरा जमाये हुए है, जो लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, हिंसा क्रूरता और घोर स्वार्थ-परायणता आदि की असंख्य पशु-प्रवृत्तियाँ इतने युगों के विवर्तन के बाद भी आज तक सुदृढ़ और सुनिश्चित रूप से स्थिर हैं, उनका इलाज क्या आपके 'डायलेक्टिकल मेटीरियलिज्म' से उद्भूत बाह्य जीवन-संबंधी प्रगति कर सकेगी।"[1]

"विश्व में तब तक अपेक्षाकृत (पूरी नहीं) शान्ति की स्थापना असंभव है जब तक मानव-समाज अन्तर्जीवन को उतना ही (बल्कि अधिक) महत्व नहीं देता जितना बाह्य जीवन को।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि जोशी जी अन्तर्जीवन की नाना क्रीड़ाओं का चित्रण अपने उपन्यासों में क्यों करते हैं। वह स्वयं इसकी सत्ता से परिचित हैं और इसके महत्व के कायल हैं। अन्तर्जीवन की नाना क्रीडाओं के चित्रण के लिए उन्होंने सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि भी पाई है। और इसके द्वारा वह मानव-मन में छिपे रहस्यों का उद्घाटन करते हैं और बड़ी सफलता पूर्वक करते हैं। अन्तर्जीवन, अन्तर्दृष्टि और अन्तर्द्वन्द्व ये उनके दर्शन के तीन स्तम्भ हैं। अपनी पैनी अन्तर्दृष्टि द्वारा वह अन्तर्जीवन के नाना द्वन्द्वों को देख और परख लेते हैं और पाठक के सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं।

उनके पात्र साधारण हों या असाधारण; असाधारण हों या सरल; एक दर्शन को सामने रखकर जीवन में पग रखते हैं और दृढ़ता के साथ रखते हैं, फिर चाहे यह पग उन्हें घोर नरक की ओर धकेलता है या आकाश की ओर ले जाता है, इसकी वह चिंता नहीं करते। असाधारण या असाधारण अवस्था को वह क्यों प्राप्त हुए; इस ग्रंथि को पहचानने का प्रयत्न भी करते हैं और पहचान कर उसे जड़ से उखाड़े बिना चैन नहीं लेते। उनके दर्शन के आगे जीवन की विषमतम परिस्थितियाँ और समस्याएँ भी यदि चट्टान बनकर आ जाती हैं तो उनसे भी वह टक्कर लेते हैं। उदाहरण स्वरूप प्रेत और छाया के नायक पारसनाथ को ले लीजिए। इसे एक असाधारण पात्र पुकारा जाता है; इसे वह स्वयं भी स्वीकार करता है। एम० ए०पास है, जीवन क्या है;

१. 'प्रेत और छाया' की भूमिका से।

व्यक्ति क्या है, समाज क्या है, नारी क्या है? यह वह बखूबी जानता है। अपने अस्त-व्यस्त और उच्छृंखल जीवन से भी वह पूर्णतया परिचित है। यदि किसी एक नारी से विवाह कर लिया जाये तो सुखकर, सुन्दर और शृङ्खलाबद्ध जीवन व्यतीत हो सकता है—मानता है, किन्तु विवाह नहीं करता—क्यों? क्योंकि वह यह भी मानता है कि विवाह करके उसे उस समय तक मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती जब तक पिता के द्वारा मन में उत्पन्न की गई ग्रंथि पूरी तरह से खुल नहीं जाती। अतः वह अपनी असाधारण अवस्था पर भी प्रसन्न है। तर्क करके विवाह-प्रणाली का विरोध करता है—पिता की बात सुनकर उसका जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही बदल गया—वह किसी नारी को सती सावित्री मानने को तैयार नहीं—सदाचार नाम से ही उसे घृणा है। अत डटकर सतीत्व हरण करता है। कुमारियों को ही नहीं वरन् विवाहिताओं को भी भ्रष्ट करता है। इस उपन्यास का यह पात्र असाधारण स्थिति का महत्त्व दर्शाता है। किन्तु कब तक? जब तक मूल ग्रंथि है। मूल ग्रंथि क्या है? मन पर पड़ी स्मृति-रेखा कि माँ कुलटा थी। अन्तर्मन कहता है कि यदि माँ कुलटा थी तो समस्त नारीत्व कुलटा है। संसार की स्त्री मात्र वेश्यावृत्ति लिए है। लेखक ने घटना-चक्र में घुमाकर नायक की मनोग्रंथि खोल दी है। और जब वह पिता के वचन सुन कर सन्तुष्ट हुआ तभी खुली है जो अत्यन्त स्वाभाविक है। इससे यह तो समझा जा सकता है कि किसी भी पतित चरित्र के पतित आचरण की तह में एक दर्शन छिपा होता है, जो कि उस पात्र विशेष का अपना मत होता है, उसे ही वह उचित समझता है चाहे सारा ससार उसका विरोध करे, उसे गलत समझे। यदि कोई उसका हितैषी है तो उसका कार्य उसकी आलोचना करना नहीं है अपितु उस परिस्थिति की उस ग्रंथि को खोज निकालना है जिसमें वह पात्र अटका है। फिर उस ग्रंथि को मनोवैज्ञानिक उपायों से दूर करना है, तभी वह पात्र स्वाभाविक रूप अपना सकेगा साधारण स्थिति सभाल सकेगा, जैसा कि प्रेम और छाया के नायक पारसनाथ ने अपनाया।

यह तो एक असाधारण पात्र के आश्चर्यपूर्ण दर्शन की बात हुई। अब एक असाधारण व्यक्ति के अति आदर्शवादी दर्शन की बात लीजिये। जोशी जी ने एक उपन्यास 'मुक्तिपथ' लिखा है। उसमें राजीव नायक है। अंग्रेजी में जिसे (Idealism) आदर्शवाद कहते हैं, उसकी वह सजीव मूर्ति है। उसका आदर्शवाद अति की सीमा का भी उल्लंघन कर गया है। वह स्वयं कर्मरत रहता है। उसके कर्मवाद में व्यक्तिगत सुख दुःख, प्रेम अथवा करुणा का कोई स्थान नहीं है। श्रम और केवल श्रम को ही महत्व दिया गया है। श्रेय के साथ-साथ प्रेय का भी कोई मूल्य है, इस दर्शन की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता, तभी वह जीवन में नितान्त असफल रहता है। सुनन्दा सदृश सन्तुलित दृष्टिकोण वाली विदुषी को सदा-सदा के लिए खो देता है। सुनन्दा को खोने में वह क्या खोने जा रहा है? इसका पता चलता है उसकी अन्तर्वेदना से जिसकी

अन्तश्चेतना में हमारी जीवनगत संचित अनुभूतियाँ, स्मृतियाँ एवं अज्ञात भावनाएँ दो भाँति डुबकी मारकर पड़ी रहती हैं। संयोग और वियोग, दुःख तथा सुख, प्रेम एवं घृणा के नाना संस्करण इसमें जमा रहते हैं। वियोग के क्षणों में संयोग, दुःख के पलों में सुख तथा घृणा के लम्हों में प्रेम के नाना रूप विविध भाँति अन्तर्मन में मारा-कूटा करते हैं। जब वह उद्दाम-क्रूर भयंकर आकार धारण कर लेती है तभी तो शान्त एकान्त का आश्रय लेकर प्राणी मनोविश्लेषण द्वारा इन पर विजय पाया करता है। जोशी जी की अन्यतम रचना सन्यासी में नन्दकिशोर शान्ति के चले जाने पर निश्चेष्ट शय्या में लेट जाता है। तब उसके अन्तर्मन में नाना प्रकार की दुश्चिन्ताएँ खलबली मचाने लगती हैं। वियोग-जनित पीड़ा उसकी अन्तश्चेतना को आन्दोलित करती है और वह मनोविश्लेषण द्वारा शान्ति गमन जनित पीड़ित वातावरण को विस्मृत करता है। लेखक कितने सुन्दर शब्दों में इस विश्लेषण को प्रस्तुत करता है, जो इस उद्धरण को पढ़कर पता चलता है—रह-रहकर केवल एक बात मेरे मर्म को अत्यन्त निर्ममता से आघात पहुँचा रही थी। वह यह कि शान्ति इस विशाल संसार में अकेली, एकदम अकेली, पड़ गई और निःसम्बल अवस्था में अनन्त काल तक निरुद्देश्य भटकने के लिए निकल पड़ी है। कल तक वह मेरी थी, आज वह किसी की भी नहीं है। जीवन भर वह अथाह सागर में डूबती उतराती रही। जब किसी तरह तीर पर पहुँची तो एक-एक तिनका चुन-चुनकर वह कितने प्रयत्न और कितनी कठिनाइयों के बाद अपने लिए एक नीड़ का निर्माण कर पाई थी। आज आँधी के एक प्रबल झोंके से वह नीड़ नष्ट-भ्रष्ट हो गया है, उसका एक-एक तिनका शून्य में बिखर पड़ा है और उसमें वास करने वाली विहगी अपने छिन्न पंखों से फिर अपार सागर पार करने की असम्भव चेष्टा में उड़ान भरकर चल पड़ी है। सोच-सोचकर अन्तस्थल से एक आकुल क्रन्दन रह-रहकर मर्म को चीरता हुआ ऊपर उठ रहा था। अपनी परिस्थिति की इस नपुंसक विवशता पर मुझे सबसे अधिक दुःख हो रहा था कि सब कुछ जानबूझकर भी मैं निश्चेष्ट हूँ और शान्ति के उद्धार का कोई उपाय नहीं कर पाता। शान्ति की इस नासमझी का ख्याल करके भी मैं अधीर हो उठा कि मुझे अपने निश्चय के संबन्ध में उसने तनिक भी आभास नहीं दिया और चुपचाप चली गई।"[1]

इतना मनोविश्लेषण कर लेने पर नन्दकिशोर मानसिक शान्ति प्राप्त कर लेता है। वह शान्ति के अस्तित्व तक को स्मरण नहीं रखना चाहता। तभी मनोविश्लेषणात्मक शक्ति स्थायी रूप से उसका साथ दे सकती है। वह जीवन में सुखी रह सकता है। अतः वह *मन-ही-मन अपना सारा क्रोध शान्ति* पर उतारता है। इस परिस्थिति के लिए केवल मात्र उसे ही जिम्मेवार ठहराता है। ऐसा करने से उसकी

१ सन्यासी पृष्ठ २६१

है नन्दकिशोर का शंकालु स्वभाव। वह शांति के प्रति ईमानदार नहीं है फिर भी उससे एकनिष्ठ प्रेम की आशा रखता है। वह जयन्ती के नारीत्व से खिलवाड़ करने के लिए ही उससे विवाह करता है। यह भी उसके अहंवाद का एक स्वरूप है। आगे चल कर वह दाम्पत्य को सुखी बनाने के बजाय उसमें ईर्ष्या और शंका का विष घोल देता है। जयन्ती के यह पूछने पर कि उसने विवाह किस उद्देश्य से किया है वह मन में सोई हुई प्रतिहिंसा-प्रवृत्ति को जाग्रत करके सक्रोध तथा सगर्व एक ओजस्वी भाषण दे डालता है। इस व्याख्यान को सुनकर जयन्ती हतप्रभ रह जाती है, कुछ क्षणों तक उन्माद-ग्रस्त नारी की भाँति आँखें फाड़-फाड़ कर देखती है किंतु शीघ्र ही सँभल जाती है और उसके यह पूछने पर कि उसके मन पर भाषण का क्या प्रभाव पड़ा, वह उत्तर देती है कि वह तो कुछ भी नहीं समझी और उसके ये वचन सुनते ही नायक का मन खिन्न हो उठा। यह सीधा उसके अहंभाव पर आघात था। जो डंक उसने सशक्त शब्दों की फुत्कार द्वारा मारा था वह निस्तेज साबित हुआ। इसी कथा में कथाकार ने अपनी नायिका जयन्ती द्वारा एक और प्रलयकारी आघात नायक के अहंभाव पर लगाया है। जयन्ती एक दिन बैठे-बैठे नन्दकिशोर को स्पष्ट शब्दों में कह देती है कि "आप बड़े अहंकारी हैं। आपका अहंभाव हद दर्जे तक आगे बढ़ा हुआ है। यह एक दोष आप में ऐसा जबर्दस्त है, जो कभी-कभी आपके सब गुणों को ढक देता है। केवल यही नहीं, इसके कारण आपके जीवन में अवश्य अशान्ति और बेचैनी छाई रहती होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।"[1]

नारी पात्र द्वारा पुरुषगत अहंभाव का रहस्योद्घाटन एक साहसपूर्ण कदम है जो मनोवैज्ञानिक कथाकार जोशी जी ने उठाया है। इससे पूर्व के हिन्दी उपन्यासकारों में से किसी ने ऐसा साहसपूर्ण कदम नहीं उठाया है। भारतीय नारी ने अधिकतर पुरुष के पद-चिन्हों पर चलना सीखा है, उसके दुर्गुणों को उदारचित्त होकर क्षमा करना सीखा है, किन्तु आधुनिक शिक्षित नारी पुरुष के अहंभाव को ज्यों-का-त्यों सहे जाने को तैयार नहीं, वह सशक्त शब्दों में उसका विरोध कर रही है। वह टूट तो सकती है, झुक नहीं सकती। टूटने से पूर्व अपने मनोद्गारों द्वारा पुरुष प्रधान अहंवाद का भण्डाफोड़ कर देती है। जयन्ती के विचारानुसार आज का अहंवादी पुरुष स्वार्थी होने के साथ-साथ परम शंकालु एवं ईर्ष्यालु भी है। वह स्वयं असंख्य प्रणयों में रत रहने पर भी अपने को क्षम्य समझता है क्योंकि वह पुरुष है और नारी के विवाह से पूर्व प्रणय को भी शंका और ईर्ष्या की आँख से देखता है। उसके स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना मात्र से उसके अहंभाव पर चोट लगती है।

यही हाल उनके दूसरे नायकों का भी है। प्रत्येक कथा नायक अथवा

---

१ संन्यासी पृष्ठ २८०

नायिका अपने अहं मे रत जीवन व्यतीत करता है। 'घृणामयी' की नायिका अपने सहृदय भाई के सरल स्नेह की अवहेलना करती है—क्यों ? इसीलिए कि वह अपने अहभाव मे लीन आत्मरत जीवन व्यतीत करना चाहती है और उसका भाई अहंभाव को परिष्कृत कर समाज-कल्याण की बातें सोचता, कहता और करता है जो उसके विचारो से मेल नही खाती, अतः विरोध स्वरूप भाई ही आत्महत्या कर लेता है और उस हत्या द्वारा बहन के अहंभाव पर जो निर्मम आघात लगता है उससे उसे इस जीवन में त्राण ही नही मिलता।

'प्रेत और छाया' में पारसनाथ के अपसाधारण व्यक्तित्व के मूल में उसका अपसाधारण अहंभाव ही चोकड़ी मारकर बैठा है जो स्वयं विकृत हुआ दूसरों को भी विकृत करके आत्मतुप्ति अनुभव करता है। दुश्चरित्रता की सभी सीमाओं का अतिक्रमण करके ही उसे सतोष प्राप्त होता है, किन्तु जब-जब यह पता चलता है कि उसकी दुश्चरित्रता सफलीभूत नही हुई, तब-तब उसके अहंभाव पर करारी चोट लगती है। मंजरी का सतीत्व हरण कर उसे उतनी प्रसन्नता प्राप्त नही होती जितनी विवाहिता नन्दिनी को भगाकर ले जाने पर, किन्तु यह पता चलने पर कि अपहरिता स्वयं एक वेश्या रह चुकी है, उसके अहभाव पर तुषारपात हो जाता है और वह परम दुःख अनुभव करता है किन्तु उसका अह इतनी बड़ी चोट खाकर मौन नही बैठ जाता, अपितु उसकी बहन को भगाकर प्रतिहिंसा की चोट लगाता है और आत्मतुप्ति अनुभव करता है।

जोशी जी के पुरुष-पात्रो के अहभाव में पुरुषोचित कठोरता का नितान्त अभाव है। 'सन्यासी' का नन्दकिशोर और 'प्रेत और छाया' का पारसनाथ थोड़ी-थोड़ी देर बाद भावुकता के स्रोत मे डुबकियाँ लगाते दृष्टिगोचर होते हैं। नायिकाओं के आँसुओं को देखते ही वे बर्फ की तरह पिघल जाते हैं और उनके पाँव तक छूने लगते हैं। वे उनकी बहुत खुशामद करने पर ही उन्हें मना पाते हैं।

नारी पात्रों का अहंभाव अधिकतर परिष्कृत रूप मे पाया जाता है। किन्तु कहीं-कहीं इस दर्शन का अभाव भी है। 'मुबह के भूले' की गिरिजा और घृणामयी की लज्जा तथा 'पर्दे की रानी' की निरंजना अपवाद स्वरूप सामने आती हैं जो अपने गर्व से फूली नहीं समाती किन्तु यथार्थ जीवन की आंधी के एक ही प्रबल झोंके से अपने अहंभाव को भुका पाती हैं और परिष्कृत करने की योजनाएँ ढूंढती हैं। 'पर्दे की रानी' के गुरु जी निरंजना को उसके त्राण का उपाय बताते हैं और 'सुबह के भूले' का हेम कुमार ही गिरिजा को आत्मोत्थान करने में बड़ी सहायता देते हैं।

वैयक्तिक तत्व का महत्व

जोशीजी ने मुक्त कण्ठ से वैयक्तिक तत्व की महत्ता स्वीकार की है। वह व्यक्ति-

त कुण्ठा को आधुनिक सभ्यता की देन मानते हैं। अत्यधिक सामाजिकता को वह व्यक्ति के स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास के लिए अत्यन्त खतरनाक साबित करते हैं :

"अपने को सामाजिक दबाव के कारण निरन्तर छिपाते रहने, अपने भीतर की वास्तविक प्रवृत्तियों को बराबर दबाते रहने का फल यह होता है कि व्यक्ति के भीतर के द्वन्द्व बढ़ते चले जाते हैं। इस प्रकार का कुण्ठित व्यक्ति बाहरी परिस्थितियों की विषमता से लड़कर, उनपर विजय प्राप्त करके, व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन की गति को आगे बढ़ाने चले जाने में सहायक होने के बजाय अपनी ही दमित प्रवृत्तियों से लड़ने में अपनी सारी शक्तियों को समाप्त कर देता है, और संघर्ष में उलझ कर स्वयं ही क्षत-विक्षत होता चला जाता है।"[1]

इस तथ्य को सिद्धान्त मान कर ही आपने अपने उपन्यासों के मुख्य पात्रों को व्यक्तिवादी बनाया है किन्तु उन्हें विशेषता यह दी है कि वे व्यक्तिनिष्ठ होकर भी समाज-कल्याण और देश-हित चाहते हैं। उनकी एक इच्छा है कि व्यक्ति के वैयक्तिक महत्त्व को पहिचाना जाये। उसको अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए पूर्ण सुविधाएँ दी जानी चाहिएँ। व्यक्तित्व को प्रकाशन में लाने के लिए लेखक ने मनोविज्ञान का आश्रय लिया है। उसने अपने अत्यधिक उपन्यासों में असाधारण अथवा असाधारण पात्रों का सृजन किया है। ये पात्र अपनी असाधारण अथवा असाधारण मनःस्थिति के लिए कहीं परम दुखी दिखाये गये हैं तो कहीं परम सुखी। ये कहीं स्वयं तो कहीं किसी दूसरे पात्र द्वारा अपने अन्तर्द्वन्द्वों का उद्घाटन करा ही देते हैं।

देखना यह है कि कौन वैयक्तिक कुण्ठा से ग्रस्त होकर जीवन में निराश, आलसी और स्वार्थी बनता है और कौन उनपर विजय पाकर भीतरी और बाहरी प्रवृत्तियों में सामञ्जस्य स्थापित कर पाता है? वैयक्तिक कुण्ठा का मूल स्रोत कहाँ है? इसका स्वरूप क्या है—कारण क्या है? वैयक्तिक कुण्ठा का मूल स्रोत मनुष्य का अवचेतन मन है। जब-जब हमारे अवचेतन मन में कुछ भ्रान्त धारणाएँ कुण्डली मारकर जमकर बैठ जाती हैं, हम कुण्ठित हो जाते हैं, फिर हम अपने अपनाये गए पथ को, अपने विश्वास को ही परम सत्य समझने हैं और जब तक स्व-जीवन में उस कुण्ठा को घायल कर देने वाली कोई करारी चोट हमारे अवचेतन मन पर नहीं पड़ती, हम सीधे रास्ते पर आ ही नहीं सकते। वैयक्तिक कुण्ठा की कारण इच्छित दमित होती है जो निरन्तर संघर्ष कराती रहती है। अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करने के कारण व्यक्ति में अनुचित यौन-सम्बन्ध की इच्छा बलवती हो जाती है। अनुचित यौन-सम्बन्ध से उत्पन्न सन्तान में कई प्रकार की ग्रंथियाँ जन्म ले लेती हैं जिनमें से एक हीनता की ग्रंथि भी होती है। माता-पिता के कुकर्मों का परिणाम सन्तान को भोगना पड़ता है। समाज में उनका मान नहीं होता, वे व्यक्तिवादी बन जाते हैं। यहाँ तक तो ठीक है। किन्तु

१. 'साहित्य में वैयक्तिक कुण्ठा'—ले अवस्थि

व्यक्तिवादी बन जाने पर भी जब उन्हें सुख-चैन नहीं लेने दिया जाता, समाज रूपी घाघ जब आँखें तरेरे हुए उनके सामने आता है, बात-बात में उनके माता-पिता का किस्सा दोहराता है, तब व्यक्तिवादी होने के अतिरिक्त व्यक्ति स्वार्थी, प्रमादी और अहंवादी भी बन उठता है। एक हत्या का दृश्य नाना रूपों में उसकी आँखों के सामने घूमा करता है, एक प्रणय का चित्र लाखों आकारों में उसके कल्पना-पट पर चक्कर लगाता है; उसका मन कुंठित हो जाता है, हिंसा प्रतिहिंसा; क्रोध और प्रतिशोध ही उसके प्रमुख लक्ष्य बन जाते हैं। 'प्रेत और छाया' का पारसनाथ और 'पर्दे की रानी' की निरंजना तथा 'जिप्सी' की मनिया कुंठित मन लेकर अवतरित नहीं होते अपितु समाज के कुछ विशिष्ट लोग जो उनके सम्बन्धी हैं अथवा निकटवर्ती हैं, उन्हें कुंठित कर देते हैं और एक बार कुंठित हो जाने के बाद वे उस समय तक स्वाभाविक जीवन नहीं बिताते जब-तक उनकी कुंठा का इलाज नहीं हो जाता।

वैयक्तिक तत्व का महत्व फ्रांस में रूसो द्वारा प्रचारित जन-क्रान्ति के प्रचार से स्थापित हुआ था। उसने ही पहले-पहल यह नारा लगाया कि स्टेट व्यक्ति के लिए है न कि व्यक्ति स्टेट के लिए। वहीं पर यह नारा भी लगाया जाने लगा कि व्यक्ति की कुंठा का विश्लेषण केवल विश्लेषण के लिए है; ठीक वैसे ही जैसे कला-कला के लिये और बीसवीं शताब्दी तक आते-आते समस्त साहित्य व्यक्ति की कुंठित मनोवृत्तियों की गाँठें खोलने में, उन्हें सुलझाने की चेष्टा में लीन हो गया। यहाँ तक कि विश्व के यशस्वी व्यक्तिवादी कलाकार और दार्शनिक सार्त्र ने तो इसे जीवन का स्वाभाविक तत्व घोषित कर दिया और उसी रूप में अपने नाटकों में चित्रित भी किया। उन्होंने इसे वैयक्तिक चेतना के नाम से प्रतिष्ठित कर सामाजिक चेतना से ऊपर स्थान दिलाने की भरसक चेष्टा की।

हिन्दी-उपन्यास-साहित्य में श्री इलाचन्द्र जोशी इस धारा के प्रवर्तक कहे जा सकते हैं। किन्तु उनके द्वारा प्रतिष्ठित व्यक्तिवाद का समाजवाद से कोई विशेष विरोध नहीं है। वह वैयक्तिक चेतना को स्वस्थ सामाजिक चेतना के विकास की प्रथम सीढ़ी मानते हैं। उनके सभी व्यक्तिवादी पात्र कथा के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते सामाजिक मर्यादाओं और आदर्शों की सत्ता को स्वीकार कर लेते हैं। वह अपने व्यक्तिगत जीवन में युगान्तरकारी परिवर्तन की अनुभूति करते हैं। वे प्रत्यक्ष मिल रहे सुख को सर्वश्रेष्ठ सुख के रूप में स्वीकार न करके परोक्ष में छिपे आनन्द को ग्रहण करने के लिए लगन के साथ, त्याग के साथ, सेवा के साथ आगे बढ़ते हैं। स्वेच्छाचार से उन्हें घृणा हो जाती है। संयम और बंधन के जीवन-दर्शन को वह स्वीकार कर लेते हैं। 'प्रेत और छाया' का पारसनाथ जो जीवन भर उच्छृंखलता, स्वार्थता और अहंवादिता के संघर्ष में डूबा रहा अन्त में जाकर हीरा से गठबंधन जोड़कर स्वयम् प्रणय का पाठ पढ़ लेता है, जो दोनों के परिणय में समाप्त होता है। 'सन्यासी' का नन्दकिशोर

जो वैयक्तिक दर्शन का प्रेरक है; वैयक्तिक चेतना का प्रतीक है; वैयक्तिक स्वतंत्रता का पुजारी है, भी अन्तिम सर्ग तक पहुँचते-पहुँचते इस दर्शन की एकान्तिकता, संकुचितता एवं ससीमता को पहचानते हुए देश-सेवा और समाज-कल्याण-मार्ग पर चल पड़ता है। 'सुबह के भूले' की एकाकी व्यक्तिवादी नायिका गिरिजा भी पुनः अपनी माता भमिया की चोली पकड़ती है तथा किसान को अपनाती है और जिप्सी के व्यक्तिवादी, भौतिकवादी एवं पूँजीवादी नायक रजन तो मनिया द्वारा प्रस्तुत अग्नि-परीक्षा देने को भी तैयार हो जाते हैं, यह समाज-सेवा हित अपनी सारी पूँजी दाव पर लगा देते हैं।

'जहाज का पछी' में तो वैयक्तिक चेतना के एकाकी विकास को स्वयं लेखक ने अवाञ्छनीय माना है। इस उपन्यास के नायक को व्यक्तिवादी जीवन की दर-दर की ठोकरें खिलाकर, स्वस्थ सामाजिक चेतना के स्वरूप के दर्शन कराकर, उसी चेतना मे वैयक्तिक चेतना का अपूर्व मिलाप कराकर लेखक ने नव-युगीन चेतना के अस्तित्व की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित किया है। इस नव-चेतना में वैयक्तिक मान्यताओं का मान होगा, किन्तु वह समाज सापेक्ष होगा। समाज की सापेक्षता होने पर भी समाज का दबाव वैयक्तिक साधना और भावना के स्वतंत्र विकास मे बाधक नहीं होगा, अपितु वह व्यक्ति के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को सामने लाने में सहायक ही होगा।

प्रेम-तत्व और विवाह-विवेचन

प्रेम एक ऐसा स्थायी भाव है जिसका स्रोत अविच्छिन्न रूप से मानव मन में बहता रहता है। शृंगार तो इसका एक रूप मात्र है जिसमें सौंदर्य और काम-तत्व ही प्रधान हैं। जगत में देखते हैं कि सौंदर्य द्वारा आकर्षित हुआ काम द्वारा निर्मित प्रेम ही एक मात्र प्रेम नही है। यदि काम प्रधान प्रेम ही सर्वस्व होता तो पिता-पुत्र, भाई-बहिन, देवर-भाभी और सखा-सखा एक दूसरे पर प्राण न्योछावर करने को सदैव तैयार न रहा करते। प्रेम के इन अन्य स्वरूपों को देखते हुए हम कह सकते हैं कि प्रेम इस विश्व में प्रभु की वह गुदेन व कोमल भावना है जो समय और स्थान का संयोग पाकर दो स्नेही प्राणियों को निकट से निकटतम लाकर मानसिक स्तर पर अभिन्न बना देती है—विश्वास और त्याग के दो सूत्र इस पवित्र बन्धन को दृढता से बांध देते हैं; अविश्वास और स्वार्थ के कदम रखते ही यह टूटने लगता है और अहंवाद की चोट खाकर चकनाचूर हो जाता है।

प्रेम की भावना बहुत उत्कट हुआ करती है। जिसके प्रति सच्चा प्रेम होता है, उसके अभाव भी गुण दीखते हैं। एकनिष्ठता का साम्राज्य हो जाता है। प्रेमी-पात्र के लिए कुछ कर डालने की चाह बनी रहती है। प्रेम के प्रवाह में बुद्धि और तर्क तथा मर्यादा प्रायः बह जाया करती हैं। प्यार करने वालों को प्रेमी-पात्र के अतिरिक्त कुछ दिखाई ही नही देता और तभी हम कहते हैं—प्रेम ने अन्धा कर दिया है। प्रेम अन्धा होता है। ठीक है। वास्तव में प्रेम मस्तिष्क की नही मन की वस्तु है, इसमे विचारों की नही भावना की प्रधानता हुआ करती है। मन प्रतिपल एक अजीब से नशे की अनुभूति मे झूमता रहता है। प्रत्येक प्राणी में अपने प्रेमी की झाँकी नजर आया करती है, हर चित्र में प्रियतम के दर्शन होते हैं और हर मूर्ति प्रेयसी का साक्षात्कार कराया करती है। प्रेम के क्षेत्र मे आवेश का बाहुल्य हुआ करता है, आवेगो का साम्राज्य हुआ करता है, भावुकता का प्रवाह बहा करता है। गंभीरता गौण बन जाती है।

प्रेम का सागर जोशी जी के उपन्यासों मे ठाठें मारता दीख पड़ता है। उनकी सभी कथाओं में प्रेम-भाव रूपी उर्मियाँ उठती-गिरती दृष्टिगोचर होती हैं। इनमें से प्रत्येक लहर काम-तरंग से आबद्ध है। ये तरंगें जब पात्रों के अवचेतन मन में प्रवेश

कथा सुनाकर पूछती है—"तो क्या आपकी दृष्टि में वास्तविक अपराधिनी माँ थी, जो पिता जी के सच्चे स्नेह को बिसार कर दूसरी ही तरह का जीवन बिताने लगी ?"[1] लेखक ने गुरु जी द्वारा दिये गये उत्तर में पुरुष की प्रेम के क्षेत्र में संकुचित मनोवृत्ति, उसकी संदेहशीलता और अविश्वास का मर्म-स्पर्शी वर्णन किया है जो वास्तव में पठनीय है—"नहीं मैं तुम्हारी माता जी को अपराधिनी नहीं समझता हूँ। यह रोमांटिक भावधारा से प्रभावित पुरुषों की अन्यायमूलक धारणा है कि किसी पुरुष से किसी स्त्री का प्रेम-सम्बन्ध एक बार स्थापित हो जाने से स्त्री को प्रत्येक परिस्थिति में आजीवन उस प्रेम का निर्वाह करते ही रहना होगा। जिस पर प्रेम के निर्वाह का आदर्श भी ऐसे पुरुषों के मस्तिष्क में अत्यन्त विचित्र रूप धारण किये रहता है। वे यह चाहते हैं कि उनकी प्रेमिका अपने तन के अतिरिक्त आजीवन अपने सम्पूर्ण मन और आत्मा को भी उन्हें अर्पित किये रहे और उन दोनों को आदर्श की सुदृढ़ लौह पिटारी में बन्द करके उसकी कुंजी भी उन्हीं को सौंप दे, ताकि दूसरा कोई पुरुष कौतूहलवश उस अमूल्य धन की ओर झाँकने तक की सुविधा न पा सके, यह आत्मसात् करने की—'एप्रोप्रियेशन' की उसी पूँजीवादी मनोवृत्ति का निदर्शन है जो किसी भी वस्तु को अपनी सम्पत्ति बनाना चाहती है।"[2] यहाँ पर प्रेम को हृदयगत वस्तु न मानकर उसके कठोर स्वार्थमय स्वरूप के दर्शन कराये गये हैं। निरंजना की माँ का खून उसके पिता ने इसलिए किया कि वह विपरीततम परिस्थितियों में भी काले पानी की सजा भुगत रहे पति की माला न जप सकी अपितु निरंजना के पालन-पोषण हेतु किसी और की बन बैठी।

इसके अतिरिक्त 'पर्दे की रानी' में सखी का सखी के प्रति सरल आकर्षण और परम-पावन प्रेम चित्रित किया गया है। इसकी उप-नायिका शीला अपनी सखी निरंजना के प्रति पूरी तरह ईमानदार रहती है। इन दोनों की प्रेम-बेल का बीज मानो पूर्व जन्म में डाला संस्कार है। शीला निरंजना से बात कर अपूर्व हर्ष एवं उन्माद की अनुभूति करती है। कथा के अन्तिम सोपान तक पहुँचते-पहुँचते वह इन्द्रमोहन (पति) निरंजना (सखी) के कुत्सित रोमांस का गुप्त रहस्य जान लेने पर भी हँसते हुए आत्मोत्सर्ग कर देती है और मित्रता के नाम पर बट्टा नहीं लगने देती। इसी उपन्यास में स्त्री-प्रेम के विषय में एक और रहस्य का उद्घाटन किया गया है। वह यह कि पति किसी भी परिस्थिति में प्रेम के मैदान में द्वित्व का आश्रय सहन नहीं कर सकता। जब तक शीला जीवित है निरंजना इन्द्रमोहन को आत्म-समर्पण नहीं करती और शीला अपने पति की बढ़ती हुई उच्छृंखलता की अनुभूति कर और अधिक जीती भी नहीं।

---

१. पर्दे की रानी पृष्ठ १३४

२. पर्दे की रानी पृष्ठ १३४

इस ओर में प्रायः देखने में आता है कि प्रथम साक्षात्कार में ही किसी को किसी से प्रेम हो जाया करता है। पुरुष के लिए साधारणतः प्रेम का धरातल नारी का सौंदर्य हुआ करता है। नारी के सौंदर्य से वशीभूत हुआ पुरुष-मन उसके चारों ओर उसी भांति चक्कर लगाता है जैसे पुष्प के इर्द-गिर्द एक भौंरा। संन्यासी का नायक नन्दकिशोर भी ऐसे ही प्रेम का शिकार हुआ है। जयन्ती का प्रथम साक्षात्कार उसे मनोमुग्ध ही नहीं करता आत्ममुग्ध और विचार-शून्य भी कर देता है। उसके मन में उठी एक उर्मि, उसके मस्तिष्क में कौंधा कर एक एक विचार मानीत जगत के अतिरिक्त किसी अन्य लोक की कल्पना ही नहीं कर पाता। जब वह जयन्ती को देखता है तो प्रेम का जादू तो नहीं कह सकते हां सौंदर्य-मोह का चक्कर कह लो, उसके सिर चढ़कर बोलता है और आगरे में बह रही यमुना में भी उसे रोमानी जल बहता दृष्टिगोचर होता है। वह कह उठता है – "......जमुना की धीर मन्थर गति उसका अनुपम रूप-रंग, चपल रोदन-क्रन्दन, तरल अविरल हास कृष्ण के युग में भी वैसा ही था, जब गोपियाँ शंकित वक्ष से, कम्पित पगों से, हृदय में मूर्छा-मधुर वेदना लेकर उसमें जल भरने आती होंगी, इसके बाद अनेक युगों के अनेक हिन्दू राजाओं ने उसे परम प्रेम से अपनाया होगा, उसके बाद मुगल बादशाहों के युग में हरम की अलबेली बेगमों के विनोद के लिए उसका जल नहर रूप में रंग महल के भीतर जाकर फव्वारे के रूप में स्फुरित होता होगा, और रंगीली राजकुमारियाँ नाना प्रकार के तरंगित कल-हास्य से एक दूसरे पर उस चिर-रहस्यमय जल की फुहारें बरसा कर क्रीड़ा करती होंगी। उसके बाद आज भी एक समय है, जब सारे शहर की धूल अपने सिर पर लेकर, ब्रिटिश युग में निवास करने वाला मैं बी० ए० का एक छात्र उसके चिर-पवित्र तट पर स्नान करने आया हूं।"[१] यही सौंदर्य मोह धीरे-धीरे उत्कट प्रेम का रूप धारण कर लेता है। उत्कट प्रेम का रूप धारण करने और सौंदर्य से वशीभूत होने के मध्य की अवस्था नन्दकिशोर की दमित काम-वासनाओं की कहानी है। आगरे से वापस लौटने पर बनारस में वह दो युवतियों को देखकर आत्मविभोर हो जाता है। उनमें से छोटी (शान्ति) की मन्द-मन्द मुस्कान नन्दकिशोर के मन में दमित काम-वासना को जाग्रत कर देती है। इस तथ्य का उद्घाटन वह स्वयं करता है—"किसी नवीना किशोरी के दर्शन मात्र से हृदय की ऐसी कायापलट हो सकती है, इससे पहले मुझे कभी इसका अनुभव नहीं हुआ था। कितने ही युगों से रुद्ध मेरी व्याकुल वासना का बांध ही बिलकुल टूट पड़ा था, जिधर को गति पाता था उसी ओर विस्फूर्जित उद्दाम वेग से बहने लग जाता था।"[२]

---

१. सन्यासी पृष्ठ १८-१९

२. संन्यासी पृष्ठ ६४

प्रेम के अनेक रूप 'संन्यासी' में देखे परखे जा सकते हैं। नन्दकिशोर, शांति-प्रेम-प्रिय प्रेयसी प्रणय है; नन्दकिशोर जयन्ती परिणय, परिस्थिति जनित प्रेम का परिणाम है और नन्दकिशोर और उसकी भाभी का विशुद्ध प्रेम देवर भाभी के रूप में भारतीय संयुक्त परिवारोत्पन्न स्निग्ध और स्वच्छ प्रेम है। कैलाश जयन्ती प्रेम चित्रपट पर खेले जा रहे खल नायक द्वारा प्रदर्शित तथा आयोजित रोमांस का चित्र प्रस्तुत करता है। जो समाज द्वारा निषिद्ध होने के कारण सुखी दम्पत्ति के बीच दीवार बनाकर खड़ा हो जाता है और जिसका सहारा लेने के कारण जयन्ती न केवल दाम्पत्य सुख पर कुठारघात करती है अपितु अपने जीवन से भी हाथ धोने पर विवश होती है। इनके अतिरिक्त एक भाई का छोटे भाई के प्रति प्रकट किया गया प्रेमोद्गार भी इस कलयुग में नन्दकिशोर के बड़े भैया के रूप में सतयुगी प्रेम का साक्षात्कार कराता है। एक ओर प्रेम के आवेग से प्रभावित हुआ नन्दकिशोर उच्छृंखलता, क्रूरता और शोर मचाता प्रतीत होता है तो दूसरी ओर संयुत प्रेम में पगी शांति उसके स्वस्थ और परिपक्व स्वरूप को अपनाकर जीवनयापन करती है। बलदेव का समाज और देश-प्रेम भी प्रशंसनीय है।

'प्रेत और छाया' में हमें प्रेम के विकृत रूप के ही दर्शन होते हैं। इसका नायक पारसनाथ हेय कोटि के प्रेम में विश्वास रखने लगता है। वह एक ही समय में अनेक रमणियों से प्रेमाचार का ढोंग रचता है। विवाहित नारी को भ्रष्ट करने में उसे एक कल्पनातीत सुख की अनुभूति होती है। मंजरी से प्यार करके वह इतना संतुष्ट नहीं होता जितना नन्दनी को भगाने पर। और नन्दिनी का यथार्थ स्वरूप जान लेने पर तो उसके प्रेमोद्गारों पर मानो पाला ही पड़ जाता है। हीनता की भावना उसके चित्त में अपनी जड़ जमाने लगती है और वह उसकी बहन हीरा को भगा कर ही तृप्त होती है।

'निर्वासित' में तो प्रेम के साथ-साथ वात्सल्य-रस का स्रोत भी फूट पड़ा है। मिसेज खन्ना अपनी चार बेटियों के पालन-पोषण हित सर्वस्व लुटाने को उद्यत हैं। वह अपनी सभी कुमारियों की शादी बड़े ठाट-बाट से करती हैं। उनको शिक्षा भी उच्च स्तर की दिलाती हैं। उनका मेल-जोल भी उच्च कुलीन युवकों के साथ चाहती हैं। उनके सरल स्नेह के प्रति विद्रोह करने की शक्ति किसी भी कुमारी में नहीं है। नीलिमा सदृश उच्च शिक्षा-प्राप्त चंचल और स्वतंत्र विचारों वाली युवती भी एक बार उनसे विद्रोह करने पर पुनः क्षमा माँग कर उनसे समझौता कर माँ के स्नेह के गुमघुट पीड़न को अद्भुत रूप में दर्शाती है और उनकी आज्ञा मानकर ठाकुर लक्ष्मी नारायणसिंह सदृश नर-नृशंस से विवाह सम्बन्ध जोड़ लेती है।

'मुक्तिपथ' में प्रेम के दिव्य रूप के दर्शन होते हैं। कृष्णा और उसके पति का सुखी दाम्पत्य प्रेम चिर स्थायी और प्रसन्न वातावरण का सृजन करता है। अनेक

छुट-पुट उन प्रभावों के रहते हुए भी दोनों प्रसन्न हैं और जीवन के सभी आनन्दों का उपभोग जी भरकर लूटते हैं। विलसिया सदृश्य दासियाँ उन्हे लूट रही है, नौकर रहीं हैं, इसकी कोई चिन्ता ही उन्हे नही है। सुनन्दा, राजीव उनके परिवार में पल रहे है। प्रमिता का पालन-पोषण वह बड़े दुलार के साथ उसे सर्व सुविधाएँ प्रदान करते हैं। उन्हे अपने घर में सब प्रकार से सुखी नाचती कूदती नजर आती है और जहाँ कोई रंग में भंग डालने वाला आया नही कि उसे दूध की मक्खी की तरह बाहर निकाला। सुनन्दा के पर लग रहे हैं—जानने ही कृष्णा जी उसपर व्यंग्य-बाण बरसाती हैं। प्रमीला की सहानुभूति और प्रेम पाकर सुनन्दा राजीव नवगृह में तो प्रवेश कर लेते है किन्तु नव-जीवन में नहीं। उनका प्रेम सात्विक है, अति दैविक है। राजीव इस धरा के प्रेम में विश्वास नही रखता। वह अतीन्द्रिय प्रेम का कायल है। तभी सुनन्दा से हाथ धो बैठता है। उसके मतानुसार प्रेम से भी बढ़कर वस्तु है कर्म; कठिन से कठिनतर कर्म।

प्रणय की सफलता के लिए अनुकूल वातावरण नितान्त आवश्यक है, किन्तु हम देखते हैं कि कभी-कभी परिस्थिति के अनुकूल होने पर भी प्रणय सफल नही होता। मुक्तिपथ इसका उदाहरण है। कई वर्ष एक साथ रह कर, एक साथ कार्य करने पर राजीव सुनन्दा एक मन नही हो पाये, इसका कारण है राजीव का विशिष्ट जीवन-दर्शन; जो कर्मरत प्राणी है, भाव-रत नही।

'जिप्सी' में प्रेम के विषय मे नवीन प्रयोग किये गये हैं। एक धनी मानी जमींदार रंजन जी एक गरीब बाला मनिया के प्रेम को प्राप्त करने के लिए हिप्नोटिज्म की कला का आश्रय लेते हैं। उनका प्रेम हिप्नोटिक चमत्कार का परिणाम है, जो एकदम हिप्नोटिक प्रभाव के अन्त के साथ-साथ काफूर की तरह उड़ जाता है। रंजन मनिया प्रेम सबध में हिप्नोटिक चमत्कार के दर्शन होते हैं और रंजन शोभना प्रणय पूर्वजन्म संस्कारों का प्रतिफल बनकर सामने आता है। इसके साथ ही उपन्यास में मिल्विया फादर जेरेमिया रोमास भी दर्शाया गया है। सभी पात्र अपने-अपने प्रेम के प्रति ईमानदार बने रहना चाहकर भी ईमानदार नही रह पाये। सिवाये मिल्विया फादर जेरेमिया के। इनकी उत्कट धार्मिक भावना है जिसकी नींव पर इनकी प्रणय बेल बोई गई है। मनिया है जो प्रभु से प्रार्थना करती रहती है कि प्रभु उसके प्रेम को परिपक्व बनावें, रंजन के प्रति वह अकपट प्रेम, अखण्ड श्रद्धा और अटूट विश्वास बनाये रखना चाहती है, पर इसमें सफल होती नही। रंजन का मन [illegible] कि प्रेम कभी इस बात पर विचार नहीं करता कि दूसरे व्यक्ति की सामाजिक स्थिति क्या है और जो अपने प्रिय पात्र की स्वतंत्र सत्ता का पूरा सम्मान करता है, किन्तु रंजन भी मनिया की स्वतंत्र सत्ता का मान सदैव नहीं कर पाया। काम-प्रधान हो जाने के कारण रंजन शोभना प्रणय भी क्षण-भंगुर सिद्ध होता है।

'जहाज का पंछी' प्रेम के अलौकिक स्वरूप को लेकर सामने आता है। इसका नायक किसी व्यक्ति विशेष से प्रेम नहीं करता, किसी नारी के साथ प्रणय-लीला नहीं रचता-अपितु अखण्ड विश्व के साथ, मानव मात्र के साथ प्रेम-तार जोड़ता है। वनोरा के प्रेमोद्गार, कला की प्रणयोक्तियाँ और लीला के हाव-भाव भी उसे डिगाने में असमर्थ रहते हैं। वह मानवता की उन्नति चाहता है और संसार की प्रगति। वह सबसे प्रेम करता है। पंत की यह पंक्ति 'मानव जग में बँट जावें दुख-सुख से और सुख-दुख से' ही उसे अभीष्ट है। वह लीला का समस्त धन जन-हित संग्रह कर नहीं रखता अपितु उसे जनहित बाँटकर ही उसके साथ परिणय की कल्पना करता है। उसके विचार में प्रेम की चर्चा उसी समय शोभा देती है जब भौतिक विषमता मिट जाये, जीवन की कठोरता कोमलता में परिणत हो जाये। अन्यथा जीवन संघर्ष-युग में तो यह उपहास का विषय बनेगी। राँची में नायक की भेंट एक ऐसे संन्यासी से होती है जो पागलों के अस्पताल में भ्रान्त मरीजों की सेवा करते हैं—उनसे प्रेम करते हैं, उनकी पीड़ा हरते हैं। वह नायक को एक नये तथ्य से परिचित कराते हैं। उनके अनुसार स्त्री रोगिणियाँ अधिकतर जीवन में दाम्पत्य की कटुता अनुभव करके ही पागल बन जाती हैं। जब कि पुरुष आर्थिक कारणों से दिमागी संतुलन खोते हैं। स्त्री का हृदय कोमल होता है। वह प्रेम की असफलता पर रो ही नहीं पड़ती, मानसिक संतुलन तक खो सकती है।

विवाह

विवाह समाज में प्रचलित उस स्वस्थ संस्था का स्वरूप है जिसके फलस्वरूप किसी स्त्री पुरुष का शारीरिक, नैतिक और सामाजिक गठबंधन हो जाता है और जिसके अधिकार को स्वीकार करने पर प्रत्येक नर-नारी स्वच्छ, सुन्दर और सुखकर जीवन व्यतीत कर सकता है। सब देशों और सब कालों में इसका प्रबल विरोध भी होता रहा है।

जोशी जी के उपन्यासों के अधिकांश प्रमुख व्यक्तिवादी नायक प्रारम्भ में केवल इसे नकारते ही नहीं अपितु तर्क का आश्रय लेकर सशक्त शब्दों में इसका घोर विरोध भी करते हैं। उनके प्रबल विरोध को देखते हुए प्रतीत होता है कि मानो वे संसार भर से इसे उन्मूल कर देंगे। केवल मन से इसकी सत्ता की पूर्ण अवमानना करने पर भी उनका अवचेतन मन इसकी आवश्यकता अनुभव करता है। धीरे-धीरे उनके विचार बदलते हैं और अन्ततः वे स्वयं को इस बंधन में जकड़ भी लेते हैं।

'प्रेत और छाया' का नायक पारसनाथ प्रारम्भ में एक विवेकशील, स्नेहशील और महत्वाकांक्षी युवक के रूप में हमारे सामने आता है। वह अपने पिता की दुराग्रहपूर्ण बातें सुनकर भ्रान्त होता है। उनके द्वारा की गई नारी भर्त्सना सुनकर वह नारी मात्र से घृणा करने लगता है। विवाह के नाम से उसे चिढ़ हो जाती है। विवाह की बात करते ही वह आग बबूला होता है। जब वह काशी से पन्ना पुकारकर भागता है तब

भी मूल कारण विवाह-अभाव ही होता है, जब वह मंजरी से तर्क-वितर्क करता है तब भी विवाद का प्रसंग विवाह ही होता है—'फिलासफर लड़की से चित्रकार का विवाह' मंजरी के ये शब्द उसके लिए चेतावनी हैं।

विवाह की आवश्यकता में पारसनाथ की कोई आस्था नहीं, क्योंकि इससे उसके उन्मुक्त, उन्मुक्त प्रेम-दर्शन को सीमा परिवर्तित होने का खटका उसे लगा रहता है। वह एक प्रेमी का ढोंग रचकर दार्शनिक की भाँति मंजरी से प्रश्न करता है, "क्या तुम वैवाहिक विधान को—उसके सामाजिक रूप को—अनिवार्य रूप से महत्त्व पूर्ण मानती हो ? क्या बिना सामाजिकता की मुहर के दो हृदयों का सच्चा प्रेम तुम्हारी दृष्टि में कोई अर्थ नहीं रखता ?"[1] प्रश्न को सुनकर मंजरी स्तब्ध नहीं रह जाती, अपितु संयत शब्दों में संतुलित विचारों से परिपूर्ण उत्तर देती है। उसके उत्तर में विवाह की आवश्यकता स्वयं सिद्ध हो उठी हैं। वह कहती है—

"अर्थ क्यों नहीं रखता। दो हृदयों का सच्चा प्रेम किसी भी हालत में किसी भी परिस्थिति में अपने आप में महत्त्वपूर्ण है, इस बात को कोई भी सहृदय और समझदार व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता। पर इस पर 'समाज की मुहर' लगने से उसकी महत्ता एक सुन्दर, शालीन और व्यवस्थित रूप धारण कर लेती है। मेरा तो यह विश्वास है कि मनुष्य ने सभ्यता और संस्कृति से जितने भी सामाजिक नियमों का आविष्कार किया है उन सबमें विवाह की व्यवस्था श्रेष्ठ है ?"[2]

पारसनाथ इन शब्दों को सुनकर न केवल दुःखी होता है अपितु क्रोधित भी। चिढ़कर वह इस प्रथा को ढोंगियों और सफेदपोश बदमाशों की प्रथा तक कह जाता है। इसमें उसे एक ओर पाशविक स्वार्थ तो दूसरी ओर दासता की गन्ध आती है। इससे उसे व्यक्ति का व्यक्तित्व हनन होता दीख पड़ता है।

पारसनाथ का अवचेतन मन इसकी आवश्यकता और आदर्श पर पूर्ण आस्था प्रकट करता है। जीवन के अवसादपूर्ण, भ्रममय क्षणों में इसकी श्रेष्ठता सूझ पड़ती है। एक दिन जब उसे दार्जिलिंग वाली लड़की की याद आई, तो यह टीस मीठी वेदना में बदल गई। वह सोचने लगा कि यदि उसके साथ उसने विवाह कर लिया होता तो सम्भवतः उसके जीवन में एक व्यवस्था आ जाती और भय और भ्रान्ति से उत्पन्न जिन-प्रेत छायाओं ने इधर कुछ समय से उसके जीवन को नरक की चहारदीवारी के भीतर बाँध दिया है, तब शायद वे न रहने पातीं। ज्यों-ज्यों उस लड़की की स्मृति उसके भीतर उज्ज्वल-से-उज्ज्वलतर होती जाती थी, त्यों-त्यों वेदना की मिठास भी बढ़ती जाती थी।

---

१. प्रेत और छाया १७१
२ " २

विवाह के महल को अचेत अवस्था में स्वीकार करने पर भी विलास के हाथों बिका पारसनाथ उसे शीघ्र ही नहीं अपनाता। जीवन के अनन्त उतार-चढाव देख पिता द्वारा उसके स्वच्छ पक्ष पर प्रकाश डाले जाने की बात को सुनकर ही वह हीरा के गले का हार बनता है।

मनोविश्लेषण करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि पारसनाथ के विवाह संबंधी विद्रोहात्मक भाव उसकी एक विशेष ग्रंथि के दुष्परिणाम स्वरूप हैं। घर-बार छोड़ते समय ही उसके मन मे हीनता की ग्रंथि जन्म ले-लेती है। वह अपने को जारज संतान समझ दीन-हीन, असामाजिक और पतित समझने लगता है। उसकी समझ मे ऐसे व्यक्तियो के लिए विवाह का कोई मूल्य नही। मंजरी को त्यागने से पूर्व उसके मन में जो भाव उत्पन्न होते हैं वे इस मत का प्रमाण हैं ? देखिए—

"नारी का यह अनंतकाल व्यापी स्नेह-बंधन स्वीकार करें वे लोग जिन्हें समाज का सम्मान और वैभव का वरदान प्राप्त है; पर मेरे जैसे प्रेत-लोक मे निर्वासित भगोड़े किसी भी हालत में इस प्रकार के बंधन को अधिक समय तक मानकर नही चल सकते।"[१] किसी प्रकार का बंधन भी उसे स्वीकार नही, फिर विवाह सदृश परम पवित्र और दायित्वपूर्ण बधन को वह स्वीकार करे तो कैसे करे ? वह तो प्रतिहिंसा की भावनाओं का शिकार हुआ नारी मात्र को ही व्यभिचारिणी, कुलटा और पापिष्ठा समझता है और उनसे खुलकर खेलता भी है, किन्तु ग्रंथि के खुल जाने पर उसके आगे विवाह की पवित्रता और महत्व स्पष्ट हो जाते हैं और वह हीरा-परिणय सूत्र मे बंध जाता है।

जोशी जी के प्रसिद्धतम उपन्यास संन्यासी का नायक नन्दकिशोर भी अपने मन मे विवाह के प्रसंग को लेकर एक द्वन्द्व की अनुभूति करता है। यह द्वन्द्व मानसिक भी है और शारीरिक भी। उसने शांति के साथ जी भर कर प्रणय क्रीड़ा खेली है और यहाँ तक कि उसे प्रणय का पुरस्कार भी दिया है। उसका प्रेम एक कामुक और उन्मुक्त प्रेमी का प्रेम है जो गरजता है, बरसता नही, उसमें धीरता और वीरता के तो लेश-मात्र दर्शन हमें नहीं मिलते। वह अपनी भावुकता के प्रवाह में बह कर समय-समय पर प्रासगिक रूप से शान्ति के सम्मुख प्रणय के उत्तरदायित्वपूर्ण पक्ष की ओर सकेत करता चलता है किन्तु दृढता के साथ उसे सदैव के लिए अपना बनाने के लिए कोई महत्वपूर्ण पग नही उठाता। एक शान्ति है जो परिपक्व विचारों की रमणी है। वह प्रणय के परिणाम की कल्पना मात्र से सिहर उठती है। अत. समय-समय पर अपनी आशका को भी प्रकट करती चलती है, किन्तु उसे परिणय-बन्धन में आबद्ध नहीं कर पाती। नन्दकिशोर अपने बड़े भाई साहब के सहज प्रभाव में आकर शान्ति को नहीं

---

१. प्रेत और छाया पृष्ठ २४८

त्यागता अपितु उनकी योजना का शिकार होकर प्रणय-बन्धन से अलग कर दिया जाता है। भाई साहब शान्ति पर सामाजिक नैतिकता और जातीयता का जादू चला कर उसे विवाह का स्वप्न तक देखने का मार्ग नहीं छोड़ते, अपितु नारी-विषयक त्याग और सेवा का उपदेश देकर अलग हो जाने की अनुमति देते हैं। वह अन्तर्जातीय विवाह का बड़ा विरोध करते हैं और शान्ति को स्पष्ट बता देते हैं कि नन्दकिशोर से उसका विवाह कदापि-कदापि सम्भव नहीं—एक तो वह उनकी जाति का नहीं दूसरे उसका सामाजिक स्तर भी उनके समान नहीं, इसके लिए वह नन्दकिशोर के चरित्र तक की आलोचना कर डालते हैं। उसे परम प्रमादी, निकम्मा और आलसी बताते हैं। जिसके साथ उसका जीवन सम्यक्रूपेण नहीं चलेगा और शान्ति प्रणय को भुला कर चल देती है, दूर, अनन्त और अनिश्चित दिशा में—

यह तो शान्ति के प्रणय का परिणाम है जिसमें उसके सब सुनहले स्वप्न बिखर कर रह जाते हैं। दूसरी ओर जयन्ती के प्यार का मूल्यांकन करना है, उसके विवाहित जीवन की मीमांसा करनी है। सबसे अधिक आकर्षक बात तो नन्दकिशोर की मानसिक स्थिति है। एक ओर वह विवाह से कतराता है तो दूसरी ओर जयन्ती को पूर्ण रूपेण पा लेना ही नहीं चाहता अपितु उससे विवाह कर उसके दम्भ, सघन और दुर्दमनीय गर्व को चूर-चूर कर देना चाहता है। उसका चरित्रगत यह विरोधाभास हिन्दी उपन्यास-साहित्य में अपनी ही कोटि का है। विवाह के प्रति विद्रोहपूर्ण दृष्टिकोण उसका शैशव से रहा है। इसी के कारण उसने शान्ति को अनेक बार रुलाया है और जयन्ती को भी। विवाह के महत्त्व को स्वीकार करने से उसका अवचेतन सदैव इन्कार करता रहा है। जब वह शान्ति को त्याग कर बड़े भाई साहब के साथ रेल में बैठ कर शिमला जा रहा होता है तो एक युवक सुखी दम्पति को देख कर उनके सुखी होने का विश्लेषण करता हुआ अपने विवाह विरोधी भाव प्रकट करता है—'ये दोनों इतने सुखी और सन्तुष्ट क्यों हैं? इसका एक कारण अवश्य यह है कि दोनों के स्वभाव एक दूसरे के अनुकूल हैं। पर क्या केवल यही एक कारण सुखी और सन्तोष के लिए काफी है? मान लिया जाय, ये दोनों पति-पत्नी न होकर अविवाहित अवस्था में प्रेमी-प्रेमिका का जीवन बिताते होते तब क्या उस हालत में भी इन दोनों की बातों में यही सहज स्वाभाविकता, यही निर्मुक्त हास्य और यही निर्द्वन्द्व भाव पाया जाता जो इस समय दिखाई हो रहा है?'[1] और इस प्रश्न का उत्तर वह अपने मतानुसार देता है कि विवाह में भी शक्तिशाली मनाव। वह समाज क्यों विवाह के महत्त्व को मान्यता देने लगता है, लोगों को अपने ढंग पर जिन्दा दबे एकाकी विवाह को नहीं। साथ ही इसके अवसर उसका अवचेतन मन अनुकूल कर

---

१. सन्यासी पृष्ठ २७०-७१

जोशी जी के तीन प्रमुख नारी पात्र

जोशी जी ने अपने कथा साहित्य में भिन्न-भिन्न रुचि के चरित्रों की अवतारणा की है। उनके नारी पात्र पुरुष पात्रों की तुलना में सशक्त, गंभीर, संयमी और प्रभावशाली हैं। उनका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रस्फुटित होता है। पुरुष पात्रों से प्रभावित होने की बजाय वे उन्हें आन्दोलित करती हैं, उनमें आकर्षित होकर भी उन्हीं को प्रेरित करती हैं, और उनके पथ-भ्रान्त हो जाने पर एक विशिष्ट दृष्टिकोण अपना लेती हैं। यह दृष्टिकोण एक सीमा तक नवयुगीन जाग्रत नारी का दृष्टिकोण है—इसके अनुसार नारी-वर्ग में युगान्तरकारी परिवर्तन उद्भासित होगा। आज की नारी पुरुष प्रचालित सामाजिक मान्यताओं को ज्यों-की त्यों मानने को तैयार नहीं है—वह उनके अनैतिक अत्याचारों को और अधिक सहन नहीं करेगी अतः उसमें दो भावनाएँ जन्म ले रही हैं—

(i) पुरुष-वर्ग की उपेक्षा के प्रति प्रतिकार की भावना—

(ii) अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखने के लिए स्वावलम्बी बनने के विचार।

इन दो भावनाओं के अतिरिक्त एक मिली-जुली भावना, पुरुष पर निर्भर रहने की भावना, भी कुछ पात्रों में उभर रही प्रतीत होती है, किन्तु यह भावना इतनी गौण पड़ गई है कि नई चेतना के साथ कहीं भी मेल नहीं खाती।

इस नवयुगीन भावना का प्रचार और प्रसार करने वाले प्रमुख पात्र हैं शान्ति, मंजरी और सुनन्दा। इन तीनों के अन्तर्मन में शुरू-शुरू में तो पुरुष-पात्रों के प्रति आत्मकरुणा और पूर्ण श्रद्धा उत्पन्न होती है। ये तीनों ही धीरे-धीरे क्रमशः नन्दकिशोर, पारसनाथ और राजीव को प्यार करने लगती हैं। किन्तु प्रथम दो प्यार प्रणय के कठोर और वास्तविक अन्त को विस्मृत कर विवाह किये बिना ही नन्दकिशोर और पारसनाथ के प्रति आत्मसमर्पण कर देती हैं जिसके परिणाम को भोगने के लिए वे एकाकी, असहाय और निरुपाय छोड़ दी जाती हैं। वैयक्तिक अत्याचारों से उत्पीड़ित ये नारियाँ कुछ क्षणों के लिए घबरा कर भी जीवन भर के लिए घुल-घुल कर मरने को तैयार नहीं हो जाती, अपितु अपने प्रति किये गये अत्याचारों का प्रतिशोध लेने के लिए विद्रोहात्मक भावनाओं का आश्रय लेकर आत्म मर्यादा को प्रतिष्ठित करने का मार्ग खोज निकालती हैं। पुरुषवर्गीय उपेक्षा का प्रतिकार लेने के

जोशी जी ने लिया है। संन्यासी, पर्दे की रानी, प्रेत और छाया और मुक्तिपथ इसके उत्कृष्ट प्रमाण हैं। मुक्तिपथ में सुनीता राजीव नामक युवक से केवल इसलिए विवाह करती है कि उसे एक ऐसा साथी चाहिए जिसे वह चुन कर गुरु बना सके, जिसे सके और जिस पर अपना स्नेह न्यौछावर कर सके। अपनी इस मनमानी हरकत के लिए उसे आजीवन वैधव्य की भट्ठी में तपना पड़ा।

विवाह के स्वाभाविक और स्वस्थ रूप को प्राप्त करने के लिए तन, मन, धन से जुटे नायक भी दृष्टिगोचर होते हैं। निर्वासित का नायक महीप एक नहीं चार-चार बहनों से एक-एक कर विवाह याचना करता है किन्तु चारों में से किसी के प्रणय को परिणत हुआ न देख निराश हो जाता है, जीवन से ऊब जाता है। जिप्सी का नायक रंजन मनिया को अपनी परिणीता बनाने के लिए धर्म परिवर्तन तक कर लेता है। 'सुबह के भूले' का नायक विजन अपनी पूरी शक्ति लगा कर आत्मोन्नति एवं आत्म परिष्कार कर गिरिजा के योग्य बनकर उसका पाणिग्रहण करता है। 'जहाज के पंछी' का नायक लीला को अपने विचारों से ढालकर उससे सर्वस्व अनहित दान करा कर ही उसका जीवन साथी बनता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जोशी जी ने अपने उपन्यासों में प्रेम और विवाह के नाना रूप हमारे सामने रखे हैं, जिनमें से कुछ तो एक बड़ी भारी शिक्षा भी हमें दे सकते हैं।

जोशी जी के तीन प्रमुख नारी पात्र

जोशी जी ने अपने कथा साहित्य में भिन्न-भिन्न रुचि के चरित्रों की अवतारणा की है। आपके नारी पात्र पुरुष पात्रों की तुलना में सशक्त, गंभीर, संयमी और प्रभावशाली हैं। उनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रस्फुटित होता है। पुरुष पात्रों से प्रभावित होने की बजाय वे उन्हें आन्दोलित करती हैं, उनसे आकर्षित होकर भी उन्हीं को प्रेरित करती हैं, और उनके पथ-भ्रान्त हो जाने पर एक विशिष्ट दृष्टिकोण अपना लेती हैं। यह दृष्टिकोण एक सीमा तक नवयुगीन जाग्रत नारी का दृष्टिकोण है—इसके अनुसार नारी-वर्ग में युगान्तकारी परिवर्तन उद्भासित होगा। आज की नारी पुरुष प्रचालित सामाजिक मान्यताओं को ज्यों-की त्यों मानने को तैयार नहीं है—वह उनके अनैतिक अत्याचारों को और अधिक सहन नहीं करेगी अतः उसमें दो भावनाएँ जन्म ले रही हैं—

(i) पुरुष-वर्ग की उपेक्षा के प्रति प्रतिकार की भावना—

(ii) अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखने के लिए स्वावलम्बी बनने के विचार।

इन दो भावनाओं के अतिरिक्त एक मिली-जुली भावना, पुरुष पर निर्भर रहने की भावना, भी कुछ पात्रों में उभर रही प्रतीत होती है, किन्तु यह भावना इतनी क्षीण पड़ गई है कि नई चेतना के साथ कहीं भी मेल नहीं खाती।

इस नवयुगीन भावना का प्रचार और प्रसार करने वाले प्रमुख पात्र हैं शान्ति, मंजरी और सुनन्दा। इन तीनों के अन्तर्मन में शुरू-शुरू में तो पुरुष-पात्रों के प्रति आत्मसमर्पण और पूर्ण श्रद्धा उत्पन्न होती है। ये तीनों ही धीरे-धीरे क्रमशः नन्दकिशोर, पारसनाथ और राजीव को प्यार करने लगती हैं। किन्तु प्रथम दो बार प्रणय के कठोर और वास्तविक अर्थ को विस्मृत कर विवाह किये बिना ही नन्दकिशोर और पारसनाथ के प्रति आत्मसमर्पण कर देती हैं जिसके परिणाम को भोगने के लिए वे एकाकी, असहाय और निराश छोड़ दी जाती हैं। वैयक्तिक अत्याचारों से उत्पीड़ित ये नारियाँ कुछ क्षणों के लिए घबरा कर भी जीवन भर के लिए घुट-घुट कर मरने को तैयार नहीं हो जातीं, अपितु अपने प्रति किये गये अत्याचारों का प्रतिशोध लेने के लिए विद्रोहात्मक भावनाओं का आश्रय लेकर अपने अस्तित्व को प्रतिष्ठित करने का मार्ग खोज निकालती हैं। पुरुषवर्गीय उपेक्षा का प्रतिकार लेने के

लिए ही राजीव को सदैव के लिए त्यागकर सुनन्दा अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का पथ चुनती है। असाधारण पात्रों (नन्दकिशोर और पारसनाथ) को कुछ शिक्षा देने के लिए ही शांति और मंजरी भावुकतापूर्ण रूमानी वातावरण से ऊपर उठकर यथार्थ धरा पर पग बढ़ाकर आत्मानुष्ठान करती हैं।

अपने विविध उपन्यासों में जोशी जी ने नारी के अनेक रूप दिखाये हैं। इनमें कुछ पात्र पूर्णतया भारतीय रंग में रंग गये हैं तो कुछ-कुछ पश्चिमी विचारधारा से प्रभावित हुए नवीन भावनाओं की चोली पकड़ते हैं। कई उपन्यासों में तो यह निर्णय करना भी कठिन हो जाता है कि कौन नायिका है कौन उपनायिका, किसका चरित्र अधिक मर्मस्पर्शी है, किसका गौण ? 'सन्यासी' की शांति और जयन्ती; 'प्रेत और छाया' की मंजरी और नन्दिनी; 'सुबह के भूले' की भमिया और गिरिजा टक्कर की नायिकाएँ हैं। 'निर्वासित' में भी नीलिमा और प्रतिमा के प्रतिभा और व्यक्तित्व को देखते हुए हम किसे अधिक गरिमामय मानें। 'जिप्सी' में शोभना और मनिया दोनों में एक समान उन्नत व्यक्तित्व और भाव-सौंदर्य की झलक मिलती है। 'जहाज का पंछी' नारी के विभिन्न स्वरूपों से परिचय कराता है इनमें से प्रमुख तीन पात्रों पर अलग से प्रकाश डालने का विचार क्यों बना, स्पष्ट कर देना उचित होगा।

एक तो इसलिए कि तीनों नारी पात्रों में एक गजब की भाव-समता है। दूसरे तीनों की जीवनियों में पुरुषगत शोषण की यंत्रणा है। तीसरे तीनों में अपूर्व दृढ़ता के दर्शन मिलते हैं, जो तीनों को अबलापन की कोटि से उठाकर सबल नारीत्व पद पर प्रतिष्ठित करती है। नारी के आँसुओं का क्या मोल है, वे क्यों बहते हैं ? यदि जानना हो तो इन तीनों पात्रों के मन को टटोलना होगा और इनके द्वारा बहाये आँसुओं में एक डुबकी लगानी होगी। नारी की आर्थिक या सहृदयताजनित विवशता का रोमांचकारी रूप देखना हो तो शांति और मंजरी के फफोलों को कुरेदना होगा। दु:खवाद की चरम सीमा से जानकारी प्राप्त करने के लिए भारतीय विधवा की प्रतिमूर्ति सुनन्दा का साक्षात्कार करना होगा। व्यक्तिगत स्वार्थ, अहंभाव, संकीर्ण दृष्टिकोण, कुसंस्कार और असमाधारण कदाचारों से परिपूर्ण पुरुष पात्रों द्वारा प्रताड़ित नारी के अन्तर का हाहाकार भरा क्रन्दन अवलोकन हित इन तीन प्रतिनिधि नारी पात्रों को चुना गया है।

इनके अतिरिक्त नारी-पात्रों की भी चारित्रिक विशेषताएँ हैं जिनकी मीमांसा अलग-अलग उपन्यासों की सामूहिक मीमांसा के रूप में कर दी गई है। जोशी जी ने नारी-भावना का उत्कृष्टतम चित्रण अपनी सभी रचनाओं में किया है। ऐसा लगता है कि वे नारी-मात्र के प्रति एक संवेदनशील हृदय रखते हैं और उसके अवचेतन मन में धर्मी वासनाओं, लालसाओं और अपूर्व महत्वाकांक्षाओं को पकड़कर बाहर खींच लाते हैं। नारी-मन की उत्कट चाह होती है एक ऐसे पुरुष की तलाश जो मन

नारी स्वतन्त्रता किस प्रकार प्राप्त करती है। किन्तु आखिर वह कैसी स्वतन्त्रता चाहती है? पुरुष सापेक्ष अथवा पुरुषनिरपेक्ष? पुरुष निरपेक्ष स्वतन्त्रता का क्या अस्तित्व होगा, उसके बिना उसकी क्या मनोदशा होगी? इन सब बातों के उत्तर लिये आपको शान्ति, मंजरी, सुनन्दा और नन्दिनी आदि तैयार मिलती हैं। नन्दिनी पुरुष सापेक्ष स्वतन्त्र्य में सहयोग को स्वीकार तो करती है किन्तु एक शर्त के साथ और वह शर्त है पुरुष का मानसिक स्तर।[1] उसके मतानुसार स्त्री-पुरुष का मिलन केवल शारीरिक धरातल पर हो जाना ही काफी नहीं परन्तु दोनों का मानसिक गठन भी समान स्तर पर होना नितान्त आवश्यक है। स्त्री आश्रय चाहती है, किन्तु ऐसा आश्रय चाहती है जिसकी छाँह तले वह अपने मनोद्गारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति कर सके, मनोल्लास कर सके। वह ऐसे पुरुष के बंधन को स्वीकार करने को तैयार नहीं है जो उसके भावों की अवमानना करने वाला है। एक स्थल पर वह पारसनाथ से कहती है—"जिस नारी के ऊपर कोई बंधन न हो—न समाज का, न व्यक्ति का, उसे मैं बहुत सुखी नहीं मानती, पर वह उस स्त्री की तुलना में अवश्य सुखी है जिसके ऊपर एक ऐसे पुरुष का बंधन हो जिसे वह कतई नहीं चाहती, जिसे वह तन से, मन से, सारी आत्मा से घृणा करती है।"[1]

नारी की नवनीत-सी कोमलता पर जब-जब पुरुष की वज्र सम कठोरता का प्रहार होता है वह हाहाकार कर उठती है। नारी की गौ सम सरलता पर जब-जब वह बगुले-सी कपटता का दाँव चलाता है वह चीत्कार कर उठती है और अन्ततः नागिन-रूप धारण कर उसी पर कुठाराघात करती है। नारी जीवन में सब कुछ सह सकती है किन्तु नहीं सह सकती तो वह है अपने प्रणय के परिणाम (शिशु) पर प्रहार। उसकी दुर्दशा की कल्पना मात्र से वह सिहर उठती है। अपने पति तक से (या प्रिय-

---

१. प्रेत और छाया पृष्ठ २२८

सब कह तो) छोड़ देने को तैयार हो जाती है। उसे परमेश्वर मान पूजा किये जाने की भावना अब उसमें तिरोहित होती चली जा रही है। उसके निष्ठुर हो जाने पर भी उसी के नाम की माला इस अधिक समय तक वह नहीं जपेगी—नहीं जपेगी—अपितु मशाल बन उसके अत्याचार का प्रतिशोध लेकर ही चैन लेगी, इसी दृष्टिकोण का पोषण शान्ति, मंजरी और सुनन्दा कर रही हैं, जिनके मनोद्गार पठनीय हैं।

शान्ति :

भारतीय सभ्यता के प्रति अगाध श्रद्धा एवं विराग के रंग में रंगी संकोचशील अन्तर्मुखी शान्ति का चरित्र परम उज्ज्वल एवं आकर्षक है। एक सुशिक्षित, सभ्य विदुषी के सभी गुण उसमें विद्यमान हैं। वह अबला ही नहीं सबला भी है। उसका अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व है, जीवन के प्रति स्वस्थ एवं संतुलित दृष्टिकोण है। उमापति से प्रथम भेंट में जो वार्ता वह करती है वह उसके उदार विचारों की द्योतक है। नन्द के विचार में वह अत्यन्त सरल है अतः वास्तविक प्रेम की अधिकारिणी है।

मधुर भाषी है किन्तु मधुर व्यंग्य द्वारा मर्म को चीर भी डालना जानती है। नन्द से प्रथम वार्ता में वह कहती है —"पर आप क्या हमारे यहाँ का पानी पियेंगे? धर्म के बिगड़ जाने का डर तो नहीं? आपके मित्र यदि आपके इस अधर्म की चर्चा मित्र-मण्डली में कर बैठे तो आपको मुँह दिखाना कठिन हो जायगा। जरा सोच लीजिए।" कितना माधुर्य है इन शब्दों में और है कितना तीव्र व्यंग्य। नन्द तो केवल इतना ही सोच पाता है, "शांति देवी भी तब क्या डंक मारने की कला से परिचित हैं।" शेष पाठक कल्पना कर सकते हैं उसके अंग-प्रत्यंग की चेष्टायें, मन की भाव-भंगिमाएँ एवं मस्तिष्क की अपूर्व कल्पनाएँ नन्द के अचेतन मन को झंझोड़ देती हैं। उसे वह भावुकता एवं कर्मण्यता के पलड़े में झूल रही दृष्टिगोचर होती है! "हटो" और "दुष्ट" इन दो शब्द रूपी तीरों से वह नन्द के मर्म को बेंधती है।

शान्ति के चरित्र में जोशी जी ने अकल्पनीय साहस एवं दृढ़ निश्चय का संचार किया है। उसके नेत्रों में अश्रु-कण होने पर भी मन में आत्मबल है; परिस्थितियों के विषम होने पर भी जीवन में उन्नत होने की आकांक्षा एवं शक्ति है। बन्द कमरे में वार्ता करते हुए घबराये हुए नन्द को सम्बोधित कर वह कहती है, "दरवाजा बन्द किया तो क्या हुआ? इसमें डर की क्या बात है? तुम यहाँ क्या कोई चोरी करने आये हो, जो डर रहे हो।" पृष्ठ ७५। उसके अदम्य साहस से प्रभावित होकर नन्द उसके बारे में कहता है : "उस प्रणयान्धकार में भी उसकी भावाविष्ट, रहस्यमय, कूट स्वप्न से विभोर आँखों की अवर्णनीय ज्योति स्पष्ट झलक रही थी और तीव्रता से विद्युच्छटा की तरह विकीरित हो रही थी।" पृष्ठ ७६.

शान्ति नन्द के प्रेम में छली नारी है—किन्तु वह छल का प्रतिकार अन्य

होकर नहीं लेती अपितु अपने को उन्नति की चरम सीमा तक पहुंचा कर मुक्ति का आस्वादन लेकर करती है। मोह के बंधन को काटकर वह कर्तव्य के पथ पर अग्रसर होती है। सन्तान को नन्द की अमानत मानकर गर्भ की असीम पीडा सहन करती है। वह क्षमा करना नहीं सीखी, तभी तो नन्द द्वारा अपने अतीत की प्रताडित एवं लांछित आत्मा को उन्नततर जीवन के रहे-सहे मोह बंधन (लल्लन) को नन्द को सौंप कर मुक्ति मार्ग पर चल पडती है। प्रतिकार के रूप में वह नन्द को युग-युगान्तर तक मानसिक पीडा का अभिशाप दे गई। स्वेच्छाचारी, अहवादी, घोर स्वार्थी नन्द से प्रतिशोध लेकर उसने नारी के समस्त रूप के दर्शन पाठक को कराये हैं।

सामाजिक एवं नैतिक मर्यादा का ध्यान उसे सदैव रहा है तभी तो यह नन्द के साथ चलते समय कहती है—"यदि मुझे भरतपुर मेरे भाई के पास पहुँचा दो तो तुम्हारी बडी कृपा होगी।" पृष्ठ ६६। नन्द के प्रति प्रेम होने पर भी अविश्वास उसका व्यक्तिगत अविश्वास नहीं कहा जा सकता, यह तो नारी के कोमल, सरल प्रेममय हृदय का पुरुष मात्र के प्रति अविश्वास है तभी तो वह इलाहाबाद में नन्द द्वारा धोखा दिये जाने पर बलदेव तक के पास नहीं रहती, अपितु उससे सहायतार्थ कुछ धन लेकर देहरादून चल देती है।

नन्द को अपने शैशव की गाथा सुनाते हुए वह अपने चरित्र के एक पक्ष को उद्घाटित कर देती है, "माँ को बचपन में कितना परेशान करती थी। बात-बात में रूठती, बात बात में भगडती।" पृष्ठ १४२। यह रूठना और मनाना—माँ के पश्चात् कौन होगा मनाने वाला? इस कौन की ही खोज में वह नन्द को पाती है और अपना सर्वस्व उसमे मिला देना चाहती है। किन्तु उसे पूरी तरह से जकड लेने के लिए उसके पास आँसुओं के तारों से बटे हुए सुकोमल पाश और पवित्र आत्मा के सरल विश्वास के अतिरिक्त कुछ नहीं है। सबला बनना चाहते हुए भी लेखक ने उसका अबला रूप दिखाया है। वह नन्द का हाथ अपने कुसुम-करों में अपने सिर पर रख उससे कसम लेती है कि जल्दी आओगे। नन्द के कुछ देरी से आने पर वह आँसुओं की झडी लगा देती है और कहती है। "मैं तो अकेले में मारे डर के घबरा रही थी।" पृष्ठ १००

नन्द के शब्दों में वह प्रेम की पावनतम मूर्ति है। वह सोचता है, "बेचारी शान्ति! मेरे विदा होते समय कैसी व्याकुल, करुण प्रार्थना से उसने मुझे विकल कर दिया था। और उसका वह असीम धैर्य तथा अपूर्व दृढ़ता यदि उसका प्रेम केवल एक साधारण वासनात्मक उमंग मात्र होता, तो ऐसी दृढता तथा आत्मविश्वास का होना कभी सम्भव न होता।" पृष्ठ ८२। और भी 'लज्जा का कोमल पर्दा उसकी स्वच्छ तेजस्विता को ढकने की चेष्टा कर रहा था। पर जिस प्रकार हीरक का अन्तर्गत प्रकाश उसके भीतर न समा सकने के कारण ज्योतिकणों को बाहर बिखेरता रहता

के समय उस रमणी के मन की दशा का चित्रण लेखक नहीं कर पाया जो चारित्रिक परम्परा की दृष्टि मे एक बडी भूल है। मागने से पूर्व शान्ति के मन मे किन भावनाओं का एक तूफान मचा होगा ?

नन्द को त्यागने के पश्चात् लेखक ने शांति मे एक प्रशान्त गाम्भीर्य के दर्शन कराये हैं! नन्द से पुनः मिलने पर वह केवल मनौती करवाने के लिए मानवती का रूप धारण नहीं करती अपितु उसे जीवन मे एक बडी शिक्षा देने, यत्रणा मे डालने के लिए मान का अभिनय रचती है। वह उसे एकान्त में एक क्षण के लिए भी बात का अवसर नहीं देती—कितना संयम, कितना धैर्य एव साहस भरा है इस महान् आत्मा मे ? विरह के पश्चात मिलन तो सभी चाहते हैं किन्तु विरह के पश्चात् अनन्त वियोग की चाह असाधारण व्यक्तित्व की परिचायका है, जिसमे तेज है, ओज है आत्मा की शुद्ध प्रतिध्वनि है।

मंजरी :—

मंजरी का चरित्र एक देदीप्यमान भारतीय सती का चरित्र है। मंजरी का पूर्ण चरित्र प्रकाश में आने पर हम सतीत्व की नव व्याख्या कर पाते हैं। सती केवल वह स्त्री नहीं है जो अपना नारीत्व एक बन्धन में जकड कर जन्म-जन्मान्तर के लिए उस सूत्र से जोड ले और दूसरी ओर से अनेक झटके खाकर अस्त-व्यस्त हो जाने पर भी उसी के नाम की माला जपती रहे अपितु सतीत्व नाम है उस उदात्तामयी भावना का जो एक रमणी को स्वय के पगो पर दृढ़ता से खड़े होना सिखाती है, नव परिस्थितियो मे नवीन दृष्टिकोण को अपना कर मानवता की सेवा का मूल मंत्र रटाती है—इस परिभाषा की कसौटी पर मंजरी पूरी उतरी है, अतः सती है।

मंजरी के रूप में एक ऐसी नारी बैठी है जो सामाजिक ही नहीं आर्थिक कारणों से भी एक नितान्त अस्वाभाविक एव विषम परिस्थिति को अपनाने के लिए बाधित होती है। मन से पवित्र और आचरण से भी पावन और वह भी एक होटल में कुछ गिने-चुने आवारा लोगो के बीच मे—नर-पुरुष का सामीप्य किन्तु सदोष, दुश्चरित्र का संग किन्तु फिर भी सबसे विचरता—कितना कुतूहलकारी व्यक्तित्व है। पारसनाथ की दृष्टि मे वह सच्चरित्र वनिता है। वह अत्यन्त स्वाभिमानी, दुर्दमनीय दुर्दमता से ग्रस्त रहती है। दुर्बलतावश वह अपने भीतर हीनता की ग्रन्थि को जन्म देती है।

मंजरी में उभर रही हीनता को यदि उसकी व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक संस्कारों का परिणाम है। दीनता, अवदमन निर्ममता उसके अचेतन मन में घेरा डाले पडे हैं। इनसे वह त्राण मात्र ही नहीं चाहती अपितु इतना ऊँचा उठना चाहती है कि एडलर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त—कि व्यक्ति की विशिष्ट पारिवारिक अथवा सामाजिक परिस्थितियाँ ही उसकी विशिष्ट मानसिकता का निर्माण करती है

उसमें हीनता की भावना के प्रति विद्रोह आरम्भ से ही होता है; यह हीनता स्वरूप हुई क्षति को ही पूर्ण नही करना चाहता अपितु अतिरिक्त पूर्ति के लिए भी अग्रसर होती है—को भी सार्थक कर दिखाती है।

मंजरी के हृदय में प्रथम परिचय से ही पारसनाथ के प्रति कृतज्ञता की भावना विराजमान रही। वह दृढ़प्रतिज्ञ नारी है—निश्चय करती है कि अपने उपकारक के प्रति उदासीन नहीं रहेगी—और वह रही भी नहीं। उसने नवजीवन को नवस्फूर्ति से अपनाया—वह मुग्धा से प्रगल्भा बनने लगती है। उसके मुग्धा रूप में जीवन की पूर्णतम सरलता, स्निग्धता और मधुरता श्वास ले रही है।

पारसनाथ के सम्पर्क में आने पर वह समझती है कि उसे उसके समान ही चिरदुखित, चिरशोषित प्राणी मिला है। पारसनाथ के उत्तेजना भरे, नारी के प्रति विष भरे वार्तालाप सुन कर वह भड़क नहीं उठती अपितु उसे सान्त्वना देती है—उसके दुःख को हर लेती है, अपना पूर्ण स्नेह दान करती है।

मंजरी का जीवन के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण है। उसे विश्व भर के दुःखी प्राणियों से स्नेह है। उसके मतानुसार विश्व का कोई भी प्राणी जो दुःखी है, घृणा के योग्य नहीं है, चाहे वह कितना ही हीन क्यों न हो, निश्चय ही हीन से उसका अभि- प्राय. चारित्रिक हीनता से है।

भौतिक प्रेम की अपेक्षा मानसिक प्रेम में उसकी आस्था है। वह प्रेम के स्वाभाविक स्वरूप को सहज रूप में अपना लेती है। एक रात स्वयं ही पारसनाथ के पलंग पर जाकर लेट जाती है और उसको अपनी दाहिनी बाँह से जकड़ कर उससे लिपट जाती है। मंजरी का इस रूप में चित्रण वास्तव में अपूर्व है। किसी भी भारतीय नारी के लिए प्रेम के इस पक्ष को इस रूप में अपनाना भारतीय स्वस्थ साहित्य में अलभ्य है। कहाँ होटल के कमरे वाली संकोचशील विदुषी और कहाँ घर की चहार दीवारी की ढीठ मंजरी—कैसी अद्भुत चारित्रिक विशिष्टता है। यह सब वह अपने उपकारक पारसनाथ के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए करती है। पारसनाथ के मतानुसार उसका चरित्र Dual द्वैआकारीय है :—"एक ओर तुम बेहद सयानी और समझदार मालूम होती हो, और दूसरी ओर निपट अबाध और भोली। एक ओर तुम्हारे अखण्ड मौन के टूटने की कोई सम्भावना ही नहीं दिखाई देती, दूसरी ओर तुम्हारी वाग्धारा का अटूट प्रवाह रोके नहीं रुकना चाहता।"[1]

पारसनाथ के साथ रहते हुए भी और उसके पश्चात् भी मंजरी एक साहस- पूर्ण व्यक्तित्व का परिचय देती है। पारसनाथ के साथ वह अरायम देशा लोगों की बस्ती में रहती है, पारसनाथ रातों बाहर भी रहता है, किन्तु वह निडर होकर अपनी

---

[1] प्रेत और छाया पृष्ठ २६६

"तुम्हारे समान जघन्य दुष्कर्मी की बातें सुनकर मैं क्या करूँ। तुम्हारे स्वभाव के अणु-अणु में बदमाशी कूट-कूट कर भरी हुई है। तुमने जो अपने जारज होने की बात मेरे आगे प्रगट की थी, वह इसलिए नहीं कि तुम सच्चे और ईमानदार हो, बल्कि इसलिए कि तुम उस बात से मेरे अन्तरतम की समवेदना, करुणा और प्रेम की प्रवृत्तियों को पूर्ण रूप से उभारना चाहते थे—तुम ऐसी गहराई में पैठने वाले धूर्त हो। तुमने अपनी जारजीयता को और उस जारजीयता से उत्पन्न आत्मग्लानि की भावना को एक विकृत 'कला' का रूप देना चाहा है।" प्रेत और छाया—पृष्ठ ३५३.

सुनन्दा :—

सुनन्दा 'मुक्तिपथ' की नायिका है। सुनन्दा को एक सीमा तक हम वर्गगत पात्र कह सकते हैं। वैसे तो यह भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती दृष्टिगोचर होती है किन्तु विशेष रूप से उसमें भारतीय विधवा की विवशता का चित्रण ही लेखक ने ... है।

वह विधवा है इसीलिए कोई सम्मानपूर्ण स्थान समाज में उसे मिला नहीं। ... के रिश्तेदार उमाप्रसाद (जिसे वह भाई कहती है) के घर वह पड़ी है। नित- ... तड़के ही उठ जाती है और दिन भर ही नहीं रात के दो बजे तक घर की ... पिसती है—फिर भी गृहस्वामिनी कृष्णा की व्यंग्योक्तियाँ, बिलसिया की ... दृष्टि उसे खाये जा रही है। एक वह है जो बड़े धैर्य से, प्रसन्न मुख रह कर ... है। उसके चरित्र के इस पक्ष का उद्घाटन लेखक ने राजीव द्वारा कराया ... अपने मन में यह अनुभव कर रहा था कि सामने बैठी हुई उस विधवा नारी ... प्रतिदिन के कर्म क्लिष्ट जीवन की सैकड़ों उलझनों से जकड़े रहने पर भी ... स्वीकार करने को तैयार नहीं। जीवन में किसी के प्रति कोई शिकायत उसे ... वह न तो किसी की करुणा की भिखारिणी है और न आत्म-करुणा ही वह ... अपने मन में जगाती होगी, क्योंकि उसका कोई भी चिन्ह उसके सुन्दर मुख की ... तथापि सुदृढ़, स्वस्थ और सरल अभिव्यक्ति में नहीं पाया जाता।" पृष्ठ ४३.

"सुनन्दा दिन भर गृहस्थी के कामों में इस कदर उलझी रहती है कि एक ... लिए भी विश्राम का अवकाश नहीं पाती और रात में भी बारह-एक बजे ड्यूटी बजानी पड़ती है।" पृष्ठ ५४. एक लम्बी चौड़ी गृहस्थी के छोटे-मोटे उसके कामों की लम्बी सूची बना देते हैं। जिन्हें वह प्रसन्न चित्त हो बजा ... और एक कृष्णा जी हैं जो कृतज्ञ होने के स्थान पर उसे खरी-खोटी सुनाते ... जाती। विधवा होने के नाते समाज की असंख्य मूर्खताओं का वह

निषेध है—इसमें से एक है काम-मूलक वासना का दमन—किसी भी पर-पुरुष के साथ घुलमिल कर बातें करने की उसे मनाही है किन्तु उसके चरित्र की दृढ़ता और साहस उसे इस अस्वाभाविक दुर्बलता का विरोध करने पर विवश करते हैं तभी तो वह रात के निविड़ अन्धकार में भी राजीव से हँस कर बात करती है. उसे एकान्त में बाँसुरी सिखाने चली जाती है और कृष्णा आदि की व्यंग्यात्मक ध्वनियों की अवहेलना कर देती है।

सुनन्दा एक अक्षत योनि विधवा है। उसकी माँ ने उसका विवाह एक बूढ़े लम्पट व्यक्ति के साथ कर दिया। वह भाग निकली और जीवन में पुनः उसकी शरण तक न ली। अपने मामा के घर आने पर भी उसकी दिनचर्या पूर्ण कर्मण्य रही—धर्ममय रही। उमाप्रसाद जी के घर उसका साक्षात्कार राजीव के साथ हुआ। एक ओर वह उससे बेहद कतराती थी (इसलिए नहीं कि वह विधवा थी—समाज-भीरु अथवा धर्म-भीरु थी परन्तु इसलिए कि वह धीर युवक क्रान्तिकारी रह चुका था और एक आतंक रखता था) दूसरी ओर अज्ञात कारण उसके प्रति ऐसे तीव्र आकर्षण का अनुभव करती थी कि बरबस समय-असमय उसके पास चली आती थी। और यह अज्ञात कारण उसकी भीतरी दमित काम-मूलक वासना के अतिरिक्त कुछ नहीं जिसकी तृप्ति वह राजीव का संसर्ग प्राप्त कर लिया करती थी। यह संसर्ग भी भौतिक नहीं, केवल मौखिक ही था।

सुनन्दा के मनोद्वन्द्व का सफल चित्रण भी लेखक ने समय-समय पर किया है। जब राजीव उससे सीमित परिवार की चहार-दीवारी लाँघने को कहता है तो उसके मन की विवश—असमंजस दशा का वर्णन इन शब्दों में पढ़ डालिए—"राजीव बाबू, आप सब कुछ जानते हुए भी क्या यह आदेश मुझे दे रहे हैं। मुझ अनाथिनी को आप किस अछोर और अकूल की ओर खींच ले जाना चाहते हैं? मुझ अबला और असहाय नारी को इसी सँकरी चहार-दीवारी के भीतर गलने दीजिये। एक दिन था जब मैं भी अपने भीतर उस शक्ति का क्षीण आभास पाया करती थी, जिसका उल्लेख आपने किया है। उस दिन अगर आप मुझे मिले होते तो मैं बिना क्षण-मात्र की दुविधा के, समस्त सामाजिक अवरोधों को तृणवत् समझकर पृथ्वी के अन्तिम छोर तक आपका साथ देती हुई चलती। पर आज न वे परिस्थितियाँ है, न मुझ में ही वह बल शेष रह गया है।" पृष्ठ १२०.

वह मर्यादावादी, आदर्शवादी भारतीय नारी का जीवन व्यतीत करती है किन्तु राजीव उसे नये लोक के, नव-पथ के दर्शन कराता है। वह दुविधा में फँस जाती है। रोते-रोते आँसुओं की झड़ी लगा देती है और कहती है, "मुझ दुखिनी को अब अधिक न भरमाइये, राजीव बाबू, आप से मेरी यह करबद्ध प्रार्थना है।" पृष्ठ १२०.

अन्तस्तल में वह नारीत्व के अंश तक पर मिट चुकी है। परन्तु इस पीड़ित नारी का कोई त्राण नहीं, उद्धार नहीं।

नारीत्व न मानने पर उसका नर-जीवन भी उसके जीवन को नई दिशा न दे सका। उसका पीड़ित मन और भी कुंठित हो उठा—अपनी स्थिति बताते हुए कहती है, "मेरा जीवन वह मरुस्थल है जिसके लिए मैं समाज के समस्त नये अनुष्ठानों को [illegible] कर लिया है [illegible] एक ओर जिसके [illegible] में आकर सुस्थापित हो जाने के सिवा और सुख नहीं है। इस बन्धन से कम-से-कम यह सांत्वना तो थी कि मैं अपना कर्तव्य-कर्म करती चली आ रही हूँ। यहाँ तो कोई भी काम नहीं है। केवल आराम, केवल ऐश्वर्य और केवल सुख बन्धन, और क्या होगा (पृष्ठ ४८३)। कैसे होगा मेरे इस बड़े बन्धन-मुक्त प्राणी का त्राण।" और इस मुक्त बन्धन—निरुद्देश्य जीवन के प्रति उसके असंतोष मन में एक घुटन भी होने लगती है—एक दलित-प्राण से जैसी है और इस बन्धन से मुक्त हुए बिना वह अपनी आत्मा की शान्ति की कल्पना भी नहीं कर सकती।

'मुक्ति-निकेत' में कुछ काल तक मनोनुकूल कार्य मिल जाने के कारण उसके स्वास्थ्य और सौंदर्य में एक निखार आता है किन्तु वह भी सागर में उठी एक ऊर्मि के समान है जो शरीर के ताप कर्म की वायु के झोंके से झट विलीन हो जाता है। इसी निकेत की परिसीमितता के रूप में वह समाज कार्य करती है। यहाँ के नारी-समाज, शिशु-समाज का पथ प्रदर्शन कर देती जो बड़ी चढ़ती भी जाती है, किन्तु वहीं जाती तो एक मानसिक शान्ति नहीं पाती। यही उसकी सब से बड़ी समस्या है—उसके जीवन का सबसे प्रमुख प्रश्न है।

कर्म-कर्म—कठोर कर्म ! विश्राम हीन कर्म को वह कोई महत्त्व नहीं देती। इस प्रश्न पर निकेत के नायक से भी कोई समझौता नहीं कर सकती। अब उसने अपना स्वत्त्व पहचान लिया है—नारी मात्र के दुःख का मूल कारण जाँच लिया है। वह अधिकार ही नहीं माँगती—सचेतना की आवश्यकता पर बल देती है। जीवन के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण वह प्रस्तुत करती है—वह दृष्टिकोण जिस के अनुसार सामूहिकता के प्रति अपना नियम, निर्लिप्त और निःस्वार्थ कर्तव्य निरंतर पूरा करते हुए भी बीच-बीच में व्यक्ति कुछ अपने व्यक्तिगत भावविनिमय के लिए अवकाश निकाल सके। उसके अनुसार मन की निरन्तर अवहेलना न केवल व्यक्ति के लिए अहितकर है अपितु उस व्यक्ति से सम्बन्धित सभी प्राणियों और यहाँ तक कि स्वयं विश्व तक के लिए हानिप्रद है।

उसने एक अनुभूति भी प्राप्त की है। उसे लगा—"···मुक्ति-पथ का अनुसरण करने पर भी, अपने भीतर की मातृ-भावना को अधिक-से-अधिक व्यापक और विकसित रूप देने पर भी उसका नारीत्व कहीं-न-कहीं खण्डित ही रह गया है—वह मानवता

के सम्मुख हित के लिए अपना सर्वस्व देने को तैयार हो जाती है, किन्तु नारीत्व की बलि देने को तैयार नहीं। इसीलिए वह अन्त में राजीव को स्पष्ट शब्दों में कह देती है, "आप मुझ से केवल श्रम, और उसके द्वारा मुक्ति केवल मुक्ति, चाहते हैं। मैं जीवन में श्रम भी चाहती हूँ और विश्राम भी, मुक्ति भी चाहती हूँ और बन्धन भी, उस श्रम का क्या महत्व जिसके सुख का अनुभव विश्राम के एकान्त क्षणों में न किया जा सके। उस मुक्ति का क्या मूल्य जो मधुर बन्धनों के बीच में अपना आभास न दे सके। ……आपने केवल मेरे श्रम को स्वीकार किया, मेरे प्राणों को नहीं …… मैं मनुष्य हूँ, राजीव बाबू ! कोई यन्त्र-चालित पुतली नहीं……आपको तो केवल मेरे बाहरी जड़ श्रम की आवश्यकता थी, भीतर के स्नेह-रस-सिंचित आश्रय की नहीं……" (पृ० ४१४-१५)। सुनन्दा ने इन शब्दों में अपना मानस उड़ेल दिया है। और वह पुरुष के मोह-बन्धन-जाल को छिन्न-भिन्न कर अपने दृढ़ मन द्वारा आयोजित मुक्ति-पथ की ओर शान के साथ बढ़ गई।

लज्जा

१६२६ में लेखक की घृणामयी नाम की प्रथम कृति प्रकाश में आई। लज्जा उसी का परिवर्तित संस्करण है। अतः इसे जोशी जी की औपन्यासिक कला की प्रथम सीढ़ी मान सकते हैं। 'लज्जा' एक ऐसी नारी की कहानी है जो अपने अन्तर्मन में अपार पीड़ा संजोये हुए जीवन-यापन करती है। अपनी आत्मकथा पाठकों को सुनाती है। यह कहानी मनोद्वन्द्व-पूर्ण है।

चेतन रूप से सर्व सुख सम्पन्न लज्जा के अवचेतन मन में एक ज्वाला भड़क उठती है—यह ज्वाला प्रेम की ज्वाला है जो उसके सहृदय भाई रंजन तथा सौम्य मूर्ति काका को चिता में धकेल देती है और उसे चिंता एवं घृणा के चक्कर में घुमाती है।

प्रेम करना पाप नहीं है। किसी भी युवती का किसी भी स्वस्थ तथा सुन्दर युवक के प्रति अनुराग एवं आकर्षण पूर्णतया स्वाभाविक और समाज सापेक्ष है, किन्तु समाज सापेक्ष होते हुए भी साधारणतः पारिवारिक एवं नैतिक मूल्यों की कसौटी पर वह खरा नहीं उतरता जिसके फलस्वरूप समस्त वातावरण ही विषम बन जाया करता है। ऐसे ही एक वातावरण की सृष्टि मनोविज्ञान के सफल चितेरे इलाचन्द्र जोशी ने अपनी प्रथम कृति में अवतरित की है।

ऐश्वर्य से परिपूर्ण, यौवन के मद में चूर्ण लज्जा का निष्कर्मण्य जीवन जब नारी सुलभ मनोभावनाओं पर मनन करता हुआ चौकड़ियाँ भरता है तभी उसे डा० कन्हैया लाल का प्रथम साक्षात्कार जनित प्रेम अनुभव होने लगता है। बीमारी में उनका सेवन उसे तीव्र गति के साथ उनकी ओर झुका देता है किन्तु भाई के हृदय का विशुद्ध प्रेम भी बहन के हृदय में शूल बनकर खटक सकता है, यही एक विचित्र ग्रन्थि अन्त में जाकर विकटतम रूप धारण कर राजू की आत्महत्या का मूल कारण बनती है।

मनोविज्ञान के अध्येता जानते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क तथा उसके सारे व्यक्तित्व को परिचालित करने वाली शक्ति लिबिडो है जो काम-मूला एवं स्वार्थ-मूला है। यह दो प्रकार से कार्य करती है। ज्यों-ज्यों स्व-रति का विकास होता है त्यों-त्यों पर-रति का ह्रास होता है और इसके विपरीत भी घटित होता रहता है, पर ऐसा बहुत

कम होता है। लज्जा में स्व-रति का विकास होने लगता है। वह एकाग्र चित्त से अपने को डाक्टर के चरणों में समर्पित कर देना चाहती है। अपने तथा डाक्टर के मध्य अपने सगे भाई रंजन तक को सहन नहीं कर सकती। यह भी सत्य है कि रंजन के पवित्र प्रेम की अवहेलना करके वह अपने मन पर एक बहुत भारी बोझ की अनुभूति करती है, जिससे सफलता पूर्वक छुटकारा पाना भी कोई आसान खेल नहीं है किन्तु यह भी एक प्रत्यक्ष तथ्य है कि डाक्टर के दर्शन मात्र से वह इस भार से अपने को मुक्त हुआ अनुभव करती है।

लज्जा का डाक्टर के प्रेम-पाश में बँध जाना काम-मूलक है, साथ ही उसके मतानुसार व्यावहारिक भी, अतएव वह एकान्त में भी उससे वार्तालाप करने में कोई हानि नहीं समझती। किन्तु किसी भी अविवाहित स्त्री का किसी भी पर-पुरुष के साथ (फिर चाहे वह उसका प्रेमी ही क्यों न हो) एकान्त मिलन कर वार्ता करना सामाजिक दृष्टि से सदैव आशंका और भय की नजर से देखा जाया करता है। इस तथ्य से अनभिज्ञ लज्जा भी जब डाक्टर महोदय के साथ एकान्त वार्तालाप में निमग्न पकड़ी जाती है तब राजू को देखते ही भयातुर होकर सिहर उठती है—यह इस तथ्य का ज्वलन्त प्रमाण है कि नैतिक आचरण और सामाजिक व्यवहार के नाप पर यह हेय कृत्य है। मन में चोर होने पर ही कोई काँपा करता है, तभी तो रंजन को देखते ही लज्जा की मनोदशा बदल जाती है। उसके मन में विराजमान भाई के प्रति जो प्रेमोद्गार है वह धीरे-धीरे तिरोहित होते जाते हैं और उनके स्थान पर भय अपना अधिकार जमा लेता है।

प्राय देखा गया है कि अवचेतन मन में छिपी कोई भी बात किसी-न-किसी स्थान पर कभी-न-कभी प्रकट हो ही जाया करती है। लज्जा का डाक्टर महोदय की ओर केवल मात्र थोड़ा सा झुकाव ही नहीं है अपितु उसके मन के किसी छोर में उनके लिए एक दिव्य स्थान बन चुका है। इस बात का उद्घाटन वह स्वयं अपने मुखारविन्दु से एक स्थान पर कर ही देती है। जब रंजन यह प्रस्ताव रखता है कि डाक्टर साहब उनके फैमिली-डाक्टर बन कर रहें तब इस बात को सुनते ही वह खुशी से झूम उठती है और भावावेश में बोल उठती है—"सिर्फ, अम्मा ही क्यों, मैं भी आपसे अनुरोध करूँगी कि आप यहीं रहें।"[1] लज्जा के इन शब्दों में उसका प्रेम, उसका स्वार्थ और उसकी उत्कट काम-वृत्ति क्या किसी से छिपी रह सकती है?

और फिर हम पाते हैं कि डाक्टर साहब नित्य प्रति आने लगे। लज्जा उनसे घंटों वार्तालाप करती रहती है, जिसके फलस्वरूप उसको एक विशिष्ट प्रकार की मानसिक प्रसन्नता और शान्ति की अनुभूति होती है, जो वह सीता, कर्मयोगी,

---

१. लज्जा पृष्ठ ७७

पत्थर से भी अधिक जड, मृत और निर्जीव बन गई।"

समस्त कथा तीव्र गति के साथ अन्त की ओर बढ़ती है और राजू द्वारा की गई आत्महत्या पर समाप्त हो जाती है। लेखक ने राजू की आत्महत्या पूर्ण नाटकीय ढग से कराई है और आत्महत्या के पश्चात् डायरी मे उसकी जीवन-गाथा देकर उसकी मृत्यु का विश्लेषणात्मक परिचय भी पाठकों को दे-दिया है।

यह तो हुई प्रधान कथानक की बात। लेखक ने कुछ प्रासंगिक घटनाएँ एव एक उपकथानक का सयोजन भी उपन्यास में किया है, जो सहृदय है। उपन्यास के मुख्य कथानक मे जहाँ उसने रंगमहल दिखाये है वहाँ पर प्रासगिक कथा मे भारतीय कुटी का निखरा रूप भी प्रस्तुत किया है। झोपडी में एक बूढी माँ है—एक युवती है और दीनू, रामू आदि बालक हैं। इन दीन दरिद्रो को देखकर बड़े लोग कैसे नाक भौं चढाते हैं इसका दिग्दर्शन लेखक ने उपन्यास मे उस स्थान पर किया है जहाँ लज्जा अपनी बहिन लीला और भाई राजू के साथ उनकी कुटिया में पहुँच नीचे फर्श पर बैठते हुए झिझकती है—उस समय बूढी अम्मा के ये शब्द कितने मर्मस्पर्शी हैं ?

"मैं जानती हूँ बेटी, कि तुम रंगमहल में रहती हो···पर यह होने पर भी गरीब लोगों की कुटिया मे पांव रखने से भगवान् कभी तुमसे असंतुष्ट नही होगे। दुनिया मे बड़े लोग कितने कम होते हैं। सारी सृष्टि दरिद्रो के ही भार से दबी हुई है।"

और फिर पाँचो उँगलियाँ बराबर नही होती। लज्जा जहाँ पर सिमटी सी बैठी है—राजू वही स्वर्ग समझता है—वह बच्चों को बिना हिचकिचाहट प्रेम से गले लगा लेता है। इस दरिद्र परिवार पर वह प्राण न्योछावर करने को उद्यत है। युवती को दीदी कह कर पुकारता है।

उपन्यास की प्रत्येक घटना मनोवैज्ञानिक है जो कि मन पर एक विचित्र प्रभाव डालती है। जहाँ पर 'सुबह के भूले' उपन्यास की नायिका गिरिजा एक शान-दार पलेट देखकर लौटते ही विचित्र मानसिक स्थिति का शिकार होती है। वहाँ 'लज्जा' की नायिका एक कुटी को निहार कर एक अपूर्व वेदना की अनुभूति करती है।

माधवी दीदी की वैधव्य-अवस्था का साक्षातकार कराने मे भी लेखक ने अपनी ओर से कोई सामग्री उठा नही रखी, किन्तु फिर भी भारतीय विधवा का यथार्थ चित्र अङ्कित करने मे वह इतना अधिक सफल नही हुआ जितना आगे चलकर अपनी 'मुक्ति-पथ' नामक रचना मे सुनन्दा का चित्रण करके हुआ।

चरित्र-चित्रण—

जोशीजी के पात्रो की अपनी चारित्रिक विशेषताएँ हैं। वे पूर्ण रूपेण स्वेच्छा-चारी बनने का उपक्रम रचते हैं। समाज के बंधनो को सरलतापूर्वक ग्रहण नही करते।

अपना स्वतन्त्र अस्तित्व ही बनाये रखना चाहते हैं, किसी के हाथों की (फिर चाहे वह निरदेह ही क्यों न हो) कठपुतली बनना नापसन्द नहीं करते।

लज्जा—

'लज्जा' नायिका-प्रधान उपन्यास है। लज्जा को हम निर्विवादरूप से इसकी नायिका कह सकते हैं। अपनी आत्मगत अनुभूतियों के आधार पर स्वचरित्र उल्लेख इसने किया है। दुःख की ज्वाला में तप्त और पाप की यातना से विशुद्ध हुआ इसका चरित्र परम मोहनीय है। घृणा और वेदना की अपार पीड़ा ने इसके शरीर पर ही नहीं, अपितु मन एवं आत्मा पर भी अधिकार जमा लिया है।

कहाँ चार-पाँच वर्ष की भोली-भाली, नवल-प्रभात के पक्षी की भाँति स्वच्छन्द विचरण करने वाली 'लज्जा' और कहाँ अपने कुत्सित कृत्यों पर पश्चाताप के आँसू बहाने वाली दग्ध यौवना? कहाँ एक करुण, सुकुमार स्नेह पूर्ण कान्तिशाली मुखड़ा और कहाँ एक अवसादमयी, क्रूर, उत्तेजिना हिंसामयी रमणी? इस चारित्रिक विषमता के मूल में लज्जा के लम्बे चारित्रिक उतार-चढ़ाव की कहानी है।

कथा के आरम्भ में हम लज्जा को एक कुलीन परिवार की कुशाग्रबुद्धि बाला के रूप में देखते हैं, जिसमें बाल-चरित्र सम्बन्धी कौतूहल, भय, विस्मय, हर्ष, और हठ आदि विशेषताएँ विद्यमान हैं। यौवन के चढ़ाव के साथ-साथ उसमें जहाँ रूप का निखार होता है वहाँ प्रेम का उन्माद भी छाता जाता है, जिसके फलस्वरूप वह अपने प्रिय भाई से दूर होती जाती है और प्रेमी डाक्टर से घनिष्ठता प्राप्त करती चलती है। यही घनिष्ठता एक दिन इतना भयंकर रूप धारण कर लेती है कि उसके चरित्र में उद्भ्रान्तकारी परिवर्तन प्रस्तुत कर देती है। उसे देवता सा भाई अच्छा नहीं लगता और राक्षसी वृत्ति वाला अनेक रूप भोक्ता डाक्टर अच्छा लगता है—वह कहती है— "प्रियतम, तुम अगर कृष्ण की तरह सोलह हजार गोपियों को भी अपने पास रखो, तो भी मैं तुम्हें प्यार करना नहीं छोड़ सकती।"

लज्जा का अन्तर्मन तीव्र गति से पतन की ओर झुकता है। वह डाक्टर की गोद में सिर रखकर आराम से लेट जाती है, मानो प्रेम ही सर्वस्व हो, परिवार, नैतिकता, शिष्टाचार, सामाजिक मर्यादा कुछ भी नहीं—और यह प्रेम भी उसके अन्तर्मन में अजीब परिस्थिति में प्रवेश करता है। एक दिन डाक्टर साहब जब अपने साथी के साथ वापस चले गये तब?

"मैं अलसाती, झूमती और बल खाती हुई अपने कमरे में जाकर पलंग पर लेट गई। आज न जाने कितने दिनों के बाद मेरे हृदय में चैतन्य और मूर्छा की पारस्परिक प्रीति और आँख-मिचौनी का खेल चलने लगा था। डाक्टर साहब का वह बुद्धि

संन्यासी

मानवीय जीवन में दमित काम वासना का विशिष्ट स्थान है—यह कभी तो व्यक्ति के मानस पर एक आतंक का रूप लिए रहती है और कभी उसे कल्पना की ओर विविध प्रकार से प्रेरित करती है। जीवन के इस मानस पक्ष का उद्घाटन करती [illegible] रचना 'संन्यासी' में विशुद्ध इलाचन्द्र जोशी ने प्रस्तुत की है।

'संन्यासी' जीवन की मर्मान्तक प्रतिक्रियाओं को लेकर लिखा गया उपन्यास है। इसमें जीवन की सूक्ष्मतम किन्तु व्यापक भावना प्रेम का बड़े रूपों में चित्रण हुआ है। एक ओर शांति में प्रेम का उदात्त विशुद्ध स्वरूप दृष्टिगोचर होता है तो दूसरी ओर [illegible] का निकृष्ट वासना प्रधान कामुक प्रेम है जो प्रेम नहीं प्रेम के नाम पर कलंक है। तीसरी ओर घोर किन्तु वासनाओं को उपासनाओं में [illegible] करती है तो कभी [illegible] कहा करती, वह [illegible] के साक्षात् अवतार [illegible] हैं। इस नाम में जो वासनाओं की मदान्धता, हेयता एवं घोर नग्नता के दर्शन होते हैं जो एक सुखी दम्पति (मिस्टर डमाल) को भी तोड़ डालने का दुःसाहस करता है। यह एक [illegible] साहस है; इसका अपना महत्त्व है। जीवन के समीप से घटनाएँ लेकर समाज से साधारण पात्रों का निर्माण कर, कुछ सामयिक समस्याओं का उद्घाटन करते हुए तो अनेक कलाकारों को देखा सुना है, किन्तु एक असाधारण व्यक्तित्व का मनोविश्लेषण कर उसके अन्तश्चेतन पर प्रकाश डालना किसी बिरले कलाकार के बूते की बात है। ऐसा ही एक प्रयत्न अज्ञेय ने भी किया है—'शेखर एक जीवनी' किन्तु संन्यासी की बात ही और है।

संन्यासी एक विशिष्ट व्यक्ति के वैचित्र्यपूर्ण जीवन की अद्भुत गाथा है, प्रेम के निराले स्वरूप की कहानी है, जो हिन्दी कथा साहित्य में अमर है, अपूर्व है। इसमें घृणामयी का सप्त नारी हृदय अपने परिवर्तित रूप में असीम अन्तर-पीड़ा से आलोड़ित, परम मानसिक वेदना से प्रताड़ित पुरुष मन में प्रवेश करके हमारे सामने आता है। घृणामयी में जहाँ पर नायिका के मन का सन्ताप मनोविश्लेषण द्वारा स्पष्ट किया गया है वहाँ संन्यासी में नायक की अन्तश्चेतना में वर्तमान ग्रंथि को खोल कर उसमें

वर्तमान अनन्त करुणा के स्रोत को बता दिया गया है। मृणालमयी में उसकी अपार पीड़ा, असीम घृणा और अनन्त अन्तर्वेदना विस्फोटित हो गई है संन्यासी में नन्दकिशोर का शुष्क निष्ठुर अहंवादी अन्तर्पीड़ित मन पाठक के सम्मुख रख दिया गया है। उसे छूटी छूट है कि उसको अपने तर्क की कसौटी पर परख ले, विवेक के आधार पर जग ले और मन में जिस रूप को चाहे बसा ले।

मानव-चरित्र का चित्र; घटित अथवा कल्पित घटनाओं का लेना तथा नव उद्भावनाओं के स्रोत जिनके द्वारा मनुष्य के विविध रूप, जगती की अनेक समस्याओं तथा मन की असीम आकांक्षाएँ देखी-परखी जा सकती हैं—ही उपन्यास है।

जीवन कहीं मुस्कान भरा, कहीं रुदन भरा, कहीं रोमांचित तो कहीं भयभीत नित नवीन शैली में दृष्टिगोचर होने लगता है।

लज्जा और संन्यासी का आरम्भ चरम विश्लेषणात्मक पंक्तियों द्वारा होता है। प्रधान पात्र अपने मन में एकत्रित जीवनानुभूतियों को पाठकों के सम्मुख रखते हैं। इनको जीवन की अनेक कटु-अनुभूतियाँ स्मरण हो आती हैं। वे अपने जीवनगत संस्मरणों का उल्लेख करके ही आत्म-शांति प्राप्त करते हैं। एक ओर लज्जा अपनी मर्मस्पर्शी कहानी समाज के मन को द्रवित करने के लिए सुनाती है, दूसरी ओर संन्यासी का कथा-नायक नन्दकिशोर अपनी अन्तर्वेदना को पाठकों के सामने उडेल देता है।

एक साल जेल की हवा खा आने पर उसका अस्वस्थ मन स्वस्थ हो जाता है। अपने अतीत की मानसिक अवस्था का वर्णन करके वह बताता है कि संन्यासी का चोला किसलिए पहने हुए है। वह अपनी कहानी की शृंखला अपने विद्यार्थी-जीवन की स्वर्ण-स्मृतियों के साथ जोड़ता है। जब उसका जीवन निर्द्वन्द्व, निर्मुक्त अवस्था में बहता था, कितनी सुहावनी थी वे घड़ियाँ, कितना मनोरम था वह काल, जिसकी स्मृति मात्र मन में एक विचित्र सी पुलकन, अजीब सी धड़कन पैदा करने की शक्ति रखती है। अब तो दुःख, दरिद्रता, रोग, शोक और घृणा आदि मनोविकारों से शून्य किशोर अवस्था की याद ही शेष रह गई है।

कहाँ विद्या-अध्ययन में लीन, मित्र-मण्डली में तल्लीन एम० ए० प्रीवियस का वह अल्हड़ नन्दकिशोर और कहाँ लम्बी दाढ़ी, जोगिया वस्त्रों वाले स्वामी जी? अन्तर्जीवन तथा अन्तर्वेदना के मर्मों से अपरिचित इस छात्र की सरलता तो देखिये। इसे पता ही नहीं है कि यौवन क्या है, प्रेम क्या है, नारी क्या है, दाम्पत्य क्या है? आगरा पहुँच कर जयन्ती का प्रथम साक्षात्कार करने वाले नन्दकिशोर को यह भी पता नहीं है कि सौन्दर्य का जादू क्या होता है? वह क्या प्रभाव रखता है। इसका पता भी इसे बनारस लौट कर शान्तिसे सम्पर्क बढ़ जाने पर ही चलता है। हाँ वह भाव-मुग्ध अवश्य जयन्ती को देखते ही हो जाता है। उसके पूजा और नित-नेम छूटने लगते हैं। धीरे-धीरे उसके मन में उठी एक-एक ऊर्मि तथा मस्तिष्क में कौंधा एक-एक

विचार नारी के इर्द-गिर्द घूमने लगते हैं। ये पहले तो उसे अपने पाश में उलझाते हैं और फिर जीवन भर के लिए भरमाते है।

नन्दकिशोर की मानसिक दशा में एक महान् क्रान्ति आ जाती है। वह अन्तःमुखी होने लगता है। बाहर की कोई चीज भी उसे अच्छी नही लगती, यहाँ तक कि वे मित्र जिनको वह एक पल भर को छोडने को तैयार न होता था, उसे नहीं भाते। बाह्य जगत के सभी दृश्य उसके लिए आकर्षणहीन और महत्वहीन हो गये। आगरा घूमना, जमुना मे जाकर स्नान करना तथा संसार के सात आश्चर्यों में से एक ताजमहल की शोभा को निहारना तक उसे निरर्थक और बेमाने लगने लगा। उसे अपने मन मे एक हाहाकार सा मचता प्रतीत हुआ। वह उसका विश्लेषण करता चलता है—"नहा-धोकर बालू के ऊपर ही आसन मार कर सन्ध्या करने लगा। पर आज ओंकार अथवा गायत्री का ध्यान मेरे मन में ठीक नही जमता था। लाख चेष्टा करने पर भी जिस तड़ित रूप की तीव्र ज्योति-रेखा मेरे मानस-नेत्रों को बरबस चौंधिया कर मुझे ध्यान से विचलित कर रही थी, उसी को गायत्री के बतौर मानने के सिवा मेरे लिए और कोई चारा नही था।" [१]

ये हैं वे उद्‌गार जो नन्द जयन्ती के सम्पर्क मे आने पर प्रकट करता है। उसकी दमित काम-वासना सौ-सौ रूप धारण कर फूट पड़ी है—उसका अचेतन मन बुरी तरह से घायल हो चुका है—जयन्ती के घर का वातावरण उसे जकड़ लेता है—गार्हस्थ्य जीवन के मधुर वातावरण से वह वशीभूत हो जाता है; नव-यौवना (जयन्ती) से मधुर वार्ता की अनुभूति उसे होती है। यद्यपि लेखक ने दोनों मे शुरू-शुरू में कोई प्रेमवार्ता नही दर्शायी किन्तु फिर भी जयन्ती के मुखारविन्द से निकला एक-एक शब्द अपना एक जादू भरा प्रभाव नन्द के हृदय पर छोड़ता है। वह कह उठता है: "इस कथा-वार्ता से गार्हस्थ्य जीवन के धन्धों की एक निराली ही अनुभूति मेरे कानों द्वारा प्राणों में संचारित हो रही थी। आज की इस एकांत संध्या की यह अनुभूति एकदम नई थी, पर बड़ी मधुर, बड़ी प्रिय थी।...जीवन....जीवन! मैं वास्तविक जीवन के सुख-दुःखों में सारे संसार के साथ सम्मलित होने के लिए लालायित हो उठा। एक अजीब स्फूर्ति, एक अपूर्व चैतन्य का अनुभव करने लगा।"

नन्दकिशोर का आगरा-निवास क्षणिक ही कहा जा सकता है। क्षणिक इसलिए कि जीवन की लम्बी यात्रा में तीन दिन का समय बहुत ही थोड़ा होता है। परन्तु यह निवास अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है; इसलिए कि इसने नन्द सदृश्य आत्मलीन व्यक्ति को भी कुछ सोचने के लिए विवश कर दिया है—बनारस लौटने पर उसके जीवन में एक क्रांति आती है और उसी के साथ-साथ प्रमुख कथानक भी

---

[१] संन्यासी पृष्ठ १६

करवट लेता है। वह शान्ति के प्रथम साक्षात्कार पर आती है; उसे देखते ही नायक की अक्ल दंग रह जाती है। यह साक्षात्कार लेखक ने हास्यमय वातावरण में हास्यास्पद ढंग से प्रस्तुत किया है—नन्द अपने मित्रों सहित एक चौक में खड़ा है वह पान खाने का अभ्यस्त नहीं है, पर उसका मित्र उमापति उसके मुँह में पान ठोंस ही देता है, उसकी इस दुर्दशा पर जहाँ दो युवतियाँ (जिनमें एक शान्ति भी है) मन्द-मन्द मुस्काती हैं वहीं विधि भी एक मुस्कान फेंकती है—नन्दकिशोर तथा शान्ति का आँखों-ही-आँखों में प्रेमालाप होता है। वह पूरी तरह से सौंदर्य द्वारा वशीभूत हो जाता है—होस्टल तक आते-आते वह नारी को विभिन्न रूपों में अपने कल्पित संसार में देखता है।

"असम्बद्ध, संगतिहीन चलचित्रों की तरह नाना अस्पष्ट विचार तथा काल्पनिक दृश्य विद्युत्गति से मानस-पट पर झलक जाते और तत्कालीन विलीन हो जाते थे। कभी जयन्ती की अस्पष्ट छाया एक असम्भव, अप्रत्याशित स्वप्न के समान, किसी पूर्वजन्म की अस्फुट स्मृति की तरह आन्दोलित होती और अपनी आकारहीन करुणा से मुझे रोने के लिए प्रेरित करती; कभी आज की दो युवतियों की मूर्तियाँ उदित होकर किसी इन्द्रजाल की माया से शासित, अपरिचित लोक में मुझे ले जाती थी और एक अनोखे भय से मेरे हृदय को स्तब्ध कर देती थीं।" पृष्ठ ५२.

शान्ति के रूप में नारी-सौन्दर्य का चरम आकर्षण ही नहीं है अपितु उसके अतुलित मस्तिष्क का चमत्कार भी है जो नायक को बड़ी तेजी से अपने बंधन में जकड़ता जाता है। उसके अचेतन मन में दमित काम-वासना पूर्ण प्रदान आकार धारण कर लेती है—इस तथ्य का उद्घाटन वह समय-समय पर करता जाता है

"किसी नवीना किशोरी के दर्शन मात्र से हृदय की ऐसी [illegible] हो सकती है, इससे पहले मुझे कभी इसका अनुभव नहीं था। कितने ही युगों से रुद्ध मेरी [illegible] वासना का बाँध ही बिल्कुल टूट पड़ा था। जिधर को दृष्टि जाती थी, उसी ओर विकृत उद्दाम वेग से बहने लग जाता था।" पृष्ठ ६४—शान्ति से प्रथम वार्तालाप पर ही वह इस निष्कर्ष पर पहुँच जाता है कि वास्तव में वह नवीना [illegible] प्रेम की [illegible] अधिकारिणी है। उसका इससे छोटी सी भेंट में ही इस परिणाम पर पहुँचना भी इस रहस्य का उद्घाटन करता है कि वह [illegible] द्वारा पूर्णतः वशीभूत हो चुका है और इसके प्रति उसके प्रेम का विकास भी [illegible] गति से होता है—वह [illegible] उससे मिलना चाहता है—यदि किसी दिन नहीं मिल पाता है तो बहुत बेचैन रहता है। वह स्वयं कहता है।

"[illegible] मेरे [illegible] के [illegible] हो [illegible] कि यदि एक दिन भी [illegible] न [illegible] देख [illegible] जैसे एक [illegible] दिन [illegible] हुआ है।" पृष्ठ ७०

प्रेम के क्षेत्र में परिचय घनिष्ठता में और घनिष्ठता प्रेम-ज्वाला में आकस्मिक रूप से बहुत शीघ्र परिवर्तित हो गई—यह कैसे और कब हुई ? यही ढूँढ़ना है। कथा में प्रथम परिचय के कुछ दिन पश्चात् ही लेखक ने नन्द-शान्ति की भेंट एक बन्द कमरे में दिखाई है ; उसी भेंट में दोनों में एक मधुर वार्ता होती है—और मानमर्दन की क्रीड़ा होती है। नन्द कहता है :

"दिन दहाड़े क्या कोई भूत उठाकर ले आया ?"

"हटो" ! शान्ति का संक्षिप्त उत्तर है। किन्तु क्या नहीं भरा इस उत्तर में ? इसमें प्रेम विषयक माधुर्य है, कौतूहल है और है अनन्त चाह का दिग्दर्शन, जिसकी अनुभूति नायक करता हुआ कहता है .

"शान्ति के केवल इस 'हटो' शब्द की मधुरिमा ने मुझे तत्काल सूचित कर दिया कि हम लोग कितनी दूर आगे बढ़ गये हैं और कितनी जल्दी कदम रखते चले जाते हैं। मैं थोड़ा-थोड़ा करके स्वाद लेता हुआ इस शब्द के माधुर्य का रस पान करने लगा। उसकी मादकता का प्रभाव मेरे मस्तिष्क पर तत्काल होने लगा। सम्भवतः मेरी आँखें चमकने लगी थीं और चेहरा तमतमा आया था। मेरे मुख का यह उद्दीप्त भाव देखकर शान्ति और भी अधिक सकुचा गई जिससे उसके मुख की आकृति और भी खिल उठी।" पृष्ठ ७२.

लेखक इसी प्रकार प्रेम का विश्लेषणात्मक चित्र खींचता हुआ कथानक को आगे बढ़ाता है। उसकी दृष्टि में प्रेम एकांत की चाह रखता है। नन्द-शान्ति का एकांत मिलन प्रेम की परीक्षा-स्थली के रूप में दर्शाया गया है। ऐसे ही अनेक उदाहरण जोशी जी की अन्य कृतियों में भी मिलते हैं, किन्तु उनमें और संन्यासी की नायिका शान्ति में एक अन्तर है, जहाँ "लज्जा" की नायिका अपने भाई रज्जन को देखते ही घबरा उठती है वहाँ संन्यासी की नायिका शान्ति बड़े साहस से परिस्थिति का सामना करती है। देखिए :

"रज्जन को देखते ही मेरे हृदय में जो एक गर्व का भाव उत्पन्न हुआ था वह धीरे-धीरे तिरोहित होता गया और अज्ञात भय ने उसका स्थान अधिकृत कर लिया"

जहाँ लज्जा में नारी की विवशता, भयभीत दशा तथा चिंता का दिग्दर्शन हुआ है वहाँ संन्यासी तक पहुँचते-पहुँचते शान्ति के रूप में नारी की सबलता एवं दृढता का चित्रण लेखक ने कर दिया है। जब नन्द और शान्ति बन्द कमरे में बैठे प्रेमालाप में निमग्न खोये हैं तभी अचानक नन्द के मन में शंका होती है कि कहीं कमला जी न आ जावें ? वह भयातुर होकर शान्ति से कहता है :—

"तुमने कैसी मूर्खता की जो बाहर का दरवाजा बन्द कर दिया। अब क्या

होगा ?" पर शान्ति ने अत्यन्त धीरता से सहज स्वाभाविक स्वर में उत्तर दिया—

"दरवाजा बन्द किया तो क्या हुआ ? इसमें डर की क्या बात है ? तुम यहाँ क्या कोई चोरी करने आये हो, जो डर रहे हो।" पृष्ठ ७५.

और कमला के आजाने पर भी वह डरती नहीं, झिझकती नहीं, उसके उच्च स्वर से कहने पर, ("इतनी देर तक मुझे बाहर खड़े रहना पड़ा, कानों में क्या सीसा डाले हुए थी ") भी वह दृढ़ता के साथ नन्द का साथ देती है। उसे नीचे तक पहुँचाने आती है और पूछती है—"जा रहे हो ? फिर कब आओगे ?"

नन्द पूरी तरह से घबराया हुआ है—उसका मन काँपता हुआ कहता है—"इस हालत में अब कैसे आ सकता हूँ ?"

"तुम कायर हो।" पृष्ठ ७६—शान्ति का यह संक्षिप्त उत्तर क्या कुछ नहीं संजोये है—इसमें पुरुष के प्रति एक व्यंग्य है, घृणा है उसकी भीरुता को दिखाने का अंश भी इसमें है—वह उसमें दृढ़ता भर कर ही दम लेती है।

कथानक का अधिकांश घटनात्मक न होकर विश्लेषणात्मक है। छोटी-से-छोटी घटना का भी विस्तार के साथ विश्लेषण किया गया है। शान्ति को उसके कमरे में छोड़ आने पर नन्द की मनोदशा का विश्लेषण किया गया है। वह गगा ▪ दृश्य देखता है, किन्तु वहाँ भी उसके मन को शान्ति नहीं मिलती। वह उससे (शान्ति से) दूर भागना चाहता है किन्तु वह उसके मन को पूरी तरह जकड़ चुकी है, तभी तो वह यह कहता है —

"मेरे एक बार विलुप्त हो जाने से वह अबला इस विपुल विश्व में मुझे कहाँ खोजेगी ?···हाय अबला नारी। अपने प्यारे को जकड़कर अपने साथ रखने के लिए तुम्हारे पास आँसुओं के तारों से बटे हुए सुकोमल पाश के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है। मदन के कुसुम-पाश से भी वह कितना सुकुमार है। तथापि कितना दृढ़।" पृष्ठ ८२—और इन्हीं दृढ़ कर-कमलों में वह अपने को आबद्ध पाता है अतः पुनः उससे मिलने को तड़प उठता है।

विरह के क्षणों का भी जीवन में अपना विशिष्ट मूल्य है। विरह प्रेम को सुन्दरतम रूप प्रदान करता है। विरह की एक-एक घड़ी प्रेमियों के हृदय में स्मृति के आँसुओं की झड़ी लगा दिया करती है। नन्द को शान्ति की असहाय अवस्था में आँसुओं से छलछलाती हुई विह्वल आँखों का करुण चितवन स्मरण हो आता है—उसके मन में अन्तर्द्वन्द्व की झड़ी लग जाती है—वह स्मृति उसके हृदय को आलोड़ित करती है—वे नेत्र उसके मर्म को भेद देते हैं, भुलाने की चेष्टा करने पर सहस्र रूप से जागरित होकर उसे दुखी करते हैं एक कमनीय, कमनीय और कातर भाव उनमें उसे हर पद झलकता सा लगता है। वह मन-ही-मन उससे प्रदत्त प्रेम की भीख माँगता है। शक्ति की आकांक्षा प्रकट करता है।

विरह के पश्चात् मिलन की घडी का भी अपना ही नशा है और इसका आनन्द केवल वे ही जानते हैं जिन्हे इसकी प्रत्यक्ष अनुभूति हो। कही तो शिकवे और शिकायतो का ढेर लग जाता है और कही शिकवे और मान आदि के अभिनय को तिलाजली देकर सीधे नायिका-प्रेमानुकम्पा पर मस्तक टेकती दृष्टिगोचर होती है। सन्यासी मे हमें शाति के दूसरे रूप को अपनाये दर्शाया गया है। नन्द से पुनः भेंट पर वह मान अभिनय का नाटक नही खेलती, अपितु व्याकुल कण्ठ से बोलती मिलती है —

"इतने दिनों तक तुमने मुझे जैसा रुलाया है, इस सम्बन्ध में इस समय मे कुछ नही कहना चाहती। जैसे भी हो, आज मेरे पास आ गये, यही अपना परम भाग्य मानती हूं।" पृष्ठ—६५। कितनी कोमलता, परवशता एवं दयनीयता की झलक हमे इन शब्दों मे मिलती है—वह खोये हुए नन्द को पाकर फिर खोना नही चाहती। तभी तो उसका इन शब्दो के साथ स्वागत करती है। दोनों ही मिलन के इन स्वर्ण क्षणों मे भावी जीवन की योजनाएँ तैयार करते हैं। नन्द शाति के प्रेम-पाश मे जकडा बनारस तक छोड़ने को तैयार हो जाता है। यहीं भागने और भगाने की बात नायक और नायिका करते हैं। किन्तु नायक और नायिका दोनो के मन की मंजिल भिन्न-भिन्न दिखाई गई हैं। शाति बनारस छोडना चाहती है किन्तु नन्द के साथ रहने के लिए नही—केवल उसके आश्रय द्वारा अपने भाई तक पहुँचने के लिए—उधर नन्द के मानसिक उद्‌गार पुरुष मात्र के मन का चित्रण करते हैं, जिसमें अधिकांश वासना है, पाप है, नारीत्व से खिलवाड करने की कुत्सित भावना प्रधान है। इसे नायक स्वयं मानता है :

"पर मैं एक दूसरी ही बात सोच रहा था। मेरे मन मे शैतान का दूसरा ही नृत्य चल रहा था।" पृष्ठ १२३। नन्द इस शैतान को अच्छी तरह पहचानता है। अपने मन में बसे चोर को वह अनुभव भी करता है। उसके मन और मस्तिष्क में द्वन्द्व होने लगता है। शान्ति को भगा लाने पर वह मनन करता है :

"मैं सोचने लगा कि मैं शान्ति को किस लिए भगा लाया हूँ? मेरा अज्ञात मन इस विषय पर भले ही चिंता करता रहा हो और उसने भले ही अपने लिए इस समस्या का कोई समाधान न रखा हो, पर मेरा सचेत मन जान-बूझ कर या अनजाने मे इस परम महत्वपूर्ण प्रश्न को बार-बार भुलाने की चेष्टा कर रहा था।

...... आत्मा का सच्चा प्रेम तो प्रेमी प्रेमिकाओं के एक दूसरे से विच्छिन्न रहने पर भी अक्षय रह सकता है, बल्कि दूर रहने से वह और भी अधिक गहरा और सुदृढ बनता जाता है।" यह उसकी आत्मा की आवाज है। किन्तु दूसरे ही क्षण उसके अन्तर्मन के एक कोने से पाप की धूम्र रेखा फूट पडती है, जिसे उसका सचेत मन

दबाना चाह कर भी नहीं दबा पाता। वह प्रेम की मनोनुकूल व्याख्या गढ़ता है, "प्रेम चाहे आध्यात्मिक हो अथवा शारीरिक, उसका मूल-तत्त्व एक ही है और वह पाप-पुण्य का अतीत है" पृष्ठ १३२.

दाम्पत्य में नन्द शान्ति का नव जीवन कथानक का परम आकर्षणमय एवं परम महत्त्वपूर्ण अंश है। दाम्पत्य ने नव उन्माद में लीन पुरुष एवं गार्हस्थ्य की नव समस्याओं से चिन्तित नारी की यह एक छोटी-सी कहानी है। नन्द प्रसन्न है कि उसे भोगहित एक नारी शरीर मिल गया है। शान्ति चिन्तित है क्योंकि उसके मन में भावी जीवन की समस्याएँ अपने विकट रूप में विद्यमान हैं। शान्ति का आच्छन्न भाव रह-रह कर नन्द के हृदय को पीड़ा पहुँचाता है। उसे शान्ति से कोई सहानुभूति नहीं, उसकी दुश्चिन्ताओं के प्रति राग नहीं, समस्याओं के प्रति सुलझाने के लिए भाव नहीं। एक ही चीज है जो उसे दीख पड़ती है और वह है शान्ति का शरीर, उसके मन तक वह पहुँचना ही नहीं चाहता। उसके प्रेम में उच्छृंखलता है, वासना की तीव्रता है—दूसरी ओर शान्ति के प्रेम में समर्पण की चाह होते हुए भी जीवन को समझने, भावी को तोलने-जोखने की प्रधान इच्छा है। नन्द शान्ति के चिन्ता-विजड़ित, अवसन्न एवं खिन्न मनोभावों को पढ़ना नहीं चाहता, बल्कि उन्हें निहार कर मन-ही-मन घुटता है, जलता है। जली कटी बातें सुनाता है :

"तुमको तो जैसे किसी ने अहिल्या की तरह शाप दे दिया है। पत्थर की तरह जड़ हो गई हो। उतनी देर से एक ही करवट में लेटी हो और टस से मस होना नहीं चाहती। यह समय क्या लेटने या सोने का है।" पृष्ठ १३४—नहीं—यह समय लेटने सोने का नहीं है। पुरुष की प्रकृति की प्रधान प्रवृत्ति—तो कुछ और चाहती है—प्रेमलाप चाहती है—प्रेम क्रीड़ा चाहती है। नारी की सहज प्रकृति प्रणय के बन्धन के भार को समझती है—उस पर मनन करती है। वह पुरुष के वासनात्मक रूप को देखकर, उसके कठोर वचनों को सुनकर आहत होती है और नृशंस पुरुष उसके मर्म को चीर कर भी प्रसन्न होता है :

उस समय मेरी दृढ़ वासना क्रोधावेग के साथ उमड़ चली थी और यह जानकर मुझे दुःख के बदले प्रसन्नता ही हो रही थी कि मेरे आघात से वह आहत हुई है।" पृष्ठ १३५

बलदेव के आगमन के साथ-साथ कथानक में एक नया मोड़ आता है। लज्जा की नायिका एक कुटी को निहार कर अपार पीड़ा की अनुभूति करती है। संशयशील नन्द भी शान्ति द्वारा बलदेव परिवार में ली गई रुचि को घृणा की दृष्टि से देखता है। पहिले तो वह स्वयं ही शान्ति को बलदेव से परिचित कराता है, किन्तु धीरे-धीरे उसके भावों में परिवर्तन आता है। जब शान्ति बलदेव की बहन और मौसी से मिल कर आती है तो उसका मुख अलौकिक उल्लास की दीप्ति से जगमगा जाता है, जिसे देख

कर नन्द का ईर्ष्यालु, मन तप्त हो उठता है, वह मधुमक्खी की भाँति उसे डंक मारकर स्वयं भी वेदना की अनुभूति करता है। दोनों के जीवन में एक लकीर सी खिंच जाती है। यहीं कथा अपने परम आकर्षक स्थल पर पहुँचती है। संघर्ष अपने भीषणतम रूप में प्रकट होता है। अपनी मानसिक चिंता और समस्या से उद्विग्न हुआ नन्द जब खाना खाने बैठता है तब क्रोध का प्रदर्शन कर ठोकर मार कर खाना ही उलट देता है। उसके अचेतन का द्वन्द्व मानो चेतन रूप धारण कर हाहाकार मचा देना चाहता है। उसे शान्ति पर सदेह है और अपनी अयोग्यता एवं चिंता के प्रति क्रोध। ये सब मिल-मिलाकर उसके अन्तर्मन को इतना जकड़ लेते हैं कि वह वासनाओं का दास बना कठ-पुतली की भाँति नाचने लगता है। सदेह जनित ईर्ष्या क्रोध का रूप धारण कर भड़क उठती है, किन्तु केवल एक घंटे के पश्चात् काम का रूप धारण कर उसे क्षमा माँगने पर विवश कर देती है। क्षमा माँगने पर भी जब मन को शान्ति नहीं मिलती तो भ्रान्त हो कार्निवाल चला जाता है और अपना सर्वस्व दाँव पर लगा कर हार जाता है। अपना सर्वस्व हारने पर पुनः मन में संदेह-वृत्ति जागृत हो जाती है। यहीं कथानक में मन के घात-प्रतिघात दर्शाये गये हैं। नन्द-शान्ति वार्ता परम दयनीय स्थिति पर पहुँच जाती है। नन्द कहता है :

"बलदेव के प्रति तुम्हारे मन का जो भाव है, तुम क्या यह समझती हो कि वह मुझ से छिपा है ?" यहीं पर बस नहीं। वह भावुकता में बह कर आगे भी कह देता है :—

"तुम मुझसे ऊबकर बलदेव को चाहने लगी हो। यह बात न होती तो तुम सारी परिस्थिति को समझते हुए भी कभी बलदेव के यहाँ जाने को तैयार न होती। ⋯⋯तुमने वह प्रेम की भेंट परोक्ष रूप मे बलदेव को ही दी है।" पृष्ठ २४६—यहीं कथानक में संघर्ष का मूल है। नारी जीवन मे सब कुछ सह सकती है किन्तु नहीं सह सकती—तो वह है अपने स्त्रीत्व पर आक्षेप—पातिव्रत्य पर लाछन—इन शब्दो को सुनते ही वह नन्द को निष्ठुर! कहकर पछाड़ खा फर्श पर गिर पड़ती है।

वैसे ही अब दोनो मे पुनः प्रेम की आशा ही कहाँ रह जाती है—रही-सही, संभावना पर नन्द किशोर के बड़े भाई आकर तुषारपात करते हैं और शान्ति सदैव के लिए नन्द को त्याग कर चली जाती है। जाने से पूर्व शान्ति के मन में क्या भावनाओं का एक तूफान न उठा होगा? उसके चले जाने पर नन्द का अभिनयात्मक रूप कथा मे नाटकीय तत्व ले आता है। वह बन्दूक नहीं उठाता क्योंकि उसे भय है कि कहीं भाई की हत्या ही न कर बैठे।

कथानक का अधिकांश भाग नन्द के व्यक्तित्व का विश्लेषणात्मक चित्र है। वह बड़े भाई के साथ शिमला चला जाता है और वहाँ पर निठल्ले बैठा-बैठा अपनी जीवनगत व्यर्थता पर मनन करता हुआ बीमार पड़ जाता है कि उसके साथ-साथ कथा में एक

युगान्तकारी मोड़ आ जाता है। शिमला में पुनः उसे जयन्ती के दर्शन होते हैं। वह उसके नव-विकसित यौवन को निहार कर दंग रह जाता है। उसे देख कर उसे सारा संसार सुख, संतोष, प्रेम और पुलकमय दृष्टिगोचर होता है।

यही मनोद्वन्द्व अपने भयंकरतम रूप में नन्द के मन को आलोडित करता है। एक ओर उसके अचेतन मन में शान्ति की परम वंदनीय मूर्ति विद्यमान है तो दूसरी ओर चेतन मन पर जयन्ती का जगमगाता हुआ रूप के चंचल यौवन का जादू भरा प्रभाव पड़ता है। चेतन और अचेतन में होड़ लगी है—उसकी स्थिति विषम है, वह जाये तो जाये कहाँ ? करे तो क्या करे ? कर्तव्य और सौंदर्य में एक संघर्ष मच जाता है। निर्णय कर्तव्य पक्ष में होने ही वाला है कि एक दम से संदेह रूपी दैत्य का एक आघात उसे पछाड़ कर परे फेंक देता है—चेतन के समक्ष मद्य चापल्य भरा यौवन एवं सौंदर्य अपनी जीत पर मुस्काता है।

कैलाश नामक पुराने मित्र से भेंट होने पर नन्द के जीवन में एक बड़ा मोड़ आ जाता है—वह उसके चेतन पर अधिकृत जयन्ती को उसके अचेतन मन की ओर धकेल देता है। यहाँ पर भी मानसिक घात-प्रतिघात दिखाये बिना लेखक कथा को आगे नहीं बढ़ाता। वह कैलाश द्वारा जिन पाँच लड़कियों का परिचय नन्द को देता है उनमें कहीं जयन्ती से कैलाश का प्रेम न रहा हो, यह संदेह नन्द के मन में पैठा देता है, किन्तु कैलाश पूरी गाथा सुना कर उसे संतोष दिलाता है। देखिए

"यह जानकर मुझे यह संतोष अवश्य हुआ कि जिस लड़की को उसने विवाह का वचन दिया है वह मिर्ज़ापुर की छोरा है—मामरे की जयन्ती नहीं।" पृष्ठ १०४ किन्तु संदेह उसके मन का पीछा नहीं छोड़ता। जयन्ती का गीत सुनकर उसकी विचित्र दशा हो जाती है। वह रह-रहकर कैलाश की बात स्मरण करने लगता है। वह गाती भी अच्छा है, और अपने शंकालु मन की पतित अवस्था का विश्लेषण करता है।

"मेरे सामने गाना तो दर-किनार वह मुँह से एक शब्द तक नहीं निकालती इसका अर्थ क्या यह नहीं है कि वह मुझे लफंगा समझती है ? ·····माना कि मैं एक मामूली लफंगा हूँ। मुझ से घृणा करना जयन्ती के लिए स्वाभाविक है। मैं उसे दोष नहीं देता। पर कैलाश ? वह क्या वास्तव में उतना ही शरीफ है जितना कि जयन्ती उसे समझती होगी ?" पृष्ठ २२३। नन्द की ईर्ष्यालु एवं शंकालु प्रवृत्ति यहाँ पर अपनी सभी सीमाओं का उल्लंघन कर गई है। वह उस समय (बाद में उसे पता चला कि जयन्ती उसकी सगी मौसी की लड़की नहीं है) इसको जान जानकर भी कि जयन्ती उसकी बहन है—संदेह करता है—इसे अनैतिक मानता है कि जयन्ती कैलाश के सम्मुख आती रही, यद्यपि अपने सम्मुख उसे न आने देना वह अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझता है।

वह जयन्ती से प्रेम की पींग बढ़ाता है, किन्तु समय-असमय शान्ति को भी स्मरण करता है, यद्यपि उसे भुला देना चाहता है, भुलाता भी है :

"शान्ति की याद आते ही मेरा मन एक बार किसी अनन्त अन्धकारमय लोक के अगाध सागर में डूबता हुआ आत्मरक्षा के लिए छटपटाने लगा। कुछ समय के लिए मैंने आँखें मींचकर उस स्मृति की निदारुण वेदना की भयंकरता को अन्तरतम के गहन गर्त के भीतर ढकेलकर ऊपर से ढकना लगाकर उसे बंद कर दिया" पृष्ठ ३२६.

कथा यहीं तीव्र गति के साथ अपनी परमोन्नत दशा की ओर बढ़ती है। जयन्ती के साथ विवाह होने की कल्पना मात्र से नायक पुलकित ही नहीं होता, उत्तेजित भी हो जाता है। यह विवाह सदृश महत्वपूर्ण दायित्व को कर्तव्य के रूप में ग्रहण न कर उसे आमोद-प्रमोद का सरल साधन मानता है। तनिक देखिए तो इनके विचारों को :

"विवाह ! जयन्ती के साथ विवाह ! इसका अर्थ यह है कि यही जयन्ती जो इस समय मेरे इतने निकट होने पर भी मुझसे इतनी दूर है, मेरी दासी बनकर रहेगी और अपने अज्ञात गर्व और अव्यक्त घृणा के भावों के कुचले जाने पर आँधी के वेग से विच्छिन्न लता की तरह एक मात्र मेरे चरणों का आश्रय पाकर विवश होकर उनसे लिपटी रहेगी। इस भावना में कितना सुख है। मैं अवश्य उससे विवाह करूँगा।" पृष्ठ ३३३.

लेखक ने छोटी-से-छोटी घटना में भी नायक के मनस्थल की छानबीन की है। भाभी जी ने जयन्ती द्वारा बनाई तरकारी (गुच्छी) 'की प्रशंसा की 'तुम्हारे ही लिए खास तौर से तरकारी बनाई है।" यह बात इकतारा के स्वर के समान निरन्तर उसके कानों में गूँजने लगी। उसकी उत्सुकता, 'आकांक्षा और प्रेम (वासना कह लो) तीव्रतम रूप धारण कर गये। वह जयन्ती को पाने के लिए छटपटाने लगा—

और उसे पा लेने पर ? यही कि जयन्ती भी, शान्ति से परिष्कृत रूप में (विवाह हो जाने के कारण सामाजिक नैतिकता की दृष्टि से) नन्द की काम वासना की आहुति में झोंक दी गई। इस तथ्य को पहचान कर ही वह एक दिन नन्द से कहती है, "आपने वैवाहिक सुख और शान्ति के इरादे से मुझसे विवाह कभी नहीं किया, बल्कि अपने सामाजिक अधिकार के पूरे प्रयोग से मुझे कलुषित और दलित करके एक हिंसात्मक सुख प्राप्त करने का उद्देश्य आपका प्रारम्भ से ही रहा है। विवाह के पूर्व से ही आपके मन में, जान में या अनजान में, मेरे चरित्र के प्रति सन्देह और साथ ही एक अस्वाभाविक ईर्ष्या का भाव घर किये था।" ४२३.

जयन्ती के इन शब्दों में लेखक ने कथानक में आई एक ग्रन्थि खोल दी है। नन्द के मन में बसी ग्रन्थि का हमें साक्षात्कार करवा दिया है। उसके घोर व्यक्तिवादी, शंकालु चरित्र का विश्लेषण कर दिया है। जयन्ती नन्द द्वारा अपमानित होकर आत्महत्या कर लेती है तो शान्ति क्लान्त होकर उसे सदैव के लिए त्याग कर नव-पथ

का पदलप्पन लेती है—उसकी मतान को उसे और कर वह चल देती है। उसे जीवन भर यातना की भट्टी में तपाने के लिए, उसके कुत्सित मन के कुत्सित संस्कारों को धोने का अवसर देने के लिए।

जोशी जी के पात्रों की विशिष्ट चारित्रिक परम्परा है। उनके पात्र समाजगत न होकर व्यक्ति-प्रधान हैं। वे व्यक्ति के माध्यम से व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हैं। असाधारण, असाधारण पात्रों की योजना भी लेखक ने की है। विशेषकर नन्द का चरित्र एक असाधारण व्यक्ति का चरित्र है जो विश्लेषणात्मक प्रणाली के साथ चित्रित किया गया है। लेखक ने अपने पात्रों के अन्तर्जीवन की एक लम्बी सूची तैयार कर दी है और उनके द्वन्द्व-पक्षों के घात-प्रतिघात बड़े ही सफल ढंग से प्रस्तुत किये हैं। नन्द इनमें प्रमुख पात्र है—वह सन्यासी का नायक है।

नन्दकिशोर

नव-यौवन की नव-भावनाओं से अनभिज्ञ यह युवक फ्रायड-कथित दमित काम-वासना का एक भोला शिकार है। भोला इसलिए कि युवक होने पर भी *यौवनगत प्रधान भावना रति को इसने पहले कभी कोई महत्व ही नहीं दिया*—बस मननशील, अध्ययनशील, अन्तर्मुखी रह बनारस विश्व विद्यालय में दिन बिता रहा है। तभी तो अनेक विषयों को आन्तरिक रूप से समझ-बूझ कर भी बाह्य जीवन में व्यावहारिक रूप देने में असमर्थ है। किसी भी भद्र महिला का पीछा करना वह शिष्टाचार के नियम के विरुद्ध समझता है, किन्तु शान्ति एवं कमला को देखकर उमापति द्वारा उकसाये जाने पर उसके साथ उनका पीछा करता है—मानो अपनी विवेक शक्ति को बेच डालता है।

"उमापति उसी ओर हमें घसीटने लगा। मैं भी नीमराजी सा होकर अनिच्छित पदों से उसके साथ हो लिया। पर कलेजा धड़क रहा था। अपने को अत्यन्त पतित, बाजारू आदमियों से भी बदतर समझ रहा था।" पृष्ठ ५०

पुनः उमापति के आग्रह पर वह उनके घर तक चला जाता है। फिर स्वयं अपने कृत्य पर विश्लेषणात्मक रूप से मनन करता है—सोचता है कि वह उमापति के साथ कौतूहलवश गया अथवा विशेष आकांक्षा रख कर? इसका उत्तर भी स्वयं ही दे-देता है। आगरे में जयन्ती-दर्शन ने उसकी दमित काम-वासना को भड़का दिया था इसे वह स्वयं मान लेता है: "किसी नवीना किशोरी के दर्शन-मात्र से हृदय की ऐसी काया-पलट हो सकती है, इससे पहले मुझे कभी इसका अनुभव नहीं था। कितने ही युगों से रुद्ध मेरी व्याकुल वासना का बाँध ही बिलकुल टूट पड़ा था। जिधर को गति पाता था, उसी ओर विस्फूर्जित वायु-वेग से बहने लग जाता था।" पृ० ६४—अतः सिद्ध हो जाता है कि दमित काम की पूर्ति के हित ही वह वहाँ पहुँचा।

और यही ग्रंथि धीरे-धीरे उसमें कामुकता की सृष्टि कर देती है। उसका कामुक रूप पाठकों के सम्मुख स्पष्ट रूप में आ जाता है।

"उसके घबराये हुए चेहरे में और भर्राई आवाज में नववधू की तरह एक सलज्ज और संत्रस्त भाव देखकर मैं पुलकित हो उठा।" पृ० ११७—कामुक व्यक्ति भीरु होते ही हैं। तभी तो पल भर के पश्चात् ही नन्द की अन्तश्चेतना प्रखर हो उठी—प्रबल अवसाद से भर गई और शान्ति की ओर पुनः देखकर वह अपने को कापुरुष एवं भीरु समझने लगा। "पर शान्ति के मुख की ओर मैं देखता तो मेरा अन्तर्मन मुझे भीरु और कापुरुष कहकर धिक्कारता था।" पृ० ११७.

शान्ति ने एक बार उसे कायर कहा तो यह बात उसके अन्तर्मन में गड़ गई—वह वास्तव में अपने को कायर, प्रमादी और अयोग्य समझने लगा, तभी तो शांति से बल की भीख माँगता है। "शांति, शांति! प्यारी शांति अपनी प्रेममयी आत्मा से मुझमें बल संचारित करो कि समस्त विश्व का बन्धन तोड़कर तुमसे मिल सकूँ!" पृ० ९२—वह अपनी कमजोरी एवं साहसहीनता के अभाव को ही स्वीकार करता है, "एक तरफ तो ऐसा प्रचण्ड आवेग मेरे भीतर प्रबल झंझा की तरह विस्फूर्जित हो रहा था, दूसरी ओर मुझमें इतना साहस नहीं होता था कि सामाजिक तथा लौकिक बन्धनों को तुच्छ करके बेधड़क जाकर शांति से उसके मकान पर जाकर मिलूँ।" पृ० ९३.

नन्द का प्रेम एक भावुक प्रेमी के हृदय का उद्‌गार है जो क्षणिक है, दूध के झाग की भाँति उबाल खाकर बैठ जाता है। जब वह शांति को भगा कर इलाहाबाद पहुँचता है तब उस प्रेम का प्रकटीकरण भावुकता के साथ करने लगता है, "शांति, संसार की कोई भी शक्ति मुझे तुम्हारे प्रेम से और अपने कर्तव्य से कभी विचलित नहीं कर सकेगी, इस बात पर तुम एक बार दृढ़ता के साथ विश्वास कर लो, बस! अपने जीते जी मैं तुम्हें एक दिन के लिए भी कभी नहीं छोड़ूँगा।" पृ० १२९.

पर यही नन्द प्रेम के अखाड़े का असफल खिलाड़ी सिद्ध होता है। क्यों? इसलिए कि इसका चारित्रिक गठन ही कुछ विचित्र प्रकार का है। एक ओर यह घोर अहंवादी है तो दूसरी ओर परम शंकालु। अतः दोनों के मिलाप से चरम ईर्ष्यालु प्रकृति का रूप धारण कर लेता है। शांति के मन को यह ठीक प्रकार समझ नहीं सका और उसके शरीर से खिलवाड़ करने लगा—एक बार की प्रार्थना पर नकारात्मक उत्तर पाकर तीव्र प्रकृति का परिचय दिया—"मैं नहीं जानता था कि तुम्हारे मन के भीतर ऐसे गुप्त और अव्यक्त भाव छिपे हैं। तुम बराबर अपने मन की यथार्थ बातों को मुझ से छिपाती आई हो और मुझ से कपट रखती हो।" पृ० १३५-नन्द के इन शब्दों मे उसकी अहं, स्वार्थ एवं शंकालु प्रकृति के स्पष्ट दर्शन होते हैं। और आगे चलकर वह अपने कामुक चरित्र का प्रदर्शन भी इन शब्दों के साथ कर ही

देता है : "प्रेम के सम्बन्ध में सिद्धान्त रूप से मेरा आदर्श कितना ही ऊँचा क्यों न हो, पर यथार्थ में वह वास्तविक जगत की प्रकृतिगत पंकिलता में लिप्त होने के लिए भीतर-ही-भीतर व्याकुल हो रहा था।" पृ० १३६

सन्देह रूपी दैत्य ने ईर्ष्या रूपी राक्षस के साथ मिलकर नन्दकिशोर के मानसिक क्षेत्र को पंकिल बना दिया है। वह बलदेव पर संदेह करता है। शान्ति को शंका की दृष्टि से ही नहीं देखता, उस पर तो कलंक का (बलदेव से प्रेम करती हो) टीका तक लगा देता है। मेरे मन में एक ओर ईर्ष्या की आग बड़े भयंकर रूप से भड़क रही थी, और दूसरी ओर इसी कारण उस आग को बुझाने के लिए अपने भीतर शीतल जल के संचय की अत्यन्त प्रबल आवश्यकता मुझे महसूस हो रही थी। एक प्रलयंकर द्वन्द्व मेरे भीतर मच रहा था।—शान्ति क्या सचमुच इस व्यक्ति से उसी रूप में प्रेम करने लगी है जिस रूप में वह इस समय तक मुझ से करती आई है। पृ० २०४—आगे चल कर वह विश्लेषण करता चलता है। "बात तो केवल एक ही हो सकती है वह यह कि बलदेव को शान्ति जो चाहने लगी है, वह उसके अपने वश की बात नहीं है। दोनों के भीतर दबे हुए कुछ अज्ञात संस्कार किसी रहस्यमय नियम की प्रेरणा से बरबस एक दूसरे के प्रति प्रबल आकर्षण का अनुभव करने लगे हैं।" पृ० २३१—और अन्त में स्पष्ट शब्दों में शान्ति को लांछित कर देता है : "तुम मुझ से ऊबकर बलदेव को चाहने लगी हो। यह बात न होती तो तुम सारी परिस्थिति को समझते हुए भी कभी बलदेव के यहाँ जाने को तैयार न होती। और—और वहाँ जाकर तुम बलदेव की बहन को जो अपने गले का हार दे आई हो—तुमने वह प्रेम की भेंट परोक्ष रूप से बलदेव को ही दी है।" इस प्रकार लेखक हमें नन्द के रूप में समाज में विचर रहे एक घोर अहंवादी आत्मलीन, स्वार्थी, संदेहशील नारकीय कीटाणु के दर्शन करा देता है।

नन्द की अव्यवस्थित मानसिक प्रवृत्ति उसे अयोग्य एवं निठल्ला बना देती है। किसी भी कार्य को करने में वह अपने को असमर्थ पाता है। इलाहाबाद में जब शान्ति के साथ प्रेम-जगत के भाव-लोक की सैर करते-करते एक दिन उसका ध्यान जब आर्थिक कष्ट की समस्या की ओर जाता है तब वह काँप उठता है। अपने मन का विश्लेषण करते हुए कहता है "इस बेकारी के युग में नौकरी पहले तो मिलती ही कहाँ है और यदि कहीं मिल भी गई तो मैं उसे निबाह नहीं सकता— मेरा रक्त-मांस ही नौकरी के योग्य नहीं है। तब क्या उपाय होगा?"

नन्द के चरित्र में क्रोध की भी कमी नहीं है। वह समय-असमय भड़क उठता है। शान्ति को रुलाता है और फिर उससे झटपट क्षमा माँग लेता है। एक दिन उसने क्रोध से काँपते हुए खाने की थाली पर ठोकर मारी और सारे फर्श को लथपथ कर दिया। दूसरे ही क्षण शान्ति से क्षमा माँगने लगा—"शान्ति मुझे क्षमा

करो। मेरा जी अच्छा न होने के कारण मैं उत्तेजित हो उठा था। मैं जानता हूँ कि मैंने बड़ा अन्याय किया है। पर तुम्हें कैसे समझाऊँ कि उस समय मेरे मन की क्या दशा हो रही थी।" पृ० २३५—यह प्रवृत्ति उसके मन एवं मस्तिष्क की एक बड़ी ग्रन्थि है। चाहता कुछ है, करता कुछ है और फिर करने पर पश्चाताप करता है, सिर तक धुन लेता है। शांति उसके मन के एक-एक तार को समझती है, जयन्ती उसके मस्तिष्क में बसे एक-एक विचार से परिचित हो जाती है। तभी एक दिन बात-चीत के मध्य उसे अवगत कराती है: "आप में अभिमान तो है ही, पर अहंभाव भी हद दर्जे तक है। इस अहंभाव की तृप्ति के लिए आप चाहते हैं कि जिस स्त्री से आपका सम्बन्ध हो, वह पूर्ण रूप से आपकी होकर रहे, उसका कुछ भी स्वतंत्र रूप से अपना कहने को न रहे; उसका शरीर, उसका मन, उसकी प्रत्येक वासना, प्रत्येक कामना, आपकी इच्छा की बलि हो जावें, उसके भीतर छिपी हुई कोई गुप्त-से-गुप्त प्रवृत्ति उसकी अपनी होकर न रहे, वह सब कुछ बिना किसी असमंजस के आपके पैरों तले समर्पित कर दे। इन दोषों में सबसे बढ़कर है—अहंभाव की ज्वाला बुझाने के लिए प्रकृति के सब तत्वों को पूर्ण रूप से होम करने की प्रबल आकांक्षा। पर इस अप्राकृतिक आकांक्षा की तृप्ति कभी सम्भव नहीं है, इसलिए आपके मन में अशांति और असन्तोष के भाव सदा बने रहेंगे और जिस-जिसके सम्पर्क में आप रहेंगे उसके जीवन में भी आप बेचैनी के बीज बोते चले जावेंगे।" पृ० ३८१—जयन्ती ने तो मानो इन शब्दों रूपी एक्सरे द्वारा नन्दकिशोर के मन और मस्तिष्क का फोटो ही उतार कर रख दिया है।

नन्द अपने भावुक अपसाधारण व्यक्तित्व से स्वयं परिचित है। भावुकतावश वह आगरे में जयन्ती द्वारा लौटाये अपने नोटों को फाड़ देता है। अपसाधारण व्यक्तित्व के कारण जीवन में दो नारियों में से किसी के भी हृदय को नहीं पा सका। अपने अपसाधारण होने की बात वह स्वयं स्वीकृत करता है। "जयन्ती यदि एक असाधारण स्त्री थी, तो मैं भी एक अपसाधारण पुरुष था। 'अपसाधारण' शब्द का कुछ और अर्थ लगाकर कोई यह न समझे कि मैं साधारण मनुष्यों से बहुत ऊँचा उठा हुआ था। हो सकता है कि कुछ विशेष बातों में मेरे मन और मस्तिष्क ऊँचे उठे हुए हों, पर बहुत-सी बातों में मैं साधारण मनुष्यों से बहुत नीचे, एक दम नीचे गिरा हुआ था।" पृ० ३६१—नन्द के हृदय में इस अपसाधारण अवस्था होने के कारण एक आत्मघाती अस्थिरता, एक तूफानी अशांति और दयनीय मानसिक असन्तुलन की भा। विद्यमान रहती है जो उसके जीवन को नष्टप्राय: कर देती है।

ती

संन्यासी में नारी के दो उत्पन्न रूप प्रस्तुत किये गये हैं—एक है तेजमयी,

प्रदर्शित करती है ।

जयन्ती ने प्रखर बुद्धि और सूक्ष्म दृष्टि पाई है । कैलाश उसके गुणों का कायल है । वह सुन्दर है, पढ़ी-लिखी है और अच्छी गायिका भी है । 'पायल झुनकिया बाजे लागी' उसका प्रिय गीत है, जिसकी ध्वनि मात्र नन्दकिशोर के कानों में ही नहीं गूँजती, अपितु उसके तन मन को झकझोर देती है, उसे दूर कल्पना के संसार की सैर कराती है, उसमें चारित्रिक विश्लेषण कराती है, और कैलाश के प्रति उसके परिचय, आकर्षण और प्रणय पर मनन कराती है । उसका दूसरा प्रियगीत है 'अकेले न जइयो राधे, जमुना के तीर'। यह गीत वह एक बार नन्दकिशोर के विवाह के पश्चात् उसके साथ नाव की सैर करते हुए गाती है और दूसरी बार कैलाश के आ जाने पर जब कैलाश यही गीत गाता है तो वह भाव-उन्मना हो जाती है । विह्वल दृष्टि से उसकी ओर देखने लगती है, किन्तु उसकी आँखों में अज्ञात भय जनित चंचलता भी झलकती है जो उसके कैलाश के प्रति रहे पूर्व आकर्षण को स्पष्ट करती है ।

वास्तव में जयन्ती उन्मुक्त प्रमिका, भाव प्रेमिका है । नन्दकिशोर के साथ विवाह होने से पूर्व वह कैलाश के साथ प्रणय-लीला में मग्न रही है । इसका संकेत हमें उस समय पर मिलता है जब कैलाश अचानक शिमला में जयन्ती से मिलता है । नन्दकिशोर के घर उसे देखते ही जयन्ती हतप्रभ रह जाती है । उसका चेहरा पीला पड़ जाता है; उसकी आँखों में चंचल व्याकुलता दृष्टिगोचर होती है, जो पूर्व प्रणय

शान्ति का अमर असफल प्रेम जहाँ मुक्ति मार्ग का अवलम्ब लेता है वहाँ जयन्ती वा पीड़ित एवं चिर शोषित नारी मन मृत्यु का सहारा लेता है। वह स्वाभिमान के साथ जाती है और स्वाभिमान के साथ ही मरती है।

बलदेव प्रसाद

एक जीर्ण शीर्ण युवक के रूप में हमें बलदेव प्रसाद जी के दर्शन होते हैं। बलदेव प्रसाद उपनाम बलदेव एक निम्न मध्य वर्गीय सामाजिक प्राणी है, सन्यासी का उपनायक है। गरीबी के कारण उसका कोट और पेंट फट चला है और उस पर जगह-जगह अगणित सिकुड़नें पड़ गई हैं। उसके बिखरे बाल उसके लापरवाह चरित्र का उद्घाटन करते हैं।

पूंजीवादी विचारों का वह घोर विरोधी है और गांधी जी को परम पूंजीवादी बना कर उपहास का पात्र बताता है। यहाँ तक की उन्हें इम्पायर्ड ईडियट तक की उपाधि दे डालता है। साम्यवादी दृष्टिकोण के प्रति उसकी पूर्ण सहानुभूति है। वह भाव लोक में नहीं यथार्थ लोक में विचरण करना चाहता है। दलित, पीड़ित और चिर शोषित किसान और मजदूरों का वह साथी है। ग्राम-जीवन के कठोर कष्टों से वह जन-जीवन को परिचित कराना चाहता है। मध्य श्रेणी की अकिंचनता और अभाव का वर्णन करता है।

बलदेव एक अच्छा वक्ता भी है। उसकी वाग्धारा से सब लोग प्रभावित हो जाते हैं। उसके चेहरे पर एक विचित्र आभा है। उसके भाषण में एक सम्मोहन शक्ति है। वाणी में अनोखा जादू है जो अपनी मार्मिकता से लोगों को अभिभूत कर लेता है। अपनी समस्त आत्मा की करुणा को बाहर निकाल कर श्रोता की आत्मा और उसके मनोभावों के साथ उसे आत्मसात करने की कला में वह निपुण है। उसे इह-लौकिक जीवन में कुछ कटु अनुभव प्राप्त हुए हैं। इसी कारण वह दुःख दैन्य और असीम पीड़ा का वर्णन कर किसी के भी मर्म को छू सकता है, किसी की सहानुभूति प्राप्त कर सकता है। आरम्भ में उसने नन्दकिशोर की सहानुभूति प्राप्त की है और धीरे-धीरे शान्ति के मन में करुणा जगा ली है।

बलदेव के स्वभाव में अजीब तरह का रूखापन आ चला है। ईश्वर तक की सत्ता उसे स्वीकृत नहीं है। यूनिवर्सिटी में पढ़ते हुए भी बेचारा मुश्किल से फीस जुटा पाता है, अतः कोरी भावुकता में विश्वास नहीं रखता। पर शान्ति के संपर्क में आकर भावुकता के महत्व को स्वीकार कर लेता है। विवेक शिथिल पड़ने लगता है। बलदेव का झुकाव ज्यों-ज्यों शान्ति की ओर होता है, नन्दकिशोर का मन उसकी ओर से संदेहात्मक भावनाओं से भर जाता है। उसकी सहज सरल मुस्कान उसे खलती है।

उसकी गरीबी से उसे विशेष सहानुभूति नहीं। शान्ति द्वारा भेंट की चीजों के प्रति क्रोध उमड़ आता है।

दरिद्रता के मर्मघाती आघात सहते हुए भी बलदेव जीवन के प्रति ईमानदार रहता है, परिवार का यथा सम्भव पालन-पोषण करता है। वह जीवन की विषम परिस्थिति में भी शान्ति की सहायता करता है। अपने जीवन के उत्थान-पतन में दृष्टि-कोण को परिवर्तित कर गांधी जी का परम भक्त बन जाता है। बलदेव के चरित्र में हम एक अदम्य दृढ़ता और परम धैर्य तथा साहस की पराकाष्ठा देखते हैं। वह जीवन के विकटतम क्षणों में भी घबरा नहीं जाता, अपितु परिस्थिति का सामना करके प्रगति के मार्ग पर बढ़ता जाता है। उसका चरित्र परम उत्कृष्ट है और शान्ति के साथ कोई भी अनैतिक सम्बन्ध उसने नहीं जोड़ा।

नन्द के बड़े भैया एक फक्कड़, उदार चित्त जिंदादिल इन्सान हैं। वह हर प्रकार नन्द की सहायता करते हैं। उन्होंने एक सूक्ष्म मनोदृष्टि पाई है। तभी तो वह शान्ति सदृश दृढ़ नारी का मन भी पूर्णतः नन्द की ओर से फेर देते हैं। उनके भाषण में जादू का प्रभाव है, पहिले उसकी प्रशंसा कर फुला देते हैं, फिर समाज के कठोर नियम और नन्द के चरित्र की अकर्मण्यता की ओर उसे आकृष्ट कर इलाहाबाद छोड़ जाने पर विवश कर देते हैं? "तुम नारी हो। तुम्हें आत्मत्याग का महत्व समझाने की आवश्यकता नहीं है—तुम भी इन वीरांगनाओं की सन्तान हो ··· अगर तुम सचमुच नन्दकिशोर को चाहती हो, और तुम्हारा यह चाहना किसी लौकिक स्वार्थ से सम्बन्धित न होकर आत्मा से सम्बन्ध रखता है तो तुम उसके शारीरिक और मान-सिक हित का ध्यान रख कर उसका साथ छोड़ कर कहीं चली जाओ ··· देखो, देखो जरा उसके भविष्य पर तो विचार करो। तुम उसके साथ बनी रहोगी तो उसकी बर-बादी हो जायेगी। मैं उसे बचपन से ही उसकी आदतों को जानता हूँ। वह बड़ा निकम्मा और आरामी आदमी है।" पृष्ठ २५८. भैया के इन वाक्यों ने शान्ति [illegible] प्रभाव [illegible]—इतना ही नहीं उन्होंने नन्द के भावुक हृदय पर भी [illegible] [illegible] और [illegible] रूप से उसे वश में [illegible]।

से वह खिलवाड़ करता रहा—बुद्ध का अभिनय भी उसने किया। वह नारी को माँ या बहन के रूप में नहीं अपितु मात्र नारी के रूप में देखता है, चाहता है और भोग करता है, यहाँ भी दाग लग जाता है।

वह बड़ा भारी धूर्त है। सरल साधारण जन को लूटना ही उसका धन्धा है। जयन्ती के पिता से कुछ रुपये बटोर चुका है, फिर भी निर्लज्ज हो उनसे मिलता रहता है। उसके चरित्र का उद्घाटन मिसरानी जी (जयन्ती की माता जी) ही करती हैं। वचन, चापलूसी और गुण ही उसके जीवन के मूल मन्त्र हैं।

वह बहुरूपिया भी है—कभी धोती कुरता पहनता है तो कभी कोट पैंट—किसी समय शिकारी बन जाता है तो किसी समय महाराज-कुमार। अधिक शिक्षित न होने पर भी वह मनोवैज्ञानिक तथ्यों से परिचित है। नारी के हृदय के मर्म स्थल को छू देना जानता है—जयन्ती नन्द के घर पहुँचते ही उसके मर्म को स्पर्श कर देने वाली बात कहता है—'मैं आगरे से आ रहा हूँ .... मिश्र जी को इस बात पर बड़ा आश्चर्य और दुःख हो रहा है कि जयन्ती को विदा नहीं किया गया" पृष्ठ ३९९ मायके से स्त्री को कितना प्यार होता है यह वह जानता है। तभी उसी के अनुरूप वचन कह उसके हृदय को जीतना चाहता है।

नन्द की दृष्टि में कैलाश एक अत्यन्त उत्तरदायित्व शून्य प्राणी है अतः घृणा के योग्य है अथवा दया का पात्र। जयन्ती के अचेतन मन में वह राधा के कन्हैया की तरह बसा हुआ है। एक और विशिष्ट बात है और वह है उसके चरित्र की निर्लज्जता तथा ढीठपन—नन्द की उपेक्षा पाकर भी वह ढीठ बन उसके निवास-स्थान पर पड़ा रहा और उसके धक्के खाकर ही निकला—

समस्याएँ

संन्यासी में जोशी जी ने जीवन की शाश्वत समस्याओं का चित्रण किया है। उन्होंने प्रेम और विवाह; नारी की करुणा और हास्य, पुरुष के दर्प और स्वार्थ पर प्रकाश डाला है, उसके मानसिक चिन्तन एव मनोद्वन्द का सफल चित्रण किया है। सबसे पूर्व प्रेम को लेते हैं। जोशी जी ने प्रेम के स्वस्थ एवं सात्विक स्वरूप का चित्रण शान्ति के प्रेमोद्गारों में किया है, तो उसके वासनात्मक पहलू को भी नन्द के चरित्र-गठन में दर्शा दिया है। प्रेम का उन्मुक्त एवं पूर्ण स्वेच्छाचारी रूप कैलाश के आकार में भ्रमण कर रहा है और उसका सीमित किन्तु रोमांचकारी दृश्य जयन्ती की जीवनी में प्रकट हुआ है।

शान्ति के प्रेम मे पल-पल में कम्पन, पग-पग पर सिहरन, क्षण-क्षण मे आवेग दृष्टिगोचर होता है। पवित्र प्रेम के ही कारण उसके मुख पर प्रति पल एक दिव्य उल्लास की दीप्ति दृष्टिगोचर होती रहती है। नन्द के विचारों में वह वास्तविक प्रेम

की अधिकारिणी है। उसके प्रेम में भावुक प्रेमिका की अस्थिरता नहीं है, अपितु विचारशील व्यक्तित्व की दृढ़ता है। उसका प्रेम नारी के समर्पण की चरम सीमा है—वह अपने प्रेमी (नन्द) में अपने जीवनगत समस्त सुख-दुःख, हास-विलास, प्रामोद-प्रमोद, करुणा एवं क्रन्दन को लय कर देने के लिए व्यग्र है—और एक बार समर्पण पश्चात् उसके पास अपना कहने को शेष रह ही क्या जाता है ? अहं नाम की कोई भी वस्तु उसके प्रेम में दृष्टिगोचर नहीं होती; हाँ उसमें स्वाभिमान है, जो ठुकराये हुए प्रेम का प्रतिकार चाहता है—घातक मन का प्रतिशोध लेता है—वह नन्द को सदा सर्वदा के लिए त्याग कर मुक्ति-मार्ग की ओर यह कहकर बढ़ जाती है, "मैं जा रही हूँ। किसी से असंतुष्ट होकर नहीं, बल्कि जीवन के रहे-सहे बंधनों को छिन्न करके पूर्ण मुक्ति का स्वाद प्राप्त करने की इच्छा से।" पृष्ठ ४५४.

नारी के प्रेम की चरम सीमा मातृत्व की परिणति में होती है। उसे प्राप्त करके भी वह वात्सल्य-रस के बन्धनों में अपने को नहीं जकड़ती है। उसके विचार में प्रेम का पथ अनन्त एवं असीम है; कंटकमय है—उस पर चलना अत्यन्त दुर्लभ है; विशेषकर नारी के लिए वह शूलों की शैया है। वह प्रेम के परिणाम से परिचित है अत: उस पर गम्भीरतापूर्वक मनन करती है, जिसे देखकर नन्द का भावुक प्रेम कभी मचलता है और मचलने पर उचित प्रतिक्रियात्मक सहयोग न पाकर कुढ़ता है—नन्द कहता है, 'सिद्धान्त रूप से मेरा आदर्श कितना ही ऊँचा क्यों न हो पर यथार्थ में वह वास्तविक जगत् की प्रकृतिगत पंकिलता से लिप्त होने के लिए भीतर-ही-भीतर व्याकुल हो रहा था। पर शान्ति ने जैसा रुख अख्तियार कर लिया था, उससे वह पग-पग पर विरोध तथा प्रतिरोध पाने के कारण अशान्त और अधीर हो उठा था। बचपन से मैंने सोचा था कि काव्यों, उपन्यासों तथा नाटकों में जिस 'स्वर्गीय प्रेम' का मनोमुग्धकर और सुन्दर वर्णन पढ़ता आया हूँ, शान्ति के साथ वही "संगरहित निश्छिन्न प्रेम" शान्त और स्निग्ध रूप से निबाहता हुआ प्रतिपल स्वर्गीय उमंग और उन्माद का अनुभव करता रहूँगा।" पृष्ठ २३७.

किन्तु कल्पना-लोक का काव्यमय प्रेम यथार्थ की भूमि पर कहाँ प्राप्य है ? वास्तविक जीवन की भयावह आँधी उसे किधर ले जाती है। नन्द के प्रेम में गम्भीरता का अभाव है; उसमें तो भावुकता एवं ईर्ष्या ही विद्यमान है। वह तो प्रेम का ढिंढोरा पीटता है,—"शान्ति ! मेरी भोली शान्ति ! मेरी दुलारी शान्ति ! मेरी प्यारी शान्ति ! तुम मेरी हो ! केवल मेरी !" पृष्ठ १६०. कितनी भावुकता भरी है इन शब्दों में ; शान्ति के पश्चात् वह जयन्ती से प्रेम करता है किन्तु जयन्ती के प्रति किया गया प्रेम भी भौतिक रूप-प्रधान है, आध्यात्मिक नहीं। विवाह हो जाने पर भी वह उसे आध्यात्मिक रूप नहीं दे पाता अपितु अपनी वासनाओं के शिकार का स्वीकार उसकी कन्या से, उसके मन और शरीर से खिलवाड़ करता है। भौतिक प्रेम

कभी स्थायी एवं चिर कालीन नहीं हो सकता—जयन्ती के बलिदान से इस तथ्य का उद्घाटन होता है। कैलाश का मन तो सदैव एवं सर्वत्र ही मौज उड़ाता जाता है—उसके मन में प्रेम नहीं, वासना घर किये बैठी है जो उससे घृणित से घृणित कार्य करवाती रहती है। वह अपनी प्रेमिका (जयन्ती) को मौसी की लड़की बताता फिरता है। उसके मन में कभी भी प्रेम की मधुर पीडा नहीं हुई अपितु वासना ही विस्फूर्जित होती रही। जयन्ती के प्रथम प्रेम में चांचल्य है, किन्तु विवाहोपरान्त प्रेम में समर्पण, त्याग सेवा जैसे देदीप्यमान गुण विद्यमान हैं। वह अतीत के प्रेमगत रोमांस को सेवा-प्रधान प्रेम में परिवर्तित कर देने को व्यग्र है। किन्तु निष्ठुर अहं एवं सन्देह (पुरुष द्वारा नारी पर किया गया अह) का एक ही आघात उसके पातिव्रत्य प्रेम पर कुठाराघात कर देता है और उसे मृत्यु ही शान्ति दे पाती है।

विवाह के बारे में भी लेखक ने विस्तार से लेखनी चलाई है। उसने विवाह के सहज और गंभीर स्वरूप को पहचानने की प्रेरणा दी है। सन्यासी की कथा में दो प्रकार के विवाह दिखाये गये हैं—एक गुप्त अर्थात गांधर्व है तो दूसरा समाज द्वारा प्रतिष्ठित। किन्तु दोनों ही असफल हैं। प्रथम में नन्द द्वारा शान्ति के पूर्ण समर्पण के पश्चात भी और कुछ की चाहना बनी है। वह उसका स्वरूप पाकर भी उसे क्षण भर को सोचने देना नहीं चाहता—उसे तो प्रतिक्षण उसका शरीर चाहिए—प्रेम-क्रीड़ा चाहिए, रति-अभिनय चाहिए, कहाँ से लाये एक नारी यह सब एक पुरुष के लिये ?

दूसरा विवाह तो है ही एक विकृत भावना का फल। नन्द सोचता है, "विवाह ! जयन्ती के साथ विवाह ! इसका अर्थ यह है कि यही जयन्ती जो इस समय मेरे इतने निकट होने पर भी मुझसे इतनी दूर है, मेरी दासी बनकर रहेगी और अपने अज्ञात गर्व और अव्यक्त घृणा के भावों के कुचले जाने पर आंधी के वेग से छिन्नमूल लता की तरह एकमात्र मेरे चरणों पर आश्रय पाकर विवश होकर उनसे लिपटी रहेगी। इस भावना में कितना सुख है। मैं अवश्य उससे विवाह करूँगा।" पृष्ठ १३१ और इसी भावना से वशीभूत होकर वह जयन्ती से विवाह करता है। किन्तु क्या उसका यह विवाह भी सफल हुआ ? नहीं। प्रश्न होता है क्यों ? इसीलिए कि विवाह जीवन के साधारणतम क्रम-चक्र को समगति से चलाने के लिए किया जाता है, न कि किसी विकृत ग्रंथि से वशीभूत होकर। किसी भी अदम्य ग्रंथि स्वरूप वशीभूत विवाह जीवन में कदापि सफल नहीं हो सकता—विवाह में केवल दो शरीरों का ही गठबंधन नहीं हुआ करता अपितु दो मन मिला करते हैं। दो आत्माएँ एक दूसरे में अपनी प्रति-च्छाया देखा करती है और जब तक ऐसा विवाह केवल एक पुरुष के एक स्त्री के साथ शारीरिक गठबंधन का ही नाम नहीं है, विवाह नहीं है। विवाह नाम है उस सम्बन्ध का—उस संस्कार का जिसके फलस्वरूप एक शरीर के साथ-साथ एक मन ही नहीं अपितु, एक

आत्मा दूसरी आत्मा में अपनी प्रतिछाया देखकर अपना समन्वय उसमें कर देने को मचल उठती है। मित्रता में अभिन्नता, विषमता में ममता, द्वैत में अद्वैत की भावना उत्पन्न होने लगती है। विवाह जिसकी कल्पना मात्र से दो हृदयों में एक विचित्र सा कम्पन, अजीब सी थिरकन और असीम पुलकन की अनुभूति हुआ करती है, यथार्थ धरा पर उतर कर स्वप्नलोक के गीतों को नहीं गाया करता—यदि उन्हीं गीतों में वह खोया रहे तो भी जीवन समरूप से नहीं चल सकता जैसा कि नन्द जयन्ती के वैवाहिक जीवन से स्पष्ट होता है। पुरुष चाहता है कि वह पति से प्रेम किये जाये—वह माँ बाप को भूलकर, जीवन के दुख सुख को विस्मृत कर केवल मात्र उसके आलिंगन-पाश में बंधी रहे—यह भूल है। विवाह समाज के अनुशासन से बद्ध होना चाहिए साथ ही पति पत्नि की प्रकृतियाँ भी उसके अनुसार ढल जानी चाहिएँ।

विवाह की समस्या नारी-जीवन की प्रमुख समस्या है—यदि उसे मनोनुकूल जीवन साथी मिल गया तब तो ठीक है अन्यथा अपना सर्वस्व दान करके भी वह उसे संतुष्ट करने में असमर्थ है। 'विवाह के महत्व को समझने में असफल नारी पुरुष के विलास की क्रीड़ा मात्र बन कर रह जाती है। उसका जीवन करुणा की एक लम्बी कहानी बन जाता है। कहीं वह मृत्यु की शरण लेती है तो कहीं मुक्ति-पथ का अव-लम्बन।

केवल आर्थिक परवशता ही नारी की प्रमुख समस्या नहीं है। मनोनुकूल आश्रय की खोज ही उसकी प्रमुख समस्या है। आश्रयहीन, एकाकी जीवन उसके व्यक्तिगत विकास की शृंखला में सामाजिक दृष्टि से एक बड़ा बंधन है। वह अकेली नहीं रह सकती—पुरुष की कामलोलुप दृष्टि उसको भक्षण करने को चारों ओर से दौड़ती रहती है।

और भी—वह भी जीवन के माधुर्य से वंचित रहना नहीं चाहती। किन्तु जिसे वह अपनाती है, जीवन भर के लिए उसकी हो जाना चाहती है। फिर उसका प्रताड़न, क्लेश भी वह सह लेती है। अक्षम्य कार्य करने पर भी उपेक्षित व्यवहार पाकर मुस्काते हुए अडिग धैर्य एवं संतोष के साथ जीवन में बढ़ते रहने की अनन्त शक्ति उसमें है। फिर क्यों मनोमुग्ध कर देने वाली चितवन, अर्धमूर्छित कर देने वाले स्वर और लोह पुरुष को भी जकड़ लेने वाले सुकोमल करों के होते हुए वह हेय जीवन बिताने पर विवश है? इस मर्मस्पर्शी समस्या पर भी लेखक ने विचार किया है। उसकी दृष्टि में नारी अबला है और जब तक वह अपनी शक्ति से अपरिचित रहती है तभी तक पुरुष के अत्याचारों की शिकार बनती है। एक बार अपनी शक्ति को पहचान लेने पर वह उसके मोह-बंधन को छिन्न-भिन्न कर अपने विचारों के अनुसार नव-पथ पर चल पड़ती है—या तो शान्ती की भाँति मुक्ति-मार्ग पर बढ़कर अपने साहस और दृढ़ता का परिचय देती है अथवा जयन्ती की तरह आत्मोत्सर्ग कर पुरुष मात्र को

एक शिक्षा दे जाती है कि नारी पर अत्याचार मत करो—उसके शरीर से खिलवाड़ की अपेक्षा उसके मन को पढ़ो।

नारी देखने में जितनी ससीम है, अनुभूति में उतनी ही असीम; वार्ता में जितनी नम्र है, मनोविश्लेषण करने पर उतनी ही जटिल, व्यवहार में जितनी कुशल वह दीख पड़ती है तर्क की कसौटी पर उतनी ही सूक्ष्म बुद्धिमती वह ठहरती है—ऐसा लोगों को बार बार प्रतीत होता है। सन्यासी का नायक समय-समय पर शान्ति और जयन्ती को समझने की चेष्टा करता है किन्तु वह उन्हें ऊपर से पढ़ना चाहता है, उनके अन्तस्तल में घुसना नहीं चाहता, तभी तो नारीत्व को समझने में असमर्थ रहा, उनके प्रेम को निबाहने में असफल रहा। नारी की कोमल भावनाओं को, सुकुमार मनोवृत्तियों को उपयुक्त समय में उपयुक्त स्थान पर सहृदय मन से और कोमल करों से स्पर्श करने की आवश्यकता होती है। उसके दुःख दैन्य में सहानुभूति, हास्य में आमोद-प्रमोद और गम्भीर चिन्तन के क्षणों में मनन पूर्वक सहयोग देकर ही उसके मन पर विजय पाई जा सकती है।

नारी के लिए भी पुरुषानुरूप अपने को ढाल लेने की आवश्यकता है, किन्तु नन्द सदृश्य पुरुष को पाकर नारी क्या करे? उसके अहवाद एवं स्वार्थ-मय स्वरूप की अनुभूति कर वह किस पथ पर चले? शान्ति और जयन्ती दोनों द्वारा अपनाये मार्ग अपने में एक शिक्षा लिये हैं।

नन्द के रूप में पुरुष के अहवाद, स्वार्थ और ईर्ष्यालु स्वभाव की समस्या मुँह बाये खड़ी है। नन्द की आत्मा इन दुर्गुणों के कारण अति पीड़ित है। वह एक स्थान पर अपने गत जीवन पर मनन करता हुआ विश्लेषणात्मक चित्रण करता है—"कोई प्रत्यक्ष कारण न होने हुए भी सब समय मेरे भीतर, जान में या अनजान में, एक आत्मनाशी अस्थिरता, एक तूफानी अशान्ति क्यों व्याप्त रहती है? जीवन का आनन्द, जिसके सम्बन्ध में मैंने पुस्तकों में बहुत पढ़ा है, मेरे आगे अपना क्षीण आभास तक क्यों प्रकट नहीं होने देता? इधर कुछ समय से सर्वत्र विषाद, सर्वत्र निराशा और विध्वंस का मडराना ही मुझे क्यों नजर आता है?" पृष्ठ ३५२—इस क्यों का उत्तर वह देता है—"यदि मेरे भीतर की दानवी शक्ति उचित मार्ग पर चलती, तो मैं या तो पुरातत्व अथवा इतिहास के क्षेत्र में क्रान्ति मचाता, या समाज-सुधारक अथवा देशोद्धारक बनाकर मान्य नेता के पद का प्रयासी होता। ऐसा होने से—मेरे भीतर के धुंए को और आग की ज्वाला को बाहर निकलने का रास्ता मिल जाने से—मेरे जीवन में स्थिरता आजाती। पर उस आग और धुंये के बद्ध रहने से मैं केवल अपनी अन्तरात्मा को जलाने और धुंधलके से ढकने में समर्थ हुआ; ज्वाला-कण मेरे भीतर ही बिखर कर रह गये। फल यह हुआ कि अब मेरी दग्ध आत्मा जहाँ-जहाँ भी अपना हाथ डालती है। वहीं विध्वंस की सम्भावना मुझे दिखाई देती।" पृष्ठ ३५३-५४.

नन्द का पतित जीवन उसकी दमित काम वासना का परिणाम है। उसमें

विद्यमान अहं उसकी समस्त ग्रंथियों का मूल है। उसमें अहं का परिष्कृत रूप विद्यमान नहीं है अपितु विकृत आकार घर जमाये है, जो उसे घोर स्वार्थी, प्रमादी, संदेहशील एवं ईर्ष्यालु बना देते हैं। वह स्वयं मानता है कि वह एक निकम्मा, असंसारिक, अव्यवहारिक, असामाजिक एवं असाधारण व्यक्ति है।

ऐसे व्यक्ति के व्यक्तित्व का उद्घाटन एवं विश्लेषण समाज के लिए एक चेतावनी है। यह वह चेतावनी है जो उसे जयन्ती द्वारा दी गई है—

"आपमें अभिमान तो है ही, पर अहंवाद भी हद दर्जे तक है—इस अहंवाद की तृप्ति के लिए आप चाहते हैं कि जिस स्त्री से आपका सम्बन्ध हो वह पूर्ण रूप से आपकी होकर रहे, उसका कुछ भी स्वतन्त्र रूप से अपना कहने को न रहे; उसका मन, उसकी प्रत्येक वासना, प्रत्येक कामना आपकी इच्छा की बलि हो जाये; उसके भीतर छिपी हुई कोई गुप्त-से-गुप्त प्रवृत्ति उसकी अपनी होकर न रहे; वह सब कुछ बिना किसी असमंजस के आपके पैरों तले समर्पित कर दे।" पृष्ठ ३८१ और भी—"आपका अहंभाव हद दर्जे तक आगे बढ़ा हुआ है। यह एक दोष आप में ऐसा जबर्दस्त है, जो कभी-कभी आपके सब गुणों को ढक देता है। केवल यही नहीं; इसके कारण आपके जीवन में अकसर अशान्ति और बेचैनी छायी रहती होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।" पृष्ठ ३८०.

पुरुष में स्थित अहं और उसके स्वार्थ को समझना और उसे परिष्कृत करना एक कठिन समस्या है। किन्तु शान्ति और जयन्ती दोनों ने ही इस समस्या को समझ लिया है, पहचान लिया है और इसका विधान भी दिया है। अपने कुल, मान, सांसारिक स्थिति और भविष्य का बलिदान कर सर्वस्व पुरुष के अहंवाद की तुष्टि-हित समर्पित कर देने वाली शान्ति उसकी स्वार्थी, ईर्ष्यालु संदेहशील मनोवृत्ति को एकदम बदल देती है, किन्तु एक महान् उत्सर्ग करके—वह है अपनी मनोभावनाओं की वासना, प्रेम और जीवन के सरल माधुर्य से ऊपर उठा कर मुक्त मार्ग का आश्रय लेना। जयन्ती का बलिदान और शान्ति का त्याग एक रंग लाता है। नन्द का अहंवादी पुरुष घायल हो जाता है, वह जीवन का सर्वस्व त्याग संन्यासी बन बैठता है। देश में स्वतन्त्रता की एक लहर ला देना चाहता है—उसीके लिए एक जोशीली वक्तृता देकर जेल भी हो जाता है।

लेखक ने इस उपन्यास में जीवन की प्रमुख शाश्वत समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया है। उसने प्रेम को सरस भौतिक क्रीड़ा से ऊपर उठाकर मानसिक स्तर पर ला बैठने की शिक्षा दी है। विवाह को संयत रूप से सन्तुलित दृष्टिकोण अपना कर अपनाने की बात बताई है। नारी के नारीत्व को पहचानने की प्रेरणा दी है। पुरुष को अहं के परिष्कृत रूप को अपनाने एवं स्वार्थ से ऊपर उठाने की बात कही है। जीवन को विषमता के द्वन्द्व से बाहर निकाल कर सम, सन्तुलित, सुखी और शान्तिमय बनाने के साधन जुटाये हैं।

प्रेत और छाया

व्यक्ति की वैयक्तिक कुण्ठाओं और अन्तर्जीवन की विषम पीड़ाओं का चित्रण हमें प्रेत और छाया में मिलता है। ज्ञात के साथ-साथ अज्ञात चेतना भी महत्वपूर्ण है—इस मत का समर्थन बड़े ही जोरदार शब्दों में लेखक ने भूमिका में किया है :—

"आधुनिक मनोविज्ञान ने अत्यन्त परिपुष्ट प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया है कि मानव मन के भीतर की अतल गहराई में एक ऐसा गहन रहस्यमय, अपार और अपरिमित जगत् वर्तमान है जिसकी अपनी एक निजी स्वतन्त्र सत्ता है।" यह जगत वास्तव में मनुष्य के मन के भीतर का जगत् है और बाह्य जगत् से अत्यन्त जोरदार है—इसमें विराजमान प्रवृत्तियां समय-असमय नाचा-कूदा करती हैं और मानव के बाह्य जीवन को परिचालित करती रहती हैं—यह तो मनोवैज्ञानिक सिद्ध तथ्य है कि जब कोई घटना अथवा बात हमारे अन्तर्मन की अतल गहराई में घुस जाती है, तब वह नाना प्रकार से हमारे मनोभावों को आन्दोलित किया करती है और मस्तिष्क पर भी एक गहरी छाप छोड़ जाती है जिसके फलस्वरूप हमारे सोचने, चलने-फिरने और कार्य करने की एक विशेष प्रणाली बन जाती है और उसी प्रणाली को हम सत्य एवं श्रेष्ठ समझते हैं फिर चाहे उसका सामाजिक मर्यादा अथवा वांछित आचरण से मेल हो या न हो।

मनोविज्ञान के इस तथ्य पर आधारित 'प्रेत और छाया' का विशाल कथानक खड़ा है। उपन्यास के युवक नायक पारसनाथ के अज्ञात मन में यह बात पैठ गई है कि उसकी मां कुलटा थी—यह बात उसके पिता ने कथा के आरम्भ में उससे कही, और इस ढंग से कही कि सीधे उसके अवचेतन मन में घुस गई—इससे उसकी मानसिक दशा विकृत हो उठी; मस्तिष्क भन्ना उठा। काफी देर तक तो उसका स्वच्छ, स्वस्थ मन इस रहस्य को स्वीकार करने से इन्कार करता रहा—वह सोचता रहा, किन्तु ज्यों-ज्यों उस गिद्ध तुल्य पिता का रूप उसके स्मृति-पट पर सौ-सौ रूप धारण कर सामने आता, वह रह-रह कर यह मानने पर विवश होता—निश्चय ही यही बात है—यह नराधम घृणित दानव,कदापि-कदापि किसी भी अवस्था में मेरा पिता नहीं हो सकता। मेरा इसका क्या साम्य ? न रूप में न रंग में, न भाव में न विचार में। किसी भी रूप में उसे पिता रूप में स्वीकार करने के लिए जब उसका मस्तिष्क तैयार न हुआ

तब माता ने पराया गेह सेया और उसके अवचेतन मन में एक गाँठ पड़ गई। फ्रायड के मतानुसार —जो इडिपस ग्रंथि है, जो नितान्त बालक का उसके माता-पिता से संघर्ष कराती है—ने जन्म ले लिया। पारसनाथ अपने पिता को 'तिब्बती दानव' के रूप में देखता है और उससे भयभीत होकर भाग जाता है। उसका हृदय प्रतिहिंसा एवं प्रतिशोध की भावना से ओतः प्रोत हो उठता है। उसकी दमित वासना नाना रूप धारण कर नृत्य करने को मचल उठती है।

पारसनाथ का कुण्ठित व्यक्तित्व बाह्य परिस्थितियों और सामाजिक विषमताओं से लड़कर, उन पर विजय प्राप्त करके व्यक्तिगत और सामूहिक प्रगति लाने के स्थान पर अपनी ही दमित प्रवृत्तियों और ग्रन्थियों में उलझ कर रह जाता है। उसकी समस्त शक्ति रचनात्मक कार्यों में व्यय न होकर विध्वंसात्मक कृत्यों में लग जाती है। वह न केवल समाज के लिए अपितु अपने लिए भी एक अभिशाप बन जाता है। भिन्न-भिन्न व्यक्ति के सम्पर्क में वह आता है, पहिले तो उसे अपने कृत्रिम व्यक्तित्व से प्रभावित करता है, फिर शनैः-शनैः अपना यथार्थ रूप उसे दिखाकर उसके भविष्य को अन्धकारमय स्थिति में छोड़कर स्वयं आगे बढ़ जाता है—कोई नया जाल फैलाने के लिए तथा नये शिकार को फँसा कर अपनी प्रतिहिंसा की मनोभावना को शांत करने के लिए—

दार्जिलिंग में कौथी से परिचय प्राप्त किया—धीरे-धीरे यह परिचय घनिष्ठता में और घनिष्ठता प्रेम में परिणत हुई और जब प्रेम का परिणाम सामने आने के लक्षण दीख पड़े तब वह ऐसे भागा जैसे गधे के सिर से सींग। ज्यों ही उसका गठ-बंधन किसी भोली, विश्वास परायण, अनुभवहीन, एकाकिनी युवती से होने लगता है त्यों ही उसका सुसुप्त दानव उसके अतल से भयंकर हुंकार मार कर उसे वहाँ से भगा देता है। इसी प्रकार कलकत्ते में वह प्रायः तीन वर्ष तक अव्यवस्थित जीवन बिताता रहा। कभी किसी स्कूल में मास्टरी की तो कभी प्राइवेट ट्यूशन, कभी किसी दुकान में सेल्समेनशिप, तो कभी चित्रकारी—यूँही जीवन-चक्र में घूमता हुआ वह युक्त-प्रांत के एक विख्यात शहर के कुख्यात होटल में पहुँच जाता है—

यहाँ पहुँचने पर कथानक में शृंखला-तत्व आने लगता है किन्तु कथा शृंखला-बद्ध नहीं हो पाती। कारण, नायक का अनियमित, अव्यवस्थित ऊबड़-खाबड़तापूर्ण जीवन है। वह जीवन में एकरसता लाना नहीं चाहता। तब कथा में एक सूत्रता कैसे संभव है? कथानक का नायक के जीवनगत अनुभवों, स्मृतियों और उतार-चढ़ाव के साथ-साथ उदय-अस्त होता है।

समस्त स्त्री-जाति पारसनाथ के लिए ऐन्द्रिय सुख देने वाली मशीन से अधिक महत्व नहीं रखती—वह समय-असमय उसमें अपनी व्यभिचारिणी माता की प्रतिछाया देखता है—अपने घृणित एवं तिरस्कृत जीवन का सारा दायित्व वह स्त्री-जाति के

सिर मढ़ देता है और सभी प्रकार के सामाजिक बंधनों को अस्वीकार कर सामाजिक मर्यादा एवं अनुशासन के विरुद्ध विद्रोह का बिगुल बजा देता है। नारी के नारीत्व से गिरवाह ही उसकी एक मात्र दिनचर्या है।

मंजरी गहरा मनोवैज्ञानिक, अन्य भाग विदुषी को वह यथार्थता को पूर्ण रूप में स्वीकार करने का परामर्श देता है। उसे उस पथ पर ले भी आता है। इतना ही नहीं—उसके अचेतन मन की अपरिचित आकांक्षाएँ हैं—वह केवल कुमारियों के कौमार्य से ही तृप्त नहीं होता, अपितु विवाहिता के सतीत्व को भी रौंद देना चाहता है। तभी तो उसके मन में नन्दिनी को सामाजिक शृंखला की सीमा रेखा से बाहर निकालने की इच्छा जाग्रत होती है और इसके लिए परोक्ष रूप से नन्दिनी के पति मुंशीजी जी का समर्थन भी उसे प्राप्त हो गया।

मंजरी और नन्दिनी प्रेम के दो कूल हैं और दोनों तक ही वह पहुँचना चाहता है किन्तु फिर भी उसकी प्रेम-नौका डगमगाती रहती है। एक ओर मंजरी का सरल किन्तु स्वच्छ एवं स्वस्थ प्रेम तो दूसरी ओर नन्दिनी की चचल, अमर्यादित एवं उच्छृंखल वासनामयी हरकतें पूरे जोर-शोर के साथ उसे अपनी ओर खींचती हैं। उसकी दशा विचित्र बन जाती है। यही कथानक में पूर्ण रोचकता जगमगा उठती है। इधर पारसनाथ की पार्थिव भूख उसे सताती रहती है। मंजरी के घर नित प्रतिदिन जाकर भी वह उसके स्नेह को पा सका है, देह को नहीं—देह का भूखा दानव जब एक दिन संयोग पाता है—तब ?

तब एक कल्पित प्रेत अपनी विकृत एवं भयावनी छाया से उसके मन एवं मस्तिष्क को जकड़ लेता है—यह प्रेत और कोई नहीं, मंजरी की माँ का मृतक शरीर और बाद में उसकी मूर्ति की कल्पना है जो समय-असमय आ-आकर पारसनाथ को भय, भ्रान्ति एवं विचित्र गुदगुदी से वशीभूत करती रहती है। उसे पाप-कर्म करने से रोकती है—वह स्वयं मनन करता है

"केवल एक ऐसी नारी का सूखे काठ के समान निस्पन्द, निष्प्राण शव, जो जीवित अवस्था में भी मृतक के समान थी। वह मुट्ठी मिट्टी से भी अधिक जड़ और निर्जीव शव आकाश-पाताल व्यापी इतने बड़े सुयोग के बीच में इतना भीषण व्यवधान, ऐसी दुर्लंघ्य दीवार खड़ी करने में समर्थ हो सकती है। यह कैसा अलौकिक आश्चर्य है।" पृष्ठ १२६—

इसे सारे कथानक में इस प्रकार के विश्लेषणात्मक, गद्यांश स्थान-स्थान पर मिलते हैं, जो कहीं-कहीं कथा के स्वाभाविक विकास की गति में अवरोध प्रस्तुत करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक कुछ मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रचार कर रहा है और उस प्रचार के प्रवाह में इतनी तेजी से बह जाता है कि उसे स्मरण ही नहीं

रहता कि वह अस्वाभाविक बातें लिख गया है। एक दिन जब वह एकान्त में मंजरी के साथ प्रेम-वार्ता में निमग्न होता है और उसी भावमग्न अवस्था में उसे छाती से जकड़े था तभी वह वार्ता बन्द कर अनुभूति छोड़ एक विशेष मानसिक अवस्था में खो जाता है।

"उसे स्पष्ट दिखाई दिया कि उस अधेड़ और अंधी स्त्री की विकट और लोम-हर्षक प्रेतछाया, आतंक उत्पन्न करने वाली, बीभत्स और कुटिल व्यंग्यपूर्ण मुस्कान मुख पर झलकाकर उन दोनों के बीच में आकर खड़ी हो गई। मंजरी ने आज उसकी जिस प्रचंड ईर्ष्यापरायणता का वर्णन किया था वह भी इस गतिशील और भयावनी छायामूर्ति की मुखमुद्रा में जैसे प्रतिहिंसा के रंग में रंगी हुई, स्पष्ट उभरी हुई दिखाई देती थी। मंजरी की माँ की मृत्यु की जिस काल-रात्रि में उसके मुख का जो प्रेत-रूप उसने देखा था और जिसे देखकर वह एक अज्ञात, रहस्यमय भय से सिहर उठा था, आज की छायामूर्ति का रूप उससे कई गुना अधिक बीभत्स और भयंकर उसे लगा।" पृष्ठ २८२.

लेखक के इन शब्दों द्वारा यह मत प्रतिपादित होता है कि पारसनाथ की यह विशेष मानसिक अवस्था उसके मंजरी की माँ के मृत्यु वाले दिन देखे गये रोमांचकारी दृश्य के कारण हुई जो उसके अवचेतन मन में बैठ गया। यह दृश्य उसे जीवन भर भागने और भीत रखता है। यह केवल एक सिद्धान्त का प्रचार मात्र है। अन्यथा इस प्रकार की मानसिक अवस्था का एक दूसरा कारण भी दिखाया जा सकता था, जो पूर्णतया संगत एवं अधिक स्वाभाविक भी होता। वह कारण है पारसनाथ के मन का चोर। पारसनाथ प्रतिपल मंजरी की देह से खिलवाड़ करना चाहता है—वह उसकी देह का भूखा है, स्नेह का नहीं। मंजरी पूर्ण पवित्र है, उसका [illegible] है—उधर पारसनाथ के विचार में उसकी देह अभी अपवित्र है—वह भावुक है। ज्यों ही उसके काम कर निष्कलंक देह पर बलात्कार हेतु उठते हैं त्यों ही उसका मन, विशेषकर अवचेतन मन उसे ऐसा करने से रोकता है और जब रोकता है तो उसके लिए कोई-न-कोई भयकारी दृश्य उसके कल्पना पट पर ला देता है। यह भय चेतन से अवचेतन की ओर है, न कि अवचेतन से चेतन की ओर। चेतन से अवचेतन की ओर होने के कारण ही पारसनाथ शीघ्र ही मंजरी को भोगकर एवं आत्मग्लानि [illegible] का [illegible] न देकर [illegible] अवस्था में खो जाता है।

द्वंद्व और दमन की कथा में उपन्यासकार ने चेतन और अवचेतन [illegible] कुण्ठाकारी [illegible] दिखाता है। उसका चेतन मन बार-बार उसे जीवन के [illegible] [illegible] को [illegible] की इच्छा [illegible] है, [illegible] [illegible] होता है और [illegible] [illegible] मूल का [illegible] जाता है। अब [illegible] उसका भी [illegible]

शुद्ध रूप की दीप्ति से प्रकाशित हो, उसे सदैव के लिए अपनाने को व्यग्र होता है, तभी उसका अचेतन मन उसे अनजान ही घसीट कर नन्दिनी के द्वार पर ला पटकता है—देखिए :—

"उस गली के भीतर कुछ आगे जाने पर उसे सहसा यह चेत हुआ कि वह अपने अनजान में नंदिनी के मकान की गली के एक दम निकट आ पहुँचा है। वह ठिठक कर खड़ा हो गया। वह इरादा करके तो वहाँ नहीं आया था। यह कैसे संभव हुआ ? निश्चय ही उसका अवचेतन मन उसके अज्ञात में किसी रहस्यमय उद्देश्य की प्रेरणा से जान-बूझ कर उसे वहाँ घसीट लाया।[1]

पारसनाथ नंदिनी प्रणय भी प्रवंचना सिद्ध होता है। उसे अपनी पाशविक भूख का शिकार बना कर वह फूला नहीं समाता—एक विवाहिता का सतीत्व खंडित कर समझता है उसने दिग्विजय प्राप्त की है, किन्तु जब उसे यह ज्ञात हुआ कि नंदिनी वेश्या है तो उसके पाँवों तले से धरती खिसक गई। कथानक में यह दृश्य जोड़ कर लेखक ने अपनी अपूर्व कल्पना-शक्ति का परिचय दिया है। किन्तु साथ ही इसकी व्याख्या हित पारसनाथ की लम्बी-चौड़ी मानसिक स्थिति का चित्रण कर वह पुनः सुसंगठित कथानक के विशेष गुण पर कुठाराघात कर गया है। पारसनाथ इस घटना को भी अपनी चिर परिचित प्रेतात्मा की असाधारण प्रतिशोध लीला की उपाधि देता है।

मुख्य कथानक का अन्तिम सोपान पारस हीरा संबंध भी अपना सानी नहीं रखता। अपनी बहन (नंदिनी) के प्रणय पर हाथ डालते भी हीरा न सकुचाई—यह उसकी वेश्या-वृत्ति का प्रतीक है; तथा पारसनाथ ने जो अपनी प्रियतमा की बहिन पर हाथ साफ किया यह उसके प्रतिशोध का अंतिम आघात है।

· उपसंहार के रूप में पिता-पुत्र मिलन; मन-मुटाव की समाप्ति और स्वच्छ एवं स्वस्थ मानसिक चित्र को प्रस्तुत कर लेखक ने भारतीय परम्परा का अवलम्बन लिया है। न केवल पारस हीरा को अपना लेता है अपितु मंजरी से क्षमा-दान पा जीवन भर के लिए निर्मल हो जाता है। अपना समस्त धन हस्ताल की भेंट करने में उसने सर्वोदय-वादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। अवसान-समय कथानक की सब गुत्थियाँ सुलझ चुकी होती हैं।

यौन-संबंधी समस्याओं से परिपूर्ण कथानक लेने पर भी जोशी जी कहीं भी कथा में नग्नता की गन्ध तक नहीं आने देते। यह इनकी विशेषता है, कथा में कांची, मंजरी, नंदिनी आदि ने नायक के प्रति पूर्ण समर्पण किया है। फिर भी उस समर्पण में मर्यादा को भग्न करने वाला वर्णन कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। इसका यह अर्थ भी

१. प्रेत और छाया पृष्ठ २३८

नहीं है कि उनके कथानक में रोमांचकारी वातावरण (Romantic atmosphere) का अभाव है। प्रेम से भरे प्रसंग तो यत्र-तत्र सर्वत्र ही मिलते हैं। कथा में कहीं मंजरी नायक की छाती से सट कर बैठी है तो कहीं उसके घुंघराले बालों में प्रेम पुलकित उंगलियां घुमाती स्नेह-सिक्त वार्ता करती है। नन्दिनी प्रति पल पारसनाथ का मुसकराता मुख देखना चाहती है और उसमें अपनी मधु भरी मुसकान घोल देना चाहती है। उसके एक-एक वाक्य में प्रेम की मीठी चुटकियाँ ली गई हैं देखिए :

"कहिए प्रेत महाशय, क्या हाल हैं ? आप खड़े क्यों हैं, विराजते क्यों नहीं।"

.... "आप तो बेतरह घबराये हुए हैं ! क्या हो गया ? बैठते क्यों नहीं।"[1]

इसमें एक ओर मुग्धा नायिका को प्रगल्भा की क्रीड़ाएं खेलते दिखाया गया है तो दूसरी ओर प्रगल्भा को मुग्धा का ढोंग रचते चित्रित किया गया है। नायिका को कहीं दुर्गा-सी दृढ़ दिखाया गया है तो कहीं झटपट आँसू बहाते वर्णित किया है। नायक एक ओर उपेक्षनीय बर्ताव करता है तो दूसरी ओर दूसरे ही क्षण नीचे झुक कर नन्दिनी के पाँव तक पकड़ लेती है।

जीवन की कुछ अन्यतम घटनाओं का संयोजन भी कथाकार ने इस उपन्यास में किया है। गर्भ की पीड़ा से कराहती मंजरी को छोड़कर नंदिनी के द्वार चक्कर लगाना और मौज उड़ाना—यहां पहुंच कर तो लेखक कामायनी की कथा को भी (Surpass) मात कर गया है। मनु ने तो श्रद्धा को पूर्णतया न ठुकराया था, किन्तु पारसनाथ तो मंजरी की सुध-बुध ही नहीं लेती।

हीरा का सर्वस्व लूट (१५००० रुपये लेकर दौड़ना), भागते हुए अपने पिता के मुनीम द्वारा पकड़े जाने में जासूसी उपन्यासों के कथानक की कुछ गन्ध आ जाती है। पिता द्वारा पारसनाथ की माता के सतीत्व का वर्णन उद्देश्यपूर्ण है। इसके द्वारा विकृत मानसिक ग्रन्थि को धोया गया है और स्वच्छ, स्वस्थ और सुखमय वातावरण की सृष्टि की गई है।

पारसनाथ :

प्रेत और छाया का नायक पारसनाथ एम० ए० तक शिक्षा पाने पर भी कुछ गंभीर ज्ञान का तिरस्कार कर, कुछ कुण्ठाओं में ग्रस्त होकर हमारे सामने आता है। धन से दीन, भावों से हीन और कृत्यों से गन्दा यह क्यों बना ? इसके कारण हैं परिवार, समाज और संसार—परिवार (पिता) द्वारा अभिशप्त; समाज (शिष्ट समुदाय) द्वारा बहिष्कृत और संसार (अन्य जन) द्वारा तिरस्कृत यह युवक क्षणिक आवेश में बह जाता है, भावुकता में खो जाता है।

---

१ प्रेत और छाया पृष्ठ ३०५

मंजरी के सम्पर्क में आने पर होटल में उसके भावुकतापूर्ण व्यवहार पर विश्लेषणात्मक मनन करते हुए लेखक कहता है—"पारसनाथ को अपनी भावुकता पर स्वयं आश्चर्य हो रहा था। नशे का अनुभव वह इसके पहले कई बार कर चुका था, पर नशा चाहे कैसा ही गहरा क्यों न हुआ हो, इस प्रकार की भावप्रवणता उसमें इसके पहले कभी किसी भी हालत में नहीं आई थी। जीवन के प्रति बराबर एक व्यंग्यपूर्ण हिंसात्मक दृष्टिकोण उसका रहा था, और हर प्रकार की भावुकता को वह ओछे, छिछले और हीन प्रकृति के व्यक्तियों की विशेषता समझता था। तिस पर किसी स्त्री के आगे आवेश में आना तो उसकी दृष्टि में हीनता की चरम सीमा थी। इसलिए आज का अनुभव उसके लिए एकदम नया था।"[1]

नित नवीन अनुभव और चारित्रिक परिवर्तन यही तो जीवन-लीला है फिर पारसनाथ ही इससे वंचित क्यों रहे—मन्द मधुर मुस्कान, सहृदय मन, दृढ़ तन, प्रथम साक्षात्कार में उसके शिष्ट एवं शालीन व्यक्तित्व के परिचायक हैं, किन्तु बाह्य आवरण और भीतरी मन में एक विशेष अन्तर है जो पहली बार क्या कभी-कभी वर्षों स्पष्ट नहीं होता—यही वह अन्तर है जिसके लिए पारसनाथ स्वच्छन्द घूमता है, उन्मुक्त प्रेम का ढोंग रचता फिरता है। उसके मन के नीचे अवचेतन में एक नहीं अनेक काले नाग बैठे हैं जिनकी फुंकार से बचना दुर्लभ ही नहीं असंभव है।

प्रेमी का चोला वह पहनता है किन्तु प्रेम के विषय में उसकी अपनी विशिष्ट धारणाएँ हैं। प्रेम का संबंध उसके मतानुसार मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर महत्वपूर्ण नहीं है, अपितु दो शरीरों तक सीमित है। उसमें स्नेह का नहीं, देह का स्थान प्रमुख है। वह प्रेम के क्षेत्र में पुरुष-वर्ग के अधिकारों को मान्यता देता है उसके ऊपर सारे दायित्वों से छूट मांगता है। दायित्व की कल्पना से कोसों दूर भाग जाता है। विवाह के नाम से घबराता है। काकी द्वारा विवाह का प्रस्ताव होते ही बोरिया बंधना उठा कर चम्पत होता है। कुमारियों के कौमार्यत्व से खिलवाड़ उसकी दिनचर्या बन चुकी है। इसे हम प्रेम कदापि नहीं कह सकते। यह तो विकृत मन की वह विनाशकारी प्रवृत्ति है जो वासना के नाम से प्रसिद्ध है। पारसनाथ की यह प्रवृत्ति केवल कुमारियों को ही अपना शिकार नहीं बनाती अपितु उसे तो विवाहित प्रौढ़ाओं से खेल कर आनन्द आता है। नन्दिनी के कटाक्ष, व्यंग्य और मुस्कान उसके मन को सौ-सौ हिचकोले देते हैं। कभी खीज और ग्लानि से भर देते हैं, तो कभी एक अजीब सी गुदगुदी सी उसके मन में उत्पन्न कर देते हैं।

शंकित, कंपित और पुलकित हृदय से एक ओर वह मंजरी से वार्ता करता है तो उत्साहित तथा रोमांचित होकर नन्दिनी की ओर प्रेम-डोर बढ़ा देता है। होटल

---

१. प्रेत छाया पृष्ठ ५०

में बैठ कर घंटों नव परिचित पग ध्वनि की प्रतीक्षा करता है। उधर नंदिनी को चिर-परिचित समझ घनिष्ठता बढ़ा लेता है। मंजरी और नंदिनी दोनों में ही उसे अमंद, मधुर, स्वर्गीय माधुर्य का स्रोत बहता दीखता है। जिसे वह पीता नहीं छकता। उनकी कल्पना मात्र से ही वर्णातीत रोमांच की अनुभूति बिजली सी उसके मन-मन्दिर में कौंध जाती है और फिर साक्षात्कार पर तो...... उनका साक्षात्कार उसे पूर्णतया द्रवित कर देता है। वह दौड़-दौड़ कर उनके लिए पूड़ियाँ लाता है; उनके तनिक सा रूठ जाने पर उनके पाँव तक पकड़ लेता है।

पारसनाथ की कल्पनाएँ भी विचित्र हैं। एक बार वह इच्छा करने लगा कि सारी नारी-जाति एक विराट अग्नि-सागर में डूब कर विनष्ट हो जाये और उसका अस्तित्व कहीं किसी भी रूप में न रहे।

पारसनाथ घोर व्यक्तिवादी नायक है। अपने स्वार्थ में लीन है; अपने अहं में डूबा है। अपने हित तक ही सोचता और करता है। समाज के प्रति विद्रोहपूर्ण विचार रखता है। उसे वह फूँक मार कर उड़ा देना चाहता है। उसके द्वारा पग-पग पर तिरस्कार पाकर उससे प्रतिशोध लेना चाहता है और लेता भी है किन्तु यह प्रतिशोध वह समाज के कोमल अंग (नारी-वर्ग) से लेता है। उसे ही वह अपनी क्रोधाग्नि की सामग्री बनाता है। नारी मात्र का सौंदर्य, यौवन और जीवन उसके व्यक्तिवादी दर्प के शिकार हैं जिन्हें वह जी भर कर रौंदता है, घसीटता है और घसीट कर छोड़ भागता है।

नैतिक बल नाम की कोई वस्तु उसमें नहीं है। वह स्वयं को नारकीय कीड़ा समझता है। पाप पंक से उभरने की उसकी इच्छा भी नहीं है। अमृत उसके लिये मृत्यु का संदेशवाहक है। मंजरी से विश्वासघात करते उसे तनिक भी खेद नहीं— बात-बात पर झूठ, कपट और आडम्बर—इन्हीं के द्वारा वह नारी को जीतता है और जीत कर जीत बनाये रखने के लिए बार-बार इन्हें अपनाता है! किन्तु सच्चा सुख, संतोष और सांत्वना उसे नहीं मिलती।

इसका असाधारण व्यक्तित्व इसके जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। इसकी अन्तश्चेतना इसे समय-असमय दुत्कारती है। उसे सद्मार्ग अपनाने की प्रेरणा भी देती है—किन्तु उसकी आवाज को वह सुनी-अनसुनी करके जीवन भर अशांतिपूर्ण जीवन बिताता है। अपनी हीन और कुत्सित मनोवृत्तियों से भली भाँति परिचित होकर भी, उन्हें अपने असंतोष का मूल कारण पहचानने पर भी उनसे चिपके रहने में ही इसकी असाधारणता सिद्ध होती है। एक दिन प्रतिज्ञा करता है कि फिर नंदिनी के घर न जाऊँगा, मंजरी का मन न दुखाऊँगा, किन्तु अगले ही दिन विकृत लिप्सा द्वारा वशीभूत होकर नंदिनी के द्वार पर पहुँच जाता।

अत्याचारी होते हुए भी पारसनाथ में पुरुषोचित सौन्दर्य, पौरुष और दृढ़ता का प्रसार है। वह कई स्थलों पर कोमलता का परिचय देता है। मंजरी और नंदिनी के पैर तक पकड़ लेता है, उनसे क्षमा मांगने लगता है। बहुत विरोधी के पश्चात् ही कई बार उसे क्षमा पाता है। कारण उसकी आत्मा पतित है। महान आत्माएँ ही गौरवमयी हुआ करती है। उस नारकीय कीटाणु में वह वैभव कहाँ जो जोशी जी के अन्य उपन्यासों के कतिपय प्रमुखगामी पात्रों में है।[1] मंजरी के विचार में वह बड़ा अभिमानी है।

पारसनाथ कई बार अपने को प्रेत और प्रेमिकाओं को छाया कह कर पुकारता है। घृणित कृत्य करने के कारण, देखने और सुनने के कारण भूत और प्रेतों ने उसके अवचेतन मन को बुरी तरह घेर लिया है, जिससे उसका त्राण केवल मात्र मानसिक अवस्था के समन्तर पर आने से ही होता है और तब तो वह सोने से कुन्दन बन जाता है। यह भी चारित्रिक अस्वाभाविकता है—कहाँ वह दानव पारस और कहाँ दानी पारसनाथ।

नंदिनी

वेश्या होने पर भी हम नंदिनी के रूप में एक विशुद्ध नारी को पाते हैं। वह जीवन भर संतप्त रही। एक विशुद्ध जीवन संगी पाने के लिए तड़पती रही। पति के रूप में उसे एक अर्थ पिशाच, नर लोलुप मिला जो धन के लिए उसे बेच सकता था।

---

१. प्रेत और छाया पृष्ठ ३०३

जीवन के कटु अनुभव प्राप्त कर वह पुरुष मात्र से घृणा करने लगती है। नारी की स्वतन्त्रता का बिगुल बजा देती है। वह नारी पर शासन तो चाहती है, किंतु ऐसे पुरुष का शासन चाहती है जो पूरी तरह से उसके मनोनुकूल हो।

उसकी चितवन में एक मोहक आकर्षण है, वाणी में निराला निमन्त्रण है। वह पुतली की भांति थिरकती है, मेघ की भांति कड़कती है और बिजली की तरह दमकती है। अदम्य साहस उसमें कूट-कूट कर भरा है। इसका प्रमाण वह जगह-जगह देती है। जब उसका पिशाच पति भुजौरिया उसे पारसनाथ के साथ मौज उड़ाते देख कर घर लाकर दोनों का अपमान करता है और कहता है, 'यह स्त्री नहीं, यक्षिणी है ?'[1] तो वह उत्तर देती है :—

"और तुम पुरुष नहीं, नपुंसक हो। इस बात की गवाह हूँ मैं, गवाह है तुम्हारी नौकरानी, जो तुम्हारे पुरुषत्व के लिए नहीं (यह अच्छी तरह जानती है कि तुममें कितनी मर्दानगी है), बल्कि तुम्हारे पैसे के लिए तुम्हें चाहती है।"[2]

वह अपने ही मुख से अपने पापी पति के नारकीय कृत्यों का कच्चा चिट्ठा खोल देती है और सहर्ष पारसनाथ से मिलती रहती है, किन्तु उसे भगा कर भी सन्तुष्ट नहीं हो पाती। उसका मन जीवन भर वेश्या-वृत्ति के विरुद्ध लड़ता रहता है किन्तु ऐसा एक भी पुरुष नहीं मिलता जो उसके इस पावन भाव का महत्व समझ सके। पारसनाथ तक उसे पवित्र समझ उसके सतीत्व से खिलवाड़ की दृष्टि से उसे भगाता है और यह जान कर कि वह वेश्या रही है उसके प्रति उदासीन हो जाता है, जिसका एक विकृत प्रभाव उसके कोमल मन पर पड़ता है। वह पुरुष मात्र से घृणा करने लगती है। उसे वासना का कीड़ा समझने लगती है। उसके दृष्टिकोण का यह अन्तर उसके चारित्रिक उतार-चढ़ाव की कहानी है।

भुजौरिया—यह नंदिनी का पति है। मुक्ति-पथ के नायक विजय की भांति एक अर्थ पिशाच है। धन ही उसके लिए सर्वस्व है। धन लेकर वह अपनी पत्नी तक को बेच सकता है। पारसनाथ द्वारा आर्थिक प्रलोभन के कारण ही उसे नंदिनी से मिलने की छूट देता है—उसकी निर्धनता को जानकर उसकी हत्या तक कर देना चाहता है। साहस धैर्य और पुरुषत्व नाम का कोई गुण उसके चरित्र में नहीं है।

प्रेत और छाया और काम-तत्व

हम देखते हैं कि संसार में व्यक्ति की उत्पत्ति के मूल में काम-भावना की प्रधानता होती है। उसके स्वस्थ विकास का आधार भी सन्तुलित काम तत्व ही है, फिर भी इसका अध्ययन, पठन-पाठन समाज में हीनता की दृष्टि से देखा जाता है।

१-२. प्रेत और छाया पृष्ठ २३६.

युवकों और युवतियों, दोनों में ही काम चेष्टाएँ अनैतिक और वर्जित मानी जाती हैं। स्त्री-पुरुष का पारस्परिक आकर्षण संदेह पूर्ण दृष्टि से देखा जाता है। काम-भाव को प्रजनन क्रिया का मूल उद्गम मान कर सीमित दायरे में आबद्ध कर दिया जाता है। परन्तु आधुनिक विज्ञान और विशेषकर मनोविज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि इसका क्षेत्र अधिक व्यापक है।

इस विराट जगती का मूल मन है, यही ग्रह का मूल निवास स्थान है। मन की शक्ति कामना है और काम ही तो कामना है, यह सृष्टि का बीज है और सर्वत्र फैला हुआ है। अर्धेन नारी, अर्धेन पुरुष : स्त्री और पुरुष के रूप में स्वयं सृष्टिकर्ता द्विधाविभक्त है। यही दिव्य गुणों से मिश्रित होकर प्रेम में परिणत हो जाता है। एकाकी काम प्रधान प्राणी स्वार्थी, उच्छृंखल तथा पतनोन्मुखी होता है और सरल प्रेम से पगा व्यक्ति त्यागी, उत्साही, सुशील तथा विकासोन्मुखी होता है। प्रेम और काम में एक और अन्तर है। प्रेम की भावना में संयम का प्रकाश होता है तथा वासना तम अन्धेरे गह्वर में गिराने वाला होता है। प्रेम में उत्सर्ग-ही-उत्सर्ग और काम में भोग-ही-भोग है।

तारुण्य के पदार्पण करते ही सशक्त, नूतन और कभी-कभी परम भयदायक काम प्रवृत्ति अनधिकार प्रवेश कर लिया करती है। युवक इसके भीषण परिणामों से अपरिचित होने के कारण इसमें पूर्ण रस लेने लगता है। यौन-भावना से वशीभूत हुआ वह अपने नये नैतिक मान-दण्ड स्थापित किया करता है जो उसके मनोद्वन्द्वों का प्रतिफलन होते हैं। केवल शारीरिक संयोग जीवन-सुख ही उसके लिए सर्वाधिक मूल्यवान वस्तु हुआ करते हैं। उसके काम आवेग ही उसके समस्त व्यक्तित्व को संचालित किया करते हैं। उसकी काम वासनाएँ उसमें भौंरे की प्रवृत्ति को उभाड़ा करती हैं और वह उसी की भाँति एक नारी से दूसरी और दूसरी से तीसरी की ओर लपकता हुआ, मचलता, थिरकता और झूमता हुआ बढ़ा चला जाता है, वह रुकता नहीं, सोचता नहीं बल्कि सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ता हुआ, नैतिक मान्यताओं को कुचलता हुआ, वैयक्तिक वासनाओं का दास बना चलता है। प्रेत और छाया के अधिकतर पात्र वासनाओं के दास हैं।

प्रेत और छाया का कथा-केन्द्र ही काम-भाव है। काम-भाव की तृप्ति के भी अनेक साधन हैं। कुछ तो केवल नारी-सौंदर्य के दर्शन मात्र से ही तृप्त हो जाते हैं किन्तु अधिकतर उससे स्पर्श तथा चुम्बन आदि की माँग करते हैं और अधिकतम कामान्ध पुरुष तो उसका समस्त शरीर पाये बिना सुख का भोग नहीं लेते। उनकी यह अभिलाषा इतना विकृत रूप धारण कर लेती है कि वे नारी की हृदयगत कोमल भावनाओं, करुणा और वात्सल्य को भी विस्मृत कर काम-तरंगों में बहाते रहते हैं। प्रेमचन्दजी के श्रेष्ठतम उपन्यास गोदान का युवक नायक गोबर काम भाव द्वारा वशीभूत हुआ

अपने बच्चे की मृत्यु को भी नहीं देखता। अपनी शोकातुर पत्नी झमिया से ऐसे प्रलयकारी क्षणों में भी समूचे शरीर की मांग कर बैठता है। जैनेन्द्र जी के प्रसिद्ध उपन्यास सुनीता का मुख्य पात्र हरिप्रसन्न भी अपने मित्र श्रीकान्त की पत्नी पर आसक्त हो जाता है। वह उसे चकमा देकर वन में ले जाता है, वहाँ पर उसके रूप को देखकर पता चलता है कि उसके काम का आधार विकृत विपर्यस्त है। वह सुनीता के सम्पूर्ण शरीर को नग्न रूप में देखना चाहता है। और उसे नग्नरूप में देखते ही रति तप्त-काम तृप्त अशक्ति की मुद्रा में परिवर्तित हो जाता है। प्रेत और छाया में पारसनाथ का लक्ष्य विश्व की नारी मात्र में से चुने हुए सौंदर्य के साथ रति-क्रीड़ा करना है। वह मैथुनिक व्यापार से कम किसी लक्ष्य पर नहीं ठहरता। उसमें उद्वेग है, आवेग है, और है विपर्यस्तता।

पारसनाथ की विपर्यस्तता उससे क्या नहीं कराती। वह इसके द्वारा वशीभूत हुआ प्रेम के राजमार्ग को त्यागकर पर वासना के कंटक-पथ पर अग्रसर होता है। कुछ मनोवैज्ञानिक कारणों से पारसनाथ की मानसिक अवस्था विकृत विपर्यस्त अवस्था बन जाती है। वह परम विचित्र और असाधारण रूप धारण कर लेती है जिसकी तृप्ति अपनी चरितार्थता के लिए नारी की पावन मनोभावनाओं की माँग नहीं करती अपितु उसके नग्न रूप से खिलवाड़ करके ही संतुष्ट होती है। और संतुष्ट भी कहाँ होती है? उसमें तो और भी भूख भड़कती रहती है। पारसनाथ किसी भी एक सुन्दर, स्वस्थ सुशील बाला के प्रणय को परिणय रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं होता, वह तो खिलवाड़ चाहता है, शरीर चाहता है। और नारी-शरीर प्राप्त करने के लिए नित नवीन प्रयोग करता है। मंजरी सदृश्य सहृदय नारी के मन की कोमल भावनाओं के तारों को छूकर झंकृत कर देता है। उसके शरीर को पाने के लिए वह उसमें अपने प्रति आत्मकरुणा जगा देता है और वह भी विचित्र ढंग से। एक दिन वह सुयोग ढूँढकर उसे अपने पास बिठाकर अपने अतीत जीवन की भूलों को (हाँ उसे यह भूल ही बताता है चाहे वह भूल उसके मन के जीतने के लिए एक षड्यन्त्र था) बता देता है। पूर्व परिचित युवतियों के साथ बीते प्रणय की कहानी सुना देता है, जिससे मंजरी यह समझ बैठती है कि पारसनाथ सरल हृदय प्राणी है, जगत के प्रति अनुभवहीन युवक है, जिसे कभी सच्चा सुख नहीं मिला। अतः उसके जीवन में सुख बोने के लिए आत्मसमर्पण तक कर देती है। यह है काम पीड़ित वासना, अर्थात पारसनाथ की विकृत विपर्यस्त मनोदशा का चित्रण जो किसी भी नारी को किसी भी तरह अपनी काम-क्रीड़ा का शिकार बना ही लेता है।

और मंजरी से भी उसकी काम-भावना संतुष्ट नहीं होती। वह तो एक सरल हृदय, सुन्दर भोगना है। उसे तो वह जब चाहे भोग सकता है, और भी सकता है। किन्तु उसकी भावना अन्य प्रकार की काम-क्रीड़ा के प्रयोग करती है। एक नववर्तित

मुग्धा नारी के संयोग से तृप्त नहीं होती अपितु विवाहिता प्रगल्भा के लिए तड़प उठती है। नन्दिनी को भगाने के पश्चात् उसके अन्तर्मन में अपार सुख और आनन्द का जो सागर उमड़ता हुआ हम देखते हैं, वह अनन्त है और है अपूर्व। डा० देवराज उपाध्याय जी ने इसको अतिरिक्त उल्लास कहा है, और इसके लिए जोशी जी के इस उपन्यास का एक प्रसंग भी दे दिया है जो इस प्रकार है—"पर यह सब कुछ होने पर भी यह अनुभूति उसे एक उन्मादक और अस्वाभाविक स्फूर्ति प्रदान कर रही थी कि वह एक विवाहिता स्त्री को भगाये लिए जाता है, किस ओर भगा ले जा रहा है, किस उद्देश्य से, कितने समय के लिए—अपने अन्तर्मन के ये सब प्रश्न उसे एकदम अर्थहीन और निस्सार लगते थे। केवल यह कल्पना उसे रह-रह कर तरंगित कर रही थी कि जो स्त्री उसके साथ भाग निकली थी वह अब तक किसी दूसरे की सम्पत्ति थी और आज वह पूर्ण रूप से उसके अधिकार में है। एक विवाहित नारी को भगाने से जो सुख है वह किसी अविवाहित स्त्री को साथ भगाने में कदापि नहीं। किसी गुणवती व शीलवती सुन्दरी स्त्री का पातिव्रत खंडित करने से हम नरक के कीड़ों की सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा की पूर्ति होती है।"[1] ऐसे प्रसंग पारसनाथ की काम-भावना को स्पष्ट करने में सहायक होते हैं।

काम से पीड़ित पात्रों को संसार में काम-भाव के अतिरिक्त कुछ भी तो दिखाई नहीं देता। पारिवारिक संबंध, सामाजिक आचार-विचार आदि का वे विचार ही नहीं करते। देश हित की कोई बात ही नहीं सोचते। पारसनाथ, नन्दिनी और उसकी बहनें तथा प्रेमी काम की प्रताड़नाएँ सह रहे हैं। अधिकतम पात्र काम के महत्व को समझ कर विवाह कर स्वस्थ जीवन बिताने से कतराते रहते हैं। विवाहित पात्र-विवाह करके भी काम-भाव की अतृप्ति के कारण मचलते रहते हैं। अतः काम-भाव संतुलित रूप में बहुत कम मिलता है और जहाँ पर मिलता है वहाँ पर स्वस्थ पारिवारिक और सामाजिक रूप की स्थापना कर देता है। मंजरी और डाक्टर राय का प्रणय अपूर्व है। इनका विवाहित जीवन अकल्पनीय रूप से सफल है। किसे आशा हो सकती है कि एक बीस वर्ष की युवती एक साठ साला बूढ़े के साथ परम सुखी और सौभाग्यवती बनेगी। किन्तु आधुनिक मनोविज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि मन को संतुलित रखने पर अनमेल विवाह भी परम सुखमय सिद्ध हो सकता है। काम पर विजय प्राप्त की जा सकती है। काम के स्वस्थ, रूप को समझा और अपनाया जा सकता है।

काम-ग्रंथियाँ बड़ी विषम और विनाशकारी हुआ करती हैं। इन्हें खोलना बड़ा दुर्लभ और नितान्त आवश्यक हुआ करता है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा इन्हें सरलता

---

१. प्रेत और छाया

पर्दे की रानी

वैयक्तिक तत्वों से परिपूर्ण, कल्पनातीत मनोविश्लेषणात्मक प्रसंगों से भवतीर्ण पात्रमुखोद्गारित आत्मकथा के रूप में हमारे सामने 'पर्दे की रानी' नामक उपन्यास आता है। यह चार भागों में विभाजित दो नारी पात्रों की कहानी है, जिसे उन्होंने आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत किया है।

कथा का आरम्भ एक वैचित्र्यपूर्ण वातावरण में होता है जब कि एक गर्ल्स होस्टल में भरती होने के लिए उपन्यास की नायिका निरंजना आती है तो कथाकार शीला उसे देखते ही मनोमुग्ध हो जाती है। चकाचौंध कर देने वाला नारी-सौंदर्य युग-युगान्त से पुरुष के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है—ऐसा तो देखा और सुना है, किन्तु एक भावुक नारी के लिए भी आकर्षण-बिन्दु बन सकता है, वास्तव में आश्चर्य में डाल देने वाली बात है क्योंकि मनोविज्ञान का प्रत्येक पाठक जानता है कि कोई भी नारी कभी भी अपने सौंदर्य के प्रति उदासीन होकर दूसरी रमणी के सौंदर्य का सिक्का एकदम अपने मन पर जमा लेने को तैयार नहीं होती। शीला सहृदय गम्भीर बाला का निरंजना के सौंदर्य से द्रवीभूत होकर उसके चरणों पर लोट-पोट हो जाने की इच्छा करना एकदम भावुकता का प्रतीक है।

चन्द्रप्रभा-शीला वार्तालाप न केवल कथा के सूत्र को पकड़ने में सहायक होता है अपितु निरंजना की समस्त रहस्यात्मकता पर भी प्रकाश डालता है—उसका बंद कमरे में चौबीस घंटे पढ़ते रहना, दूसरी लड़कियों से मिलने के बजाय भरपूर कतराना, पाठक को एक अद्भुत, अपूर्व और अनुपम गुफा में ले जाते हैं। नीले पर्दे में छिपी निरंजना, नये वातावरण में खोई नायिका, एकदम पाठकों की उत्सुकता की चाभी बन जाती है। शीला-निरंजना प्रेम मानो पूर्व जन्म के संस्कार का प्रतिफलन है। शीला निरंजना से वार्ता करके अपूर्व आनन्द की अनुभूति करती है। किसी भी सुन्दरी के साथ सटकर बैठने पर, मधुर वार्ता करने पर किसी भी पुरुष को रोमांच की अनुभूति हो सो तो साधारण बात है किन्तु शीला का निरंजना के पास बैठकर रोमांच अनुभव करना पाठक को दूसरे ही लोक में ले जाकर बैठाने वाली बात है।

शीला की रोमांच-अनुभूति शत-प्रतिशत उसकी आत्मानुभूति है—शीला की समस्त कहानी सौ फीसदी उसके आत्मगत अनुभवों की कहानी है। पहिले होस्टल

में कुछ समय के लिए चन्द्रप्रभा, अधिकांश समय तक निरंजना और फिर कथा के नायक इन्द्रमोहन तक सीमित रहती है। शीला की गाथा उसकी वैयक्तिक उन्नति और अवनति की कहानी है, जो मुख्यतः दो व्यक्तियों (निरंजना और इन्द्रमोहन) की प्रणय-वेदी पर न्योछावर हो जाती है।

शीला की कहानी अधिक मर्मस्पर्शी, पावन प्रेमपूर्ण और अमर होने पर भी छोटी है—पर्दे की रानी की प्रमुख कथा निरंजना की जीवनी है जिस पर उसने स्वयं सविस्तार प्रकाश डाला है। उसकी कहानी चिर दु:खी, युग युगान्तर से पीड़ित नारी की कहानी है, जिसे अहंवादी, स्वार्थी और महा ढोंगी पुरुष ने सौ-सौ रूप धारण करके सताया है, जिसके फलस्वरूप उसके जीवन-दर्शन में सुख शब्द की सार्थकता की खिल्ली उड़ाई गई है। जीवन की अनन्त विषम परिस्थितियों को देखकर, असीम पीड़ाओं को सहकर वह कह उठती है—

"सुख केवल मोहमयी कल्पना है और दुःख जीवन के प्रतिपल का प्रत्यक्ष सत्य, सुख तरुण हृदयों के मन्दिर के उच्छ्वासों का केवल फेन है, और दुःख उस फेन के नीचे की वास्तविक कटुता।"[1]

यह सब वह पुस्तकीय ज्ञान अथवा किसी महिला की गाथा सुनकर नहीं कहती अपितु आत्मानुभूति के आधार पर कहती है। उसकी आत्मानुभूति तीव्र है, स्मृति शेष तीखी विष-बुझी कीलों से आच्छादित है। वह एक कुंठा से ग्रस्त है। उसके अवचेतन मन में यह बात बिठा दी गई है कि वह वेश्या की पुत्री है—उसका पिता ही उसकी माँ का हत्यारा है। सुनते ही उसकी मनोदशा विकृत हो उठी। उसके अन्तर्जगत का समस्त रंग घूमने लगा। उसका सुशिक्षित, सभ्य और सुसंस्कृत चेतन मन एक आवरण मात्र रह गया है। पंद्रह-सोलह वर्ष की अल्पायु में ही उसे जीवन दोषी, मर्मघाती अनुभव प्राप्त हुए—

पंद्रह वर्ष की आयु में ही निरंजना अनाथ हो जाती है। अपनी आँखों से अपने पिता द्वारा अपनी माता का खून हुआ देखती है। वह कराल रात्रि उसे उठते-बैठते, सोते-जागते प्रतिपल स्मरण हो आती है और प्रलयकारी वेदना पहुँचाती है। पतनशील नागिना में पली निरंजना मनमोहन सिंह के संरक्षण में आई और वहाँ पर प्रेम की नगर किन्तु अद्भुत उलझनों का शिकार होते-होते बची—ये उलझनें बाप-बेटे (मनमोहन और इन्द्रमोहन) की वासना-वृत्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। यहाँ पर लेखक ने नव उद्भावनाओं का गुम्फन करके कथा को अलौकिक बनाने का प्रयत्न

1. पर्दे की रानी पृष्ठ १८

किया है। निरंजना बाप और बेटे दोनों से ही भयंकर रूप से परिचित है, किन्तु फिर भी दोनों में ही (बारी-बारी) रुचि लेती है। यूरोप से लौटे इन्द्रमोहन के प्रति परोक्ष रूप से आकर्षित है। उसे साथ समझकर भी सावधानी के साथ उससे खेलना चाहती है। खेलती भी है'''समय-समय पर उसे यह खेल बहुत महंगा पड़ता है। प्रेम-क्रीड़ा वासना की गेंद के बिना नहीं खेली जा सकती, शायद यह वह नहीं जानती, तभी तो खुशी-खुशी उसके साथ नुमाइश देखने चल देती है, फिर होटल भी पहुँच जाती है किन्तु होटल में उसके असामुचित रूप को देख अन्तरात्मा से उसे घृणा करने लगती है—बड़ी कठिनाई और बुद्धिमत्ता से कौमार्य की रक्षा कर पाती है।

अप्रत्याशित रूप से उसकी भेंट गुरु जी से हो गई। ये गुरु जी इसके सामाजिक गुरु ही नहीं हैं अपितु मानसिक एवं आध्यात्मिक गुरु भी हैं जो नितान्त भयंकरतम क्षणों में उसे मानसिक शान्ति प्रदान करते हैं। उसके अवचेतन में वर्तमान समस्त कुण्ठाओं का विश्लेषण करते हैं। उसकी अन्तश्चेतना को पूर्णतया पहचानते हुए रहस्योद्घाटन करते हैं कि उसमें भयंकर विरोधाभास वर्तमान है, जिसे सुनकर निरंजना पागल हो उठने की आशंका प्रकट कर देती है। वह स्वयं मनोविश्लेषण का आश्रय लेकर चरित्रगत विरोधाभास की स्वीकृति देती है—"इसलिए तो मुझे अपने पागल होने का डर है, गुरु जी! केवल एक ही नहीं—मेरे भीतर कई विरोधाभास वर्तमान हैं, मुझे ऐसा लगता है। कभी-कभी मुझे यह अनुभव होने लगता है कि मेरे मन के मूल केन्द्र के ऊपर बहुत से विचित्र-विचित्र संस्कारों के स्तर एक के ऊपर एक—इस सिलसिले से जमे हुए हैं, और उनमें से प्रत्येक स्तर के तत्व किसी दूसरे स्तर के तत्वों से मेल नहीं खाते। उन सब स्तरों के नीचे मेरा मूल स्वभाव भयंकर भार से दबा पड़ा है। बीच में जब मेरे भीतर कुछ विशेष-विशेष परिस्थितियों की प्रतिक्रिया के कारण भयंकर भूकम्प मच उठता है तो उन सब वज्र-पाषाणों के समान कठिन स्तरों को डगमगा कर उन्हें भेदती हुई मेरी वास्तविक प्रकृति प्रबल वेग से बाहर को उमड़ उठती है। मेरी वह मूल प्रकृति कभी भीषण ज्वालामुखी के समान आग के फव्वारे छोड़ती है कभी स्निग्ध-शीतल जलधारा बरसाती है। पर मैं न पहले का कारण जानती हूँ न दूसरे का। मैं अपने भीतर के विचित्र संस्कारों की क्रिया-प्रतिक्रिया की एक कठपुतली मात्र हूँ। न अपने जीवन का कोई विशेष लक्ष्य मुझे दिखाई देता है और न अपने अस्तित्व की कोई उपयोगिता ही मेरी समझ में आती है। मैं स्वयं अपने लिए एक पहेली हूँ, गुरु जी! क्या कभी इस पहेली को रत्तीभर भी सुलझाने में समर्थ हो पाऊँगी?"

इस प्रकार की पहेलियाँ और उनके हल मनोविश्लेषण द्वारा समस्त कथानक में भरे पड़े हैं। किन्तु प्रश्न उठता है कि ये कथानक की सुसंगठन के लिए कहाँ तक वाञ्छनीय हैं? ये तो घटना-चक्र को और अधिक जटिल बना देते हैं। हाँ चरित्र का

सर्वांगीण उद्घाटन ये अवश्य करते हैं। इनसे ही पता चलता है कि पात्र का व्यक्तित्व कहीं दुरंगी तो कहीं चौरंगी चाल से चल रहा है।

मानव-चरित्र बड़ा विचित्र है। 'पर्दे की रानी' की कथा द्वारा इस मत की पुष्टि होती है। एक बार नहीं अनेक बार इन्द्रमोहन के चरित्र का गठन जान लेने पर भी निरंजना उसके प्रति उदासीन नहीं हो पाती, अपितु नित नवीन रूपों से विमोहित होती है, आकर्षित होती है, भले ही यह प्रतिहिंसा का परिणाम है अथवा वेश्या मां और हत्यारे पिता द्वारा पाई वंशगत मनोवृत्ति का स्वरूप। उसका मन विकृति की जिस सीमा को पार कर गया है उसका भी कोई ओर-छोर नहीं। मंसूरी में शीला से पुन: भेंट होने पर इन्द्रमोहन को उसके पति के रूप में देखकर वह विशेष प्रसन्न नहीं हुई—या यों कह लो कि उसे पूर्व कथित कोई बात स्मरण हो आई वह (तुम्हारा पति) या तो अपनी घृणा-भरी विषैली बातों से और पाशविक व्यवहार से तुम्हें इस कदर परेशान कर डालेगा कि आत्म हत्या किये बिना तुम्हारा छुटकारा नहीं हो सकेगा, या एक दिन स्वयं तुम्हारी हत्या कर डालेगा। अत: वह शीला से स्नेह नहीं; डाह करने लगी। उसके पति को छीन लेने; उसके साथ कुछ क्षण मनोविनोद में ही उसका अपसाधारण चित्त प्रसन्न होता। वह बात-बात में उसे चिढ़ाती है। उसे कहती है कि एक नहीं बल्कि अन्य पुरुषों के साथ प्रेम-सम्बन्ध चाहती है और तीन से तो यह सम्बन्ध जोड़ भी चुकी है। इसमें कितना सच है, कितना झूठ—शीला बखूबी जानती है। अत: व्यंग्य द्वारा निरंजना को बता भी देती है कि वह उसके पति को छीन रही है।

निरंजना अपने स्वभाव की विकृत दशा पर लज्जित है। शीला के प्रति उसके चेतन मन में बड़ी भारी सहानुभूति है किन्तु उसका अचेतन मन उसे पीड़ा देकर ही सुख अनुभव करता है। मन की इस दशा का विश्लेषण करती हुई वह शीला से कहती है—"मैंने जानकर या अनजान में अवश्य तुम्हारे साथ भयंकर अन्याय किया है, कर रही हूँ, और बहुत संभव है कि भविष्य में भी करती रहूँगी। फिर भी तुम यह निश्चित रूप से जान लो कि तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में एक सच्ची ममता वर्त्तमान है। तिसपर भी मैं तुम्हारे सर्वनाश के लिए क्यों तुली हूँ, यह मैं स्वयं नहीं जानती। अपने स्वभाव की इस विचित्र विकृति पर मुझे स्वयं आश्चर्य होता है। पर तुम्हें यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि तुम्हारे सर्वनाश का मूल कारण मैं नहीं बल्कि वह व्यक्ति है जिसने मीठी-मीठी बातों में रिझा कर तुम्हारे साथ विवाह किया है। यदि मैं न होती, तो निश्चय ही कोई दूसरी स्त्री मेरे स्थान पर अधिकार कर लेती, क्योंकि कोई भी आत्मगत पुरुष विवाहित स्त्री से अधिक समय तक संतुष्ट नहीं रह सकता।"[1]

---

१. पर्दे की रानी पृष्ठ १६४.

कितनी बड़ी प्रवंचना है, कितना बड़ा धोखा है। हम साधारण जीवन में भी देखते हैं कि इस जगती के अधिकतर प्राणी स्वयं पापरत होकर भी पाप को आसानी से दूसरों के सिर पर मढ देते हैं। निरंजना का अचेतन मन सब समय उसके चेतन स्वरूप को वासना की ओर धकेल कर बड़ी भारी तृप्ति की अनुभूति करता है किन्तु इसे वह दूसरों की आत्मरति कहती है। पुरुषमात्र को बदनाम करना चाहती है। उसे आत्मगत पुरुष कह कर अपने अहं की तृप्ति करती है। जिससे शीला को होस्टल में कही गई बात कि तुम विवाह करके कभी सुखी न होगी सत्य में परिणत हो जाये।

मंसूरी में इन्द्रमोहन-निरंजना रोमांस परम मोहक और महत्वपूर्ण है। इन्द्रमोहन बड़े स्थिर और शालीन रूप में निरंजना के सामने आता है। उसे विश्वास हो गया है कि उसके मन को जीत कर ही उसके शरीर पर विजय पाई जा सकती है। अतः वह कोई भी अवसर हाथ से नहीं जाने देता जबकि अपनी गम्भीरता और स्वस्थ प्रेम का दिग्दर्शन करना आवश्यक होता है। उसे निरंजना-प्राप्ति की आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास भी है। उसी परिणति-हित वह स्वचरित्र को रचता है और अन्त में उसे इसकी प्राप्ति हो भी जाती है। जो इस प्राप्ति के लिए उसे घोर नारकीय कृत्य करना पड़ता है वह है अपनी पतिव्रता विदुषी पत्नी शीला को विष देकर मारना।

पर्दे की रानी की कथा मनुष्य-मन की अनेक विकृतियों पर प्रकाश डालती है। स्त्रियों के पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष मोह और स्पर्द्धा, पुरुषों की अकथनीय एवं अकल्पनीय वासना एवं कामुकता तथा स्वार्थपरता का नग्न चित्रण इसमें हुआ है। स्त्री कभी भी प्रेम के क्षेत्र में दो का अधिकार नहीं देख सकती। निरंजना, जब तक शीला जीवित है, इन्द्रमोहन को शरीर नहीं छूने देती और शीला इन्द्रमोहन-निरंजना रोमांस की गन्ध पाकर अब अधिक जीना नहीं चाहती।

सारे कथानक में वैयक्तिक समस्याओं, प्रेम, ईर्ष्या, घृणा और विचार आदि पर ही प्रकाश डाला गया है। प्रकृति के विरोधाभास को चित्रित किया गया है। निरंजना इन्द्रमोहन के स्वभाव की अकथरता से परिचित होकर भी उसे चाहती है। शीला निरंजना की कूटनीति जानते हुए भी उससे प्यार करती है। प्यार और घृणा दोनों ही स्त्री-पात्रों के हृदय में घर कर गये हैं अतः कथा में साथ-साथ चलते हैं। उन्मुक्त प्रेम का समर्थक इन्द्रमोहन व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का प्रेरक है। वह समझता है कि व्यक्ति ही सर्वस्व है। समाज के सब बंधन झूठे और थोथे हैं। उन्हें छिन्न-भिन्न हो ही जाना चाहिए। स्त्री पुरुष के स्वच्छन्द मिलन पर समाज की कोई रोक-टोक नहीं चाहिए। घोर समाजवादी गुरु जी भी व्यक्ति की महत्ता स्वीकार करते हैं। व्यक्ति के चरित्र के गठन पर ही वह समाज या वर्ग की उन्नति सम्भव मानते हैं।

इन्द्रमोहन

कथा के नायक के रूप में हम इन्द्रमोहन को देखते हैं। वह घोर व्यक्तिवादी, अहंवादी और स्वार्थी प्राणी है। आज के इस पूंजीवाद और विज्ञानवादी युग में व्यक्तिवादी मनुष्यों की कमी नहीं—यह वह जानता-पहचानता है और उनका ही प्रतिनिधित्व भी करता है। ऐसे संकीर्ण दृष्टिकोण वेत्ताओं का विश्लेषण भी वह स्वयं करता है जो मनन-योग्य है :—"असल बात यह है कि केवल मैं ही इस यथार्थवादी, बौद्धिक युग में अन्तर्लोक की असंख्य उद्भ्रान्त कल्पनाओं में मग्न रहने वाला व्यक्ति नहीं हूं बल्कि ऐसे बहुत से व्यक्ति हमारे प्रतिदिन के समाज में वर्तमान हैं जो बाहर से सहज, सरल और साधारण सामाजिक जीवन बिताते हुए मालूम होने पर भी भीतर से भयंकर रूप से इन्द्रजाली भावनाओं में मग्न रहते हैं। इस युग का व्यक्ति अपनी अन्तर्तम भावनाओं को छिपाने की कला खूब जानता है—और अपने आपको और एक दूसरे को धोखा देने की कला भी। यही कारण है कि आजकल के बने हुए यथार्थवादियों की पोल कम खुल पाती है। मुझमें और दूसरे व्यक्तियों में केवल इतना ही अन्तर है कि मैं दूसरों को भले ही ठगूं, पर अपने आपको ठगना नहीं चाहता। मैं स्पष्ट रूप से अपने आगे यह स्वीकार कर लेता हूं कि मैं बड़ा आत्मरत हूं, और मेरा 'मैं' ही मेरे लिये सब कुछ है। और वह 'मैं' भी कितना बड़ा है। जैसा कि मैं कह चुका हूं कि उसके भीतर सारे संसार की चहल-पहल, कोलाहल, युद्ध और संघर्ष सब कुछ आकर समा जाता है और वह 'सब कुछ' भी इतना कम स्थान घेरता है कि उसके एक कोने में बेमालूम पड़ा रहता है।"[1]

नायक के इस आत्मविश्लेषण द्वारा उसका देदीप्यमान अहं और व्यक्तिवाद स्पष्ट दीख पड़ता है। वह इतना बड़ा अहंवादी है कि अपने मत के आगे किसी भी मत अथवा पुण्य को हेय समझता है; इतना बड़ा व्यक्तिवादी है कि अपने व्यक्तिगत प्रेम-पत्रों के सम्मुख सामूहिक विकास, सामाजिक उन्नति अथवा राष्ट्रीय हितों की बात नहीं सोचता। दूसरा विश्व-युद्ध चल रहा है। लाखों नर-नारी हाहाकार कर रहे हैं उसे कोई चिन्ता नहीं है उसे चिन्ता है, तो केवल इस बात की कि शीला क्यों नहीं मर जाती, निरंजना जल्दी से अपना सर्वस्व उसके चरणों में क्यों भेंट नहीं कर रही।

उसका जीवन के प्रति एक अलग ही दृष्टिकोण है। वह व्यक्तिगत प्रेम को ही जीवन में सबसे बड़ा समझता है, उसकी परिणति को ही जीवन का सबसे बड़ा ध्येय मानता है। उसकी दृष्टि में देश, समाज, भूख और अत्याचार सब उसके प्रेम के निकट गौण हैं। प्रेम के लिए वह इन सब के अतिरिक्त मृत्यु का भी ...

१. पर्दे की रानी पृष्ठ १६१.

करने को तैयार है और करता भी है। अपने अकल्पनीय षड्यंत्रों द्वारा जब वह निरजना को वशीभूत कर उसके कौमार्य से खिलवाड़ कर लेता है तो उसका संकेत पाते ही हँसते हुए चलती रेल गाड़ी के नीचे कट कर प्राण देता है। ऐसा करके वह भावुकता की सभी सीमाओं को लांघ गया है। प्रेम के नाम को अमर कर गया है।

इन्द्रमोहन का पूर्ण चरित्र इस तथ्य का उद्घाटन करता है कि वह पशु मानव है। उसका प्रेम भी पशु-प्रेम है जो वासना की दुर्गन्ध से परिपूर्ण है। वह कपट से निजरना को होटल में ले जाता है। वहाँ पहुँच कर बलपूर्वक उसके कौमार्य को खण्डित करने की पूरी-पूरी चेष्टा करता है। निरजना के कौशल द्वारा भाग आने पर उसकी कोठी पर आकर गुरु जी को प्रतिद्वन्द्वी समक्ष गोली तक मार देता है, उनके बच जाने पर भी वह हताश नहीं होता। निरजना से प्रतिदान पाने के लिए नई-नई योजनाएँ रचता है। ये सब योजनाएँ छल, कपट और अकल्पनीय आडम्बर पूर्ण होने के कारण इसकी दूर दर्शिता की परिचायक हैं।

इन्द्रमोहन नैराश्य के निर्मम थपेड़े खाकर आत्महत्या नहीं करता। वह शराब के घूँट पीकर पलायन भी नहीं करता, किसी अन्य रमणी की सुखद शीतल गोद में विश्राम के साथ मो भी नहीं जाता अपितु, प्रतिपल हर क्षण निरजना को प्राप्त करने का यत्न करता रहता है। यहाँ तक कि विवाह भी वह इसी लिए करता है कि उसके चरित्र में आई गम्भीरता से प्रभावित हो निरजना उन्मत्त हो उठे, उसे पाने को व्याकुल हो उठे। अपनी चरित्रगत इस रूढ़ि का वह कितना सुन्दर विश्लेषण करता है—"तो सुनिए। मैंने विवाह केवल इस आशा से किया कि इस बात से आपके मन पर मेरे संबंध में अच्छी धारणा जम जायेगी। मेरे भीतर जो एक आवारागर्दी का भाव मुझे सब समय शैतान की कलाबाजियों के चक्कर में डाले रखता था उससे मुक्ति पाकर मैं अपना स्थिर, गम्भीर रूप आपके सामने रखना चाहता था। वह स्थिरता मुझे केवल विवाहित जीवन से ही प्राप्त हो सकती थी। मैं अपने अज्ञात में यह आशा रखता था कि जीवन के किसी चरम अवसर पर कहीं-न-कहीं फिर एक बार आपसे भेंट होगी। उस महत्वपूर्ण मिलन की तैयारी के उद्देश्य से ही मैं अपने जीवन का गठन एक विशेष आदर्श के अनुसार करने पर तुला हुआ था। मेरे लिये विवाह की यही सार्थकता थी।"[1]

अपने स्वभाव में आशातीत परिवर्तन लाने के लिए और अपनी प्रियतमा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के लिए किसी अन्य सुन्दरी से विवाह वास्तव में विचित्र उपाय है, जिसकी कल्पना शायद अभी तक कोई अन्य हिन्दी उपन्यासकार नहीं कर पाया है। और यहीं पर बस नहीं उस प्रियतम का सनिक सा संकेत पाकर चिर सगनि

---

1. पर्दे की रानी पृष्ठ १७८.

की हत्या तक कर डालना चारित्रिक अद्वितीयता का प्रतीक कहा जा सकता है। निरंजना के शब्दों में नायक नीच, नराधम पिशाच है, जो पाँच वर्ष तक आडम्बर का कवच पहने रखता है।

निरंजना

जोशी जी की सशक्त, प्रतिभावान और प्रभावशाली स्त्री पात्रों में से एक निरंजना भी महत्वपूर्ण चरित्र है। यह पर्दे की रानी की नायिका है। इसका व्यक्तित्व निखरा हुआ है। यह अन्तर्भेदनी दृष्टि रखती है जो शीला के व्यक्तित्व के भीतर पर्तों की समस्त आकुलता को पकड़ उसे अज्ञात मिलन-कामना से वशीभूत कर देती है; मनमोहन को क्षत-विक्षत कर प्रतिदिन सायंकाल को दर्शन-लाभ उठाने के लिए निमन्त्रण देती है और इन्द्रमोहन को तो इह लौकिक समस्त सुखों से परे और ऊपरी एक-ही-एक रूप का साक्षात्कार कराते हैं और वह रूप है नायिका का अपना गौरव-पूर्ण सुन्दर सुडौल यौवन।

१६ वर्ष की अल्प आयु में ही निरंजना को जीवन के कटुतम अनुभव प्राप्त होते हैं। वह 'नारी निर्यातन का इतिहास' ट्रेजेडी की मूलोत्पत्ति' दुःखवाद की विश्व-व्यापकता सदृश्य गम्भीर और दुःखवादात्मक ग्रंथ पढ़ती है। पुरुष मात्र के प्रति उसके विचार उद्भ्रान्त हैं। वह पुरुष-वर्ग को घोर स्वार्थी, कामुक और भावुक समझती है, जिसमें उच्छृंखलता कूट-कूट कर भरी है। काम, स्वार्थ, और ढोंग उसकी दृष्टि मे पुरुषत्व के लक्षण हैं। एक नारी से तो उनकी प्यास या आग बुझ ही नहीं सकती। पुरुष की इन चारित्रिक परम्पराओं का विश्लेषण करती हुई वह अपनी सहेली शीला से कहती है—"केवल एक प्रेयसी की कल्पना से या संसर्ग से उन्हें शान्ति नहीं मिलती। प्रत्येक नारी उनके लिए बर्फ का एक टुकड़ा है। अनन्त वासना की धधकती हुई आग से झुलसे हृदय की तप्त प्यास बुझाने के लिए वे बर्फ के उन टुकड़ों पर टूट पड़ना चाहते है। पर उनसे उनकी प्यास बुझने के बजाय और अधिक बढ़ती चली जाती है। नारी को महामान्वित करने का ढोंग रचने वाले ये कामी जीव केवल अपने शारीरिक स्वार्थ या (अधिक-से-अधिक) अहंभाव की पूर्ति के लिए, अपनी 'अन्तर-वासिनियों के प्रेम का झूठ-राग अलापते रहते हैं।"[1] और पुरुष-वर्ग के प्रति इतना संकुचित दृष्टि-कोण रखने वाली यह निरंजना स्वयं उसकी ही वासना का शिकार हो जाती है और वह भी अपनी स्वेच्छा से। कैसी चारित्रिक विडम्बना है ?

नव यौवन के प्रांगण में पाँव में पाँव रहते ही निरंजना के चरित्र में अनेक उतार-चढ़ाव आते हैं। माँ द्वारा सुरक्षित उसका चेतन मन सुसंस्कृत रूप धारण कर सम रूपेण उन्नति के पथ की ओर बढ़ता है किन्तु समाज द्वारा प्रताड़ित और लांछित उसका अवचेतन मन उसमे हीनता की ग्रन्थि को जन्म देकर उसे अवनति की ओर

---

१. पर्दे की रानी पृष्ठ २२.

झेलने लगता है। रह-रहकर उसके सामने मां की लोमहर्षक मृत्यु का दृश्य आता रहता है। मनमोहन सिंह के वचन कि तुम एक वेश्या माँ और हत्यारे पिता की संतान हो—उसके चरित्र में विरोधाभास प्रस्तुत कर देते हैं।

आधुनिक शिक्षा ने उसके चरित्र के स्वतन्त्र और स्वस्थ गठन में सहायता दी है, किन्तु कुछ घटनाओं ने उसमें विष भी घोल दिया है। शराब के उन्माद में चूर्ण मनमोहन ने उसके कौमार्य से खिलवाड़ चाही, किन्तु उसके स्वस्थ मन ने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर उसके चरित्र के उज्ज्वल पक्ष का परिचय दिया। नायक द्वारा बल-प्रयोग करने पर उसने बुद्धि-बल से उसको पराजित किया। घोर-से-घोर विपत्ति-काल में भी वह मानसिक संतुलन रख पाती है।

पुत्र के पश्चात् पिता का घृणित प्रस्ताव निरंजना की अन्तश्चेतना पर गहरी चोट पहुँचाता है। उसका मस्तिष्क भन्ना उठता है। वह नर मात्र को पिशाच, पशु और हत्यारा समझने लगती है। उसके मतानुसार पुरुष की निर्लज्जता और स्वार्थ की कोई सीमा नहीं है। पिता तुल्य मनमोहन भी घृणित प्रस्ताव कर सकता है, कल्पना मात्र से सिहर जाने वाला मन वास्तविकता की भयंकरता को देख कर चिल्ला उठता है—"मुझे मार डालो! जान से मार डालो!—नर-पिशाचो! हत्यारो! कमीने कुत्तो! तुम दोनों बाप बेटों ने मिलकर मेरे जीवन को विषमय बना दिया है।"[1] नायिका के इन शब्दों में नारी-मात्र की विवशता बोल रही है, उसके चरित्र की अबला अवस्था झलक रही है।

विश्लेषण करने की कला में भी हम निरंजना को पारंगत पाते हैं। मनमोहन द्वारा अपनी मां तथा पिता की चरित्रगत विषमता एवं हेय दशा का परिचय प्राप्त कर उन पर बरस पड़ती है और कहती है—"आप शैतान से भी अधिक भयंकर और नरक के कीड़े से भी अधिक घृणित और घातक हैं। जिस भयानक सत्य को मां अपनी मृत्यु के समय तक मुझ से छिपाये रही उसे आज—मेरी वर्तमान अनाथ अवस्था में—प्रकट करने का आपका उद्देश्य क्या था, क्या मैं यह नहीं जानती? आप मुझे मेरे जन्म-जन्मान्तर के शत्रु लगते हैं, मनमोहन बाबू! जन्म-जन्म के वैर का बदला चुकाने के लिए ही आपने मेरी जानकारी में एक ऐसी बात ला दी जो मुझे अब से पल-पल तिल-तिल करके हजारों छोटे-छोटे विषैले कीड़ों के डंकों के दर्शन कराती रहेगी।"[2]

और जो उसने विश्लेषण करके कहा वही उसके जीवनगत चरित्र में घटित हुआ। उसके चरित्र की दिशा ही बदल गई। अवचेतन में वेश्या मां के संस्कार और

---

१. 'पर्दे की रानी' पृष्ठ ११७.

२. पर्दे की रानी पृष्ठ २२६.

हत्यारे पिता का रूप चौकड़ी मार कर बैठ गया और समय-असमय उसके सचेतन मन का संचालन करने लगा। यही उसे इन्द्रमोहन की ओर झुका भी देता है। यह कुसमाचार उसके अहंभाव को, जो परले दर्जे का स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखता है, ठेस पहुंचाता है। उसकी मनोदशा को विकृत कर सरल स्नेही शीला तक की मृत्यु का कारण बनाता है। और अन्त में इन्द्रमोहन तक को मृत्यु की गोद में सुनाकर तुष्ट होता है, संतुलन पा पाता है। मातृत्व मे परिणति और उसकी अनुभूति उसके चरित्र मे दिव्य गुण राजो देते हैं और उसमें फिर से जीने और स्वस्थ रूप से जीने की चाह उत्पन्न कर देते है।

शीला

शीला पर्दे की रानी की एक प्रमुख पात्र है। सच्चे अर्थ में प्रेम की प्रतिमूर्ति प्रेम के लिए जीवन तक बलिदान कर देती है।

शीला ने अन्तर्दृष्टि पाई है। वह निरंजना तथा इन्द्रमोहन की छोटी से छोटा गति विधि से परिचित है। निरंजना की मुसकान में छिपी मधुरता, कटुता और है। मार्मिक व्यंग की संयत तीव्रता को वह क्षण भर मे पहचान लेती है।

शीला जीवन के धुवल पक्ष को महत्व देती है, राग-रंग में उसकी रुचि है; दुःखात्मक पहलुओं से घृणा है। निरंजना की प्रति गम्भीरता तथा दुःखवाद उसे खलता है—वह उसे जीवन के स्वच्छ स्वस्थ और सुखमय रूप को स्वीकार करने के लिए बार-बार कहती है। यूनिवर्सिटी के मदभरे जीवन ने उसके भावो और विचारो को स्वर्गीय कल्पनाओं से ओत-पोत किया हुआ है। निरंजना के पूछने पर वह बताती है कि उसे सुन्दर, सुकुमार और ललित कलाओं के मर्मज्ञ पति की इच्छा है—

किन्तु यथार्थ की चट्टान उसके सुकोमल हृदय और सुदृढ़ चरित्र पर सौ-सौ चोट मार कर उसे चकनाचूर कर देते हैं। मनोवांछित पति पाकर भी उसे जीवन में पूर्ण सतोष और प्रेम नही मिला। फिर भी हम उसके चरित्र में एक दृढ़ता पाते हैं, स्नेह का स्रोत देखते हैं।

शीला का चरित्र मनोद्वन्द्वों से भरा हुआ है। प्रेम और विवाह के स्वच्छ और स्वस्थ रूप को मान्यता देने वाली शीला जब यथार्थ की धरा पर उतरती है तो अपने को विवशता के अंकुश में जकड़ा हुआ पाती है। उसे इन्द्रमोहन से पूर्ण प्रेम है क्योकि वह उसका पति है; निरंजना से स्नेह है, क्योकि वह उसकी बाल सखो है किन्तु जब इन दोनो में प्रेम-व्यापार चलता है तब वह क्या करे ? वह अपने मन को समझाना चाहती है किन्तु नारीगत ईर्ष्या उसमें जाग ही उठती है—वह मन-ही-मन निरंजना से डाह करने लगती है। नित प्रतिदिन बढ़ रहे निरंजना इन्द्रमोहन रोमांस को वह अपनी

सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि से देखती समझती है और तिल-तिल करके घुट रही है। निरजना के "रोमैंटिसिज्म" भरने के प्रस्ताव का वह विरोध करती है, अस्वस्थता के कारण किन्तु पति समर्पण करते हैं मन में एकान्त प्रेयसी मिलन की आशा बाँध कर ! इसे वह खूब जानती है, पहचानती है—पर क्या करे ?

उसके जीवन के प्रेम का स्रोत सूख जाता है। शुष्क, नीरस जीवन वह बिताना नहीं चाहती। अतः प्रेम के आदर्श को जीवन त्याग कर सार्थक कर देती है। प्रिय सखी निरजना और जीवनाधार इन्द्रमोहन के मुक्त मिलन के लिए मार्ग को निष्कण्टक करके आदर्श भारतीय नारीत्व का परिचय देती है।

यह स्त्रीशक्ति नहीं तो क्या है ? यह ठीक है कि कथा में आगे बढ़कर हम प्रतिमा के एक नये रूप के दर्शन करते हैं; हम उसे पार्थिव प्रेम से ऊपर उठी नारी के रूप में देखते हैं, जिसे समाजगत विद्वेष, छल-कपट और शोषण से नितान्त घृणा हो जाती है। समाज में नित प्रति होने वाले जघन्य कृत्यों को देखकर वह मौन नहीं बैठ सकती, अपितु क्रान्ति एवं प्रतिहिंसा की उग्र भावना उसके अवचेतन मन में जन्म ले लेती है, जो महीप के गुप्त दल का संसर्ग पाकर भयावह रूप धारण कर लेती है और ठाकुर लक्ष्मीनारायण सदृश नृशंस सामंत की सामंतशाही को फूँक कर ही चैन लेती है।

यह तो हुई प्रतिमा के मन की बात। दूसरा मन जिसको अत्यधिक प्रभावित हुआ हम पाते हैं—वह नीलिमा का मन है—उपन्यास की नायिका का मन है, जिसका बाह्य रूप चंचल है, महीप के प्रति उपेक्षापूर्ण है, किन्तु भीतर से वह गंभीर है और है अवसाद पूर्ण।

लेखक ने नीलिमा को जिस घटना-चक्र से गुजारा है, उसे जिन अनुभूतियों का साक्षात्कार कराया है, उसके मन पर जो-जो संस्कार डाले हैं वे वास्तव में पठनीय हैं और प्रशंसनीय हैं। जब वह यह अनुभूति करती है कि अब चपल बालिका से प्रौढ़ नारी बन गई है तब वह जीवन और जगत के सम्बन्ध में नये दृष्टिकोण से सोचती है।

एक के पश्चात् एक नहीं अपितु साथ-ही-साथ उसके जीवन में दो प्राणी आते हैं, एक हैं मि० महीप और दूसरे हैं ठाकुर लक्ष्मी नारायण सिंह। महीप को वह चपल शिशु के सिवा किसी दूसरे रूप में नहीं देखती और ठाकुर साहब के ऊपरी ठाट-बाट और चकाचौंध से प्रभावित होकर अपना जीवन ही उन्हें सौंप देती है—यही उसके जीवन की सबसे बड़ी भूल सिद्ध होती है, उसके अन्तर्द्वन्द्व का प्रधान कारण है।

मुख्य कथानक में यह Triangular love story अपने आप में महत्वपूर्ण है। इसमें एक नायिका है तो दो नायक। प्रेम की यह कहानी नवीन न होते हुए भी अपना विशिष्ट आकर्षण रखती है क्योंकि इसमें तीनों के हृदयगत भाव, अवचेतन के अन्तर्द्वन्द्व, अपने सानी नहीं रखते। ठाकुर साहब हैं जो प्रेम-क्षेत्र के अधिक व्यावहारिक ज्ञान रखने के कारण किसी तरह भी नीलिमा को Hypnotise (सम्मोहित) करने से नहीं चूकते और अभिनायक को प्रथम भेंट में ही पटखनी देने से नहीं चूकते। वे महीप को कह देते हैं...... "बात असल में यह है कि नीलिमा से मेरे विवाह की बातचीत पक्की हो चुकी है। नीलिमा से मेरा परिचय करीब साल भर से है।" पृष्ठ ४६.

बेचारा महीप जाये भी कहाँ जाये ? करे तो क्या करे ? ठाकुर साहब के

आतिथ्य के बोझ तले दबा यह निरीह प्राणी अपने को पूर्णतया विवश पाता है, किन्तु शीघ्र ही पराजय स्वीकार नही करता—वह जानता है कि नीलिमा उससे भी प्रभावित है, अतः घात में लगा रहता है। उसे शीघ्र ही अवसर भी मिल जाता है। स्वयं नीलिमा मगल को सात बजे सायं उसे मिलने का निमंत्रण देती है। महीप के मन में अन्तर्द्वन्द जागृत होता है—जाऊँ या न जाऊँ! किन्तु उसका अवचेतन मन उसे वहाँ ले जाकर ही छोड़ता है।

महीप नीलिमा एकान्त मिलन उपन्यास की एक क्रान्तिकारी घटना है। इस मिलन के होने पर जहाँ दोनों के चेतन मन खिल उठते हैं वहाँ अवचेतन मन मे भय, आशंका और चिंता डेरा डाल देते हैं—इसका भी कारण है—दोनो का एक दूसरे के प्रति सरल आकर्षण है, जो काम-मूलक है अतः प्रसन्नतादायक है, किन्तु इससे परे भी एक लोक है जो मर्यादा का लोक है। किसी भी अविवाहित स्त्री का किसी युवक के साथ प्रेम-मिलन की वार्ता हित एकान्त में वार्ता करना सामाजिक दृष्टि से हेय समझा जाता है, मर्यादा की अवहेलना जाना जाता है, जो आशंका व चिता एवं भय को जन्म देता है।

इस वार्ता मे भी महीप एक बाजी हार जाता है। नारी-सुलभ मनोविज्ञान से अनभिज्ञ महीप नीलिमा को प्रभावित करने के बजाय कहता है—पृष्ठ २२५. "यही कि आपने मुझे बेवकूफ बनाना चाहा है—"फिर क्षमा माँगने लगता है। मनोविश्लेषण करने पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि महीप की हीन भावना (Inferiority complex) इस सीमा तक धरातल को पहुँच चुकी है (रमा और सुषमा के विमुख हो जाने के कारण) कि वह नीलिमा का अपने से ऊँचे, कहीं ऊँचे, सोपान पर बैठा पाती है और उसे छूने में अपने को असमर्थ अनुभव करती है। तभी तो यह कहता है—"कोई सहृदय प्राणी मुझे जीवन में मिल जाये तो मैं अब भी भटकने से बच सकता हूं। पर इस बात की कोई आशा मुझे दिखाई नहीं देती…" पृष्ठ २२६.

एक ओर यह हीनता की ग्रंथि दूसरी ओर प्रतिमा द्वारा एकान्त वार्ता में दस्तअंदाजी (हस्तक्षेप) सामाजिक अवहेलना द्वारा प्रताड़ित होकर उसे घोर आत्मग्लानि से भर देते हैं और समाज में सिर उठाने के योग्य नहीं छोड़ते। ऐसे कथानक में तत्क्षण महीप का नीलिमा से भाग चलने का प्रस्ताव करना सर्वथा अस्वाभाविक एवं अव्यावहारिक प्रतीत होता है। सोचने की यदि तनिक भी शक्ति किसी प्राणी में है तो वह इस परिस्थिति में ऐसा प्रस्ताव कदापि नहीं कर सकता।

और फिर भाग निकलना इतना सरल नहीं जितना जोशीजी के नायक की कल्पना है। भारतीय नारी वास्तव में जिन संस्कारों में पोषित होती है, जिन बंधनों में जकड़ी होती है, उनसे एक ही क्षण में मुक्त हो जाना कोई सरल खेल नहीं है।

और चारित्रिक विश्लेषण कर जब एक कटु सत्य शारदा देवी महीप के सम्मुख रखती हैं कि नीलिमा के लिए संभव नहीं है कि वह अपने समाजगत संस्कारों की अवहेलना कर (फैशन आदि को त्याग) उसे अपनावें तब वह सहम जाता है।

उपन्यासकार ने मुख्य कथानक को और लम्बा बढ़ाने के हेतु अनेक चक्करदार घटनाओं में घुमाया है और इन घटनाओं में भी व्याख्यामूलक प्रवृत्ति का प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है। नीलिमा एक छोटी सी बात पर तुनक कर (कि माँ ने चाय की प्याली में एक चम्मच चीनी अधिक क्यों डाल दी) अपनी माँ से झगड़ कर घर से बाहर निकली। महीप से वार्ता हुई—यह वार्ता भी एकान्त में अशोक के पेड़ तले होती है। फिर दोनों भाग कर रेलवे-स्टेशन पर पहुँचते हैं परन्तु वहाँ एक सिपाही उन्हें संशक दृष्टि से देख घेरकर घर ले आता है। घर पर आकर वह पुनः माँ की आज्ञा मानकर ठाकुर साहब से विवाह करने को तैयार हो जाती है। इस मानसिक उथल-पुथल को व्यक्त करने में ही लेखक ने एक वृत्तेतिहास (Case History) के विश्लेषण की याद दिला दी। इस घटना के मूल रूप में कारण-शृंखला की जटिलता की व्याख्या करते हुए मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर उसने प्रकाश डाला है—पृष्ठ २५७

"उसकी माँ ने उस रात उसे एकान्त में ले जाकर न जाने क्या पढ़ाया जिससे उसकी उस दिन की और रात की स्टेशन में अपने अस्वाभाविक व्यवहार की समस्त ग्लानि को चीनी मिट्टी की तश्तरी में लगी हुई राख की तरह धो कर ऐसा साफ कर दिया कि उसका लेशमात्र दाग भी उसके हृदय में रह नहीं पाया। वास्तव में माँ के समधुर पीड़न को चौगुने रूप में वापस पाने के दबाव से ही जैसे उसके अन्तर्मन ने यह जाल रचा था जिसने तनिक सी बात का बहाना पाकर उसे माँ की तरफ से विद्रोही बना डाला था .... स्टेशन पहुँचने तक उसकी मानसिकता इस स्थिति में थी कि उसे लगता था जैसे अनन्त काल तक असीम देश तक वह बराबर इसी प्रकार महीप के साथ चलती रहेगी—निर्द्वन्द्व और विमुक्त भाव से, बिना किसी भी पारिवारिक, सामाजिक अथवा मानसिक बन्धन का अनुभव रंचमात्र भी किए हुए। समस्त विश्व में, समस्त काल में, जैसे महीप ही उसके जीवन का एकमात्र सहयात्री, एकमात्र निकटतम और एकमात्र आत्मीय है, यह विश्वास उस समय उसके मन की उस असाधारण अवस्था में ऐसी प्रबलता से जमा हुआ था कि लगता था जैसे वह जीवन के किसी काल भी में टल हो नहीं सकता।"

तो इस प्रकार लेखक स्वयं चीर-फाड़ करता हुआ कार्य-कारण-सम्बन्ध की शृंखला जोड़ता चलता है। वह प्रत्येक कार्य के कारण ढूंढता दृष्टिगोचर होता है। तभी तो अशोक के पेड़ों की छाया में नीलिमा पूर्ण आत्मसमर्पण की स्थिति को प्राप्त हुई। वास्तव में यह अत्यन्त सहज है। वह नीड़ दृष्टि से चलता और कर बढ़ता है।

वही नीलिमा स्टेशन पहुँचते ही रोने लगी—कहने लगी, "तुम मुझे यहाँ क्यों ले आये ?" लेखक स्पष्ट करता हुआ लिखता है :

"पर स्टेशन पर पहुँचते ही जब ताँगे की गति रुकी तब सहसा नीलिमा के मन की अति सूक्ष्म आकुल दशा की गति भी स्थगित हो गई। उसका जो अपसामान्य व्यक्तित्व कुछ अजीब से मनोवैज्ञानिक कारणों से उस दिन उभर उठा था वह बड़ी तीव्रगति से विलीन होने लगा...

"यही कारण था कि महीप जब टिकट खरीदकर उसके पास पहुँचा तब वह चीख मार उठी। उसका प्रतिदिन के जीवन का वही साधारण व्यक्तित्व कराह उठा जिसमें एक पल के लिए भी माँ के स्नेह-बंधन से मुक्त होने का साहस कभी नहीं हुआ, कभी इच्छा ही नहीं हुई।"

नीलिमा के मन के द्वन्द्व को दिखाकर लेखक ने सिद्ध कर दिया है कि नारी के लिए मातृत्व स्नेह का त्याग सरल नहीं है। मातृत्व अपने में कितना महान् है—और कितना महान् है उसका आकर्षण जो जीवन के सर्वश्रेष्ठ प्रेम (दाम्पत्य प्रेम) को भी ठुकराने की क्षमता रखता है। इसीलिए तो माँ की बात मान कर नीलिमा ने अपने उपचेतन मन में बैठे प्रेमी महीप की उपेक्षा कर ठाकुर साहब से विवाह कर लिया।

यहीं पर कथानक चरमोन्नत अवस्था पर पहुँच जाता है। नीलिमा को खोकर महीप का जीवन विचित्र अप्रत्याशित दिशा को ग्रहण करता है। उसकी हिंसा प्रवृत्ति भी भड़क उठती है। यह सर्वथा मनोवैज्ञानिक है। प्रेम के क्षेत्र में पराजित हीरो संसार भर को ही फूँक देना चाहता है। महीप द्वारा गुप्त दल का संगठन, तलवार के क्रॉस वाले चिह्न का प्रतीक बिल्ला और खलेकता पूर्ण आतंक सब उसकी परिस्थितिजन्य असली मनोदशा के ही प्रतीक हैं।

अन्त चक्र का आविष्कार जहाँ शिल्प में एक तन्मयता सा ला देता है वहाँ इस उपन्यास के मुख्य कथानक एवं पात्रों के जीवनगत दृष्टिकोण में भी एक महान् परिवर्तन प्रस्तुत करता है। महीप का पुनः अहिंसावादी बनकर पत्नाओं के गृह में पग धर पाना कर ... भावनाएँ सहसा सोमदत्त हरन ... के सम्मुख आ जाते हैं।

मुख्य कथानक में नीलिमा की मनोदशा; उसके जीवनगत दृष्टिकोण और अनुभवों को जिस कलात्मक ढंग से लेखक ने पाठकों के सम्मुख रखा है वे वास्तव में प्रशंसनीय हैं। अन्त में नीलिमा की मनोदशा और दुखान्त जीवनी को दुखान्त कर देने का महीप का अन्तिम प्रयास स्वाभाविक होते हुए भी अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

यह तो हुई मुख्य कथानक की बात, जिसमें नीलिमा, मधुर मानव, महीप और सरला ने सक्रिय भाग लिया है, कथोपकथन है और ... की कहानी ... की गई है—परन्तु यही तो सब कुछ नहीं है। इसके अतिरिक्त भी कथानक

गी. कुछ उपकथाओं की सृष्टि केवल मनरंजन मात्र है, जैसे सुषमा-परिवार का हृदय को झकझोर कर देने वाला वर्णन हमें कहीं नहीं मिलता? रमा को केवल बीमार बनाकर छोड़ दिया गया है, अन्यथा उसके माध्यम आदर्श नारी की कथा को भी बढ़ाया जा सकता था और नहीं तो ठाकुर साहब द्वारा कृषक को शिकार ही बना कर दिखाया जा सकता था। अथवा मातृ-भक्ति में प्राण अर्पित करते दिखाया जाता। केवल बीमार दिखा कर कम कर जाना पर्याप्त नहीं था।

शोभना का साथ छुड़ाने पर समस्त कथानक आलोचना का विषय है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने आवश्यकता से अधिक मनोविश्लेषण तथा व्याख्यान दिये हैं धीरज की डायरी में लम्बे-लम्बे हृदय गान, शारदा देवी द्वारा युद्ध जनित अवस्था का दिग्दर्शन कराने के लिए लम्बे-लम्बे भाषण और प्रतिमा के वर्णन रोचकता पर कुठाराघात करते दीख पड़ते हैं। वैसे लेखक ने कहानी में उत्सुकता को बनाये रखा है और पाठक मग्न है महीप, शीलिमा और ठाकुर साहब का अन्त जानने की इच्छा से कथा को बीच-बीच में ऊबता हुआ भी पढ़ता जाता है। यह तो हुई साधारण रुचि की बात। असाधारण रुचि एवं विवेकशील पाठक के लिए कथा का परम आकर्षक तत्व और प्रश्न उठाती और उनका समाधान करती चलती है।

ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह

ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह के रूप में हम सामंतशाही के प्रतीक नृशंस भारतीय जमींदार के दर्शन करते हैं। अपने घोर नाटकीय कृत्यों द्वारा वह इस लोक का राक्षस कहा जा सकता है। उसके भीतरी और बाह्य रूपों में आकाश-पाताल का अंतर है, जिसके दर्शन उपन्यास का नायक महीप प्रथम दर्शन में ही कर लेता है।

"प्रात में प्रारम्भ ही से उसके (महीप के) अन्तःकरण को इस बात का एक अव्यक्त संकेत सा मिल रहा था कि ठाकुर लक्ष्मी नारायण सिंह के भीतर ऊपरी गम्भीरता की शालीनता के बावजूद एक भयंकर धूर्त और खतरनाक व्यक्ति के संस्कार छिपे हुये हैं; जो उनकी कंजी आँखों के माध्यम से असावधानता के क्षणों में व्यक्त हो पड़ते हैं—।" पृष्ठ ४६

किन्तु उनका वास्तविक उल्लेख लेखक अपने कुछ मुख्य पात्रों के श्रीमुख से कराता है, जिनमें धीराज, शारदा देवी और नीलिमा ही प्रमुख हैं। शारदा देवी के शब्दों में ये बड़े जालिम, भयंकर धूर्त और रंगे सियार हैं। यदि इनके कुचक्रों की एक सूची तैयार की जाये और इनकी प्रत्येक काली करतूत का विस्तृत इतिहास तैयार किया जाये तो समाज का रोंआ-रोंआ आतंक से सिहर कर बबूल के काँटों की तरह खड़ा हो जाय।

हत्या करने अथवा कराने में यह सिद्धहस्त हैं। धीराज, गौरी, समिधा की लोम-हर्षक मृत्यु का एक मात्र दायित्व उन पर आता है। कुमारियों के कौमार्यत्व से खिल-वाड़ करना ही इस पुरुष में राक्षसीय प्राणी की दिनचर्या जोड़ देता है। पुरुष कितना कपटी, भयंकर और नृशंस हो सकता है यह जानना हो तो पढ़ो धीराज की डायरी को (जो पूरी सामने नहीं आती, कुछ इसके द्वारा फाड़ भी दी जाती है)। सुनो शारदा के व्याख्यान को (जो वह महीप को देती है) और जानो नीलिमा की कहानी को,जो वह महीप को सुनाती है।

विषैली विलासिता के बीच पड़ा यह सामंत समस्त सामंतवादी दृष्टिकोण से लबालब भरा पड़ा है। गरीब रियासत की दीन-हीन जनता के साथ बर्बरता का व्यव-हार; अपने ही घर में अपनी ही पत्नी नीलिमा के साथ अमानुषिकता का चलन; शराब पीकर नशे में घोर पातक कृत्य करने वाला यह प्राणी एक निन्दनीय कीट से भी हेय है, किन्तु विचित्र है यह बात कि समाज पूजित है—क्यों? इसलिए कि कुछ सामाजिक अधिकार और आर्थिक प्रभुत्व का बल उसे प्राप्त है, जिसके द्वारा नैतिकता को भी उसने अपनी चेरी बनाकर रखा है।

पाप का घड़ा पूरी तरह भर कर ही फूटता है, यह किम्वदंती इस पर पूरी तरह लागू होती है। दो युवती वेश्याओं की बगल में खड़ा यह पिशाच जन-क्रान्ति का शिकार बनता है और जीवित रूप में ही जलने के कारण मृत्यु से भी भयंकर विभी-षिका के आँचल में जाकर हस्तपताल मे पड़ा नजर आता है।

महीप :

महीप को हम निर्विवाद रूप से उपन्यास का परम आकर्षक चरित्र मान सकते हैं। नायक नहीं; नीलिमा आदि सभी नायिकाओं का स्वत्व अपने अधिकार में रखने

के कारण। ठाकुर लक्ष्मी नारायणसिंह इस उपन्यास के खल नायक सिद्ध होते हैं। ठाकुर के प्रतिरोध में खड़े महीप को प्रति नायक भी पुकार सकते हैं।

महीप एक अन्तर्मुखी प्राणी है, जो विचारक है, भावुक है और अन्तरदर्शक भी। वह काव्य प्रेमी संवेदक भी है। वास्तविकता से परे कल्पना और आदर्श के लोक में वास करने वाला यह जीव जीवन की यथार्थ चट्टानों से टकरा कर प्राण तक खो बैठता है, किन्तु अपने आदर्शों से डिगता नहीं; हाँ सिद्धान्तों मे परिवर्तन अवश्य लाता है, हिंसक प्रवृत्ति का त्याग कर अहिंसा का पुजारी बन जाता है।

शारदा देवी के आगे वह अपना हृदय तक खोल देता है—"मैं सचमुच इधर किन्हीं कारणों से इतना अधिक आत्मगत रहा हूँ कि अपने 'अकेलेपन के बोझ' को संभालने के सिवा और कोई चिंता ही मुझे नहीं रही है, अतः आप निश्चय ही अपने प्रति मेरी उदासीनता के लिए मुझे क्षमा कर देंगी।" पृष्ठ १४०-१४६

प्रेम की अन्तर्वेदना से पीड़ित यह प्राणी सरल भी है और सदाचारी भी। बाहर से देखने में निर्मूक, अचंचल और सर्वथा शांत प्रकृति का यह प्राणी भीतर से कितना लोमहर्षक है यह पीछे कथानक-विवेचन में स्पष्ट कर दिया गया है।

हाँ! भीरु हम इसे अवश्य कहेंगे। धीराज की कथा से भी शिक्षा न लेकर यह कोरे आदर्शवाद और थोथे सिद्धान्तों के माध्यम द्वारा नीलिमा अथवा प्रतिमा को प्राप्त करना चाहता है। क्रान्तिकारी होने का दावा करने वाला यह व्यक्ति हृदय से भीरु है, तभी तो मन की बात खुल कर कुछ बनाकर नारी का मन जीतने मे असफल रहता है। अणु बम्ब के आविष्कार और उसके प्राण-घातक स्वरूप की बात सोच कर ही अपनी मानसिक दुर्बलता को और बढ़ावा देकर हिंसक दृष्टिकोण को ही बदल डालता है, जिससे न केवल इनकी पार्टी को अनन्य हानि होती है अपितु इसे स्वयं जीवन की भयंकरतम यातना सह कर जीवन-दान करना पड़ता है। वह एक नहीं दो-दो रमणियों के अन्तर्मन में बैठा हुआ है परन्तु चेतन मन मे से निर्वासित कर दिया जाता है खदेड़ दिया जाता है।

नीलिमा

जोशी जी के नारी पात्रों की विशिष्ट चारित्रिक परम्पराएं हैं। वे पूर्ण रूपेण स्वतन्त्रता प्रेमी हैं; प्रेम को व्यक्तिगत मानसिक प्रश्न मानती हैं और उसी के अनुसार जीवन-व्यापार चलाती भी हैं, किन्तु कहीं-कहीं सामाजिक अथवा पारिवारिक चका-चौंध का शिकार हुई वे अपने उपचेतन मन की अवमानना कर बैठती हैं और जीवन की विषम परिस्थिति का शिकार हो जाती हैं—उन्हों में से एक नीलिमा है, जो 'निर्वासित' की नायिका है।

नीलिमा को हम निर्विवाद रूप से नायिका तो नहीं मान सकते क्योंकि उसके

सम्मुख शारदा देवी हैं, प्रतिमा है किन्तु उसे अन्तर्द्वन्द्व प्रधान नायिका अवश्य पुकारा जा सकता है। उसकी अन्तर्वेदना को ही लेखक ने सर्वोपरि रखा है जो शारदा, प्रतिमा और महीप सभी पर छा गई है।

कथा के आरम्भ में हम नीलिमा को एक सर्व सम्पन्न परिवार की चंचल बालिका के रूप मे देखते हैं, जो चंचल होने के साथ-साथ वाक्पटु भी है। महीप को अपने घर पर आया देखकर वह अपनी सहज अधिकारपूर्ण व्यंग्य-वाणी में कहती है—"आदाब अर्ज़ है—मैंने सुना है कि जनाब आज ही तशरीफ लाये हैं और कल ही सुबह हम लोगो से बिना मिले ही चले जाने का इरादा कर रहे हैं। क्या यह सच है ?" कितना बड़ा व्यंग्य है ? इससे पूर्व वह टैगोर टाउन मे महीप से मिल भी चुकी है, किन्तु फिर भी कहती है, "मैंने सुना है"—यह नहीं कहती कि मैंने देखा है।

यौवन के आगमन के साथ-साथ उसमें जहाँ सौन्दर्य का निखार होता है वहाँ अभिनय-कला मे भी उसने निपुणता प्राप्त की—लेखक लिखता है""महीप को मन-ही-मन स्वीकार करना पड़ा कि अभिनय-कला में इस कदर निपुण दूसरी कोई लड़की उसने अपने जीवन मे नहीं देखी। पृ० २८

बात पलटने की कला मे वह पूर्णतया निपुण हो जाती है। ठाकुर साहब को वह एक स्थान पर कहती हैं—"वह एक साहित्यिक रहस्य है, जिसें आप""जिसमें आपको कोई दिलचस्पी नही हो सकती।" पृ० ३२—स्पष्ट ही वह कहने जा रही थी जिसे आप समझ नही सकते।

यही निपुणता उसे अति दम्भी बना देती है और अहंवादी भी। इसका अहंवाद भी परिष्कृत अहंवाद नहीं; इसकी क्रान्तिकारी भावना भी सशक्त युगान्तकारी भावना नही; जो जीवन को उच्चतम सोपान पर ले जा सके, अपितु मन से साधारण नारी-सुलभ स्वभाव की अनुवरी नारी के रूप मे इसे हम देखते हैं जो ठाकुर की बाह्य सुसभ्यता; शिष्टता पर मुग्ध हो अपना भविष्य सर्वदा के लिए अंधकारमय बनाकर आत्म-ग्लानि और घृणा की प्रताड़ना सहती है।

शारदा

शारदा कलियुगी सीता अथवा सावित्री है। भारतीय नारीत्व का उज्ज्वल प्रतीक है। नृशंस ठाकुर साहब के समस्त पापाचार का दण्ड देने के लिए विधाता ने इस महान् नारी की सृष्टि की है। स्वभाव से सरल बालिका समाज एवं परिस्थितियों के चक्कर में पिस कर कहती है :

"उस नर-पिशाच से अपनी दीदी और समिधा की तरफ से बदला लेने के लिए हर घडी इस कदर बेचैन रहने लगी कि मुझे ऐसा जान पड़ता था जैसे असंख्य सुइयाँ अपनी चुभन से मुझे उकसा रही हों। पर अपनी नारी हृदय की सहज प्रसन्न-

शारदा कहीं सीधे तो कहीं टेढ़े ढंग से कथा-सूत्र को सम्भाले हुए है। रूपा, नीलाक्ष, ठाकुर, महीप और नीलिमा तथा प्रतिमा सभी के चरित्र की परम्पराओं से वह परिचित है। वह समय-समय पर सभी का चारित्रिक विश्लेषण करती है। संक्षेप में यह कहते हैं कि मन पर एक अमिट छाप लगा देने वाला उसका चरित्र है।

प्रतिमा :

नीलिमा की यह छोटी दीदी उपन्यास में अपना विशिष्ट महत्त्व रखती है। जहाँ घर पर घर में वह एक विक्षिप्त नारी के रूप में दीख पड़ती है, वहाँ घर से बाहर आने पर तो वह विचित्र रूप धारण कर लेती है। महीप को प्रेम के अयोग्य पाकर अपने काम-सूचक प्रेम का उदात्तीकरण कर लेती है और प्रेम की दमित इच्छाओं को क्रांतिकारी भावावेग के रूप में परिवर्तित कर शारदादेवी के सहयोग से ठाकुर सदृश्य नृशंस प्राणी पर वज्रापात करती है।

समस्याएँ :

समस्याएँ दो प्रकार की हुआ करती हैं—शाश्वत और सामयिक। नारी के पतन की समस्या प्रमुख शाश्वत समस्या है, जिस पर जोशी जी ने मनन किया है और अपनी कथाओं के द्वारा इसका विश्लेषण कर दिया है। नारी के पतन के दो प्रमुख कारण आपने बताये हैं, जो 'निर्वासित' में दिये गये हैं।

आर्थिक विवशता

संरक्षण का अभाव

आर्थिक विवशतायें अपने आप में महत्वपूर्ण हैं; इस विज्ञानवादी प्रगति-युग में बिना आर्थिक उन्नति प्राप्त किये समाज में किसी भी प्रकार से जीवन बिताना

मुक्तिपथ

जोशीजी के घृणामयी से संन्यासी तक के उपन्यास फ्रायड अनुसार कुंठित काम के वासनाओं के प्रवाह की विभिन्न स्वरूपों की लम्बी कहानियां हैं, आभ्यान्तरिक द्वन्द्वों के चित्रण हैं। मुक्तिपथ (सन् ४७ के पश्चात् की) संन्यासी की निष्क्रियता के प्रति हुई प्रतिक्रिया है—जो इतनी गहरी है कि अति कर्मण्यता के रंग में रंगी गई है। इसमें आभ्यान्तरिक संघर्षों के साथ-साथ बाह्य परिस्थितियाँ एवं प्रभाव भी चित्रित किये गये हैं। आन्तरिक द्वन्द्व व्यक्ति के सम्मुख मानसिक समस्याएँ प्रस्तुत किया करते हैं, उसके मन को उत्तेजित करते हैं और बाह्य जीवन को अत्यधिक अंश में प्रभावित करते हैं—बाह्य परिस्थितियाँ एवं प्रभाव व्यक्ति के दैनिक कार्य-कलाप-साधारण दिनचर्या चलाते हैं, उसकी क्षुधा मिटाते हैं और भरण-पोषण में सहयोग देते हैं। दोनों के समन्वय से जीवन को एक नई दिशा मिल सकती है—इस मत का प्रतिपादन 'मुक्तिपथ' में किया गया है।

'मुक्तिपथ' में जोशीजी ने एक ऐसे क्रान्तिकारी युवक की मर्मस्पर्शी दशा का चित्रण किया है जो जीवन की बाह्य परिस्थितियों द्वारा ठुकराया जाकर मन की ग्रंथियों में जकड़ा जाता है। बी० ए० पास करने पर नौकरी न मिलने के कारण बाह्य रूप से उत्तेजित, आभ्यांतरिक मन से अस्वस्थ, जब वह अमीनाबाद पार्क में निरुद्देश्य चक्कर लगाता हुआ आत्मविश्लेषण करता है तब पाठक को उससे सहानुभूति हो जाती है। उसे पाठक की सहानुभूति प्राप्त करा कर ही लेखक उसके जीवनगत अनुभवों पर प्रकाश डालता है, तथा उसकी मनोग्रंथियों को प्रस्तुत करता है। राजीव के साथ-साथ सुनन्दा की मानसिक समस्याएँ और अनेक मनोग्रंथियाँ भी इस उपन्यास में चित्रित की गई हैं। ये अधिक सजीव तथा आकर्षक बन पड़ी हैं। इन दो प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त विजय तथा प्रमीला की मानसिक दशा तथा दिनचर्या पर भी पर्याप्त रूप से प्रकाश डाला गया है—इन सब की मनोग्रंथियों से उद्भूत कथानक का विवेचनात्मक अध्ययन एवं विश्लेषण करना है।

राजीव और सुनन्दा के आपसी आकर्षण, सुझाव और नवजीवन की कल्पनापूर्ण कथा ही मुख्य कथानक का सृजन करती है। ३४ वर्षीय युवक होने पर भी राजीव नव यौवन की चपल, मस्त और रंगीन वायु की अवहेलना कर प्रौढ़ पुरुष बन जाता

[illegible] की प्रारम्भिक चेष्टाएं, अतीत-स्मृतियाँ भी कम आश्चर्यजनक नहीं [illegible] सौन्दर्य के प्रति आकर्षण, अपने रूप से दूसरों को प्रभावित करते रहने [illegible] उसके स्वप्न-विलासी जीवन की प्रतीक कही जा सकती हैं—किन्तु यही [illegible] युवक जब जीवन की यथार्थ आंधी के केवल एक झोंके से यथार्थोन्मुख [illegible] का वेश और कई रोमांचकारी घटनाओं के चक्र-व्यूह में घूमता हुआ काले [illegible] की सजा काट पुनः समाज के सामने आता है तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि उसे [illegible] है वह यथार्थोन्मुख क्यों हुआ ?

[illegible] प्रश्न का उत्तर सहज रूप में उपन्यासकार ने स्वयं दे दिया है कि पिता की मृत्यु हो जाने के कारण पितृ-स्नेह से वंचित राजीव युवक होते-होते मातृ-प्रेम से भी वंचित हो गया—एक-एक कर पिता, माँ और बहिनों को खो-कर उसके मन में [illegible] प्यार के स्थान पर कठोरता यथार्थोन्मुख प्रवृत्ति घर करती चली गई, वह क्रान्तिकारी भावना ले समाज में अपना स्थान ढूंढने लगा।

किन्तु क्रान्ति की असफलता पर स्वयं पिसकर भी उसने क्या पाया ? अन्त-स्तल में प्रलय की आग और एक घोर निराशा से भरी भावना। उसके गले में फूलों के हार डालने की बजाए समाज ने उसके अवचेतन मन में घृणा और ग्लानि के काँटे चुभो दिये। एक उच्च पदाधिकारी उमाप्रसाद के घर डेरा डालकर जब दिन भर वह नौकरी की खोज में भटक नित नवीन अनुभूतियों से गुजरता हुआ—वह अनु-

वापिस घर लौटता होगा तब क्या होती होगी उसके मन की दशा ?

वे लोग ही कर सकते हैं जो स्वयं बेकार हों और पर-आश्रय में जिन्होंने सुनी हों।

राजीव का सुनन्दा के प्रति जो आकर्षण था वह एक प्रेमी का प्रेमिका के प्रति आकर्षण था ही ऐसा हम नहीं पाते। वह एक ऐसे पुरुष का आकर्षण है जो सहृदय प्रेमी नहीं, मगर रसिक नहीं—कठोर पुरुष, अहंवादी और अतिमानव का आकर्षण है, जो नारी को समझना चाहता है, नारीत्व को नहीं। राजीव जीवन मे कभी भी सुनन्दा को न तो सहज प्रेम दे सका और न उसे स्वयं पा ही सका। इसका भी कोई कारण रहा होगा—उसे खोजना है।

लेखक के अपने शब्दों मे राजीव शुरू से ही सुनन्दा से भयभीत सा रहने लगा "......राजीव सुनन्दा के व्यक्तित्व की अथाह गहराई से डरता था। दूसरे व्यक्तियो के आगे वह अपने अन्तरतम की समस्त विद्रोही शक्तियों को एकत्रित करके उनके हृदय में एक अज्ञात भय और सम्भ्रम का भाव सचारित करने में समर्थ होता था। पर इस तेजस्विनी के आगे उसकी सारी शक्तियाँ छिन्न-भिन्न हो जाती थी और वह अपने को अत्यन्त क्षुद्र और घृणित समझने लगता था।" पृष्ठ २१-२२—धीरे-धीरे कमजोरी की यह भावना एक ग्रन्थि बन जाती है। एडलर के मतानुसार हम सभी हीनता की ग्रन्थि से ग्रसित रहते है और इसी के परिष्कार हित प्रयत्नशील रहते हैं। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या राजीव हीनता की इस भावना का कोई परिष्कार कर पाया? उत्तर मिलता है; नहीं। वह तो ज्यो-ज्यो सुनन्दा के सम्पर्क मे आता है उसके कर्म निष्ठ जीवन से प्रभावित होता चला जाता है। कर्म की प्रेरणा भी वह उसी से पाता है और अन्त में अपने को कर्म मे इतना लीन कर देता है कि कर्म से परे उसे विश्व में कुछ दिखाई ही नहीं देता—जिस साधना मे वह लगा है उसमे व्यक्ति के अपने सुख-दुख का कोई स्थान ही नहीं दीखता"—सुनन्दा से वह स्पष्ट शब्दो मे कह देता है : जिस साधना को लेकर हम लोग चल रहे हैं उसमें व्यक्तिगत सुख-दु:ख की कोई गुञ्जाइश नहीं है।" पृष्ठ ३६१.

और यहीं एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न उत्पन्न हो जाता : क्या मनुष्य जीवन मे

प्रेम, करुणा, आदि सहज भावनाओं की अवहेलना कर कर्म-रत रह सफलता प्राप्त कर सकता है—और यदि कर सकता है तो उस सफलता का जीवन में क्या मूल्य है? जोशी जी ने अपने इस उपन्यास में बड़े मार्मिक शब्दों में इन प्रश्नों का उत्तर दिया है। राजीव, सुनन्दा और देवराज आदि का सहयोग पाकर मुक्ति-निवेश नामक आश्रम की स्थापना करता है। अपने अडिग धैर्य और अथक परिश्रम से वह चिर बंजर भूमि को उर्वर बना देता है और अपने कर्म-शील पथ पर बिना किसी और तरफ ध्यान दिये बढ़ता चला जाता है।

सुनन्दा ने जीवन का सूक्ष्मता के साथ अध्ययन भी किया है और अनुभव भी। कर्म-रत जीवन उसने बिताया भी है और व्यतीत भी करना चाहती है, किन्तु कर्म के अतिरिक्त भी कुछ है जिस पर वह बारीकी के साथ मनन करती है "...... वह सोचने लगती कि उस परिश्रम की क्या आवश्यकता है जिसके फलस्वरूप एक क्षण के लिये भी दम लेने का अवकाश वह नहीं पाती—दिन रात खटना, केवल खटना। जीवन की परिपूर्णता क्या केवल इसी प्रकार खटकते रहने में समाहित है? मानवीय चेतना की रागमयी प्रवृत्तियां, मानव-जीवन के रंग भरे पहलू—ये सब क्या एक दम निरर्थक हैं?" पृष्ठ ११८.

उधर राजीव कर्म और कठोर परिश्रम के महत्व पर जोशीले भाषण देता और बताता है, "कर्म ही जीवन है और कर्म हीनता ही मृत्यु। इसके अतिरिक्त जीवन और मृत्यु की परिभाषा झूठी कविता के रंगीन माया जाल के अतिरिक्त और कुछ नहीं।" पृष्ठ ३२१

अढ़ाई वर्ष तक के कठोर जीवन की अनुभूति कर सुनन्दा के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन आ गया। वह सतत कर्म को एक व्यसन समझने लगी और एक दिन राजीव से कह बैठी......."जी चाहता कि मैं कुछ समय के लिए अपने सारे उत्तरदायित्वों को भूल जाऊँ, समस्त कार्य-भार से चिंता मुक्त हो जाऊँ, और अपने अन्तर के निगूढ़ स्थान में प्रवेश करके केवल अपने व्यक्तिगत सुख-दुःख की भावनाओं में मग्न हो जाऊँ। क्या तुम्हारे मन में किसी भी क्षण ऐसी भावना नहीं जगती?"

"नहीं नन्दा," स्नेहपूर्ण मुसकान झलकाते हुए राजीव ने कहा, मेरे मन में इस तरह की इच्छा कभी क्षण-भर के लिये भी नहीं जगती। यदि मेरे मन में ऐसी इच्छा जोर मारने लगे और मैं उस इच्छा के प्रति आत्म-समर्पण करके उन सब कार्य भारों को कुछ समय के लिए भूल जाऊँ जिन्हें मैंने स्वेच्छा से ग्रहण किया है तब उन क्षणों को मैं विश्राम न मानकर यातना की घड़ियाँ ही मानूँगा।"

सुनन्दा और राजीव के दृष्टिकोण का यह अन्तर बढ़ता ही चला जाता है और अन्त में जाकर एक बड़ा तर्क-वितर्क दोनों में चलता है जो उनके लिए भयंकरतम

रूप धारण कर लेता है : राजीव द्वारा साधना-पथ व्यक्तिगत सुख-दुःख की बात का विरोध सुन कर वह कहती है :

"तुम भ्रम में हो, राजीव बाबू और अपने इस भ्रम को एक दिन स्वयं महसूस करोगे, यह भविष्य वाणी मैं कर देती हूँ। जिस वज्र पाषाण की सुदृढ़ इमारत के निर्माण की योजना के पीछे तुम पागल हो, उसके विरुद्ध मुझे कुछ नहीं कहना है; पर यदि तुम्हारी धारणा यह हो कि वह इमारत बिना स्नेहसिक्त गारे के या बिना अन्तर्वेदना की नमी के जम जायेगी, तो इससे बड़ी भूल दूसरी नहीं हो सकती।"

सुनन्दा के इन शब्दों द्वारा लेखक का यह मत स्पष्ट झलकता है कि मनुष्य जीवन में सहज स्नेह का त्याग कर, उसकी अवहेलना कर, सफल नहीं हो सकता और यदि वह सफल होता भी है तो उस सफलता के लिए जो मूल्य वह देता है—बड़ा भारी है—अधिक है।

राजीव सफलता के सोपान पर चढ़ता है—ठीक है, उसका 'मुक्तिनिवेश' परिश्रम और साधना की एक प्रतिमूर्ति है—सत्य है, किन्तु राजीव की सफलता का क्या मूल्य पड़ा। सुनन्दा की दृष्टि में महान् बनकर भी अन्त में वह हीन रहा। उसने अति मानव (Supper man) बनने की चेष्टा की—बना भी, किन्तु उसकी आशाओं का महल अन्त में एक क्षण में ढह गया।

जीवन में न अत्यधिक देवत्व चाहिए न घोर दानवत्व, न अति परिश्रम चाहिए न साधनाहीन निकृष्ट दिनचर्या; आवश्यकता है समश्रम की, आवश्यकतानुसार विश्राम की—व्यक्ति के अन्तर्मन को पढ़, उसके अनुकूल आचरण करने की—राजीव ने अति श्रम किया तो सुनन्दा को खोया, अपने अन्तर्मन की ज्वाला को दबाया तो अन्त में वह विषादात्मक शब्दों में कराह उठा :

"सुनन्दा, मुझसे सचमुच बड़ी ही भयंकर भूल हुई है, उसके लिए मुझे क्षमा कर दो। जाओ मत, रह जाओ! फिर यह भूल न होगी।"

"क्यों न होगी—यह तो वह भूल है जो संसार का पुरुष-मात्र नारी-मात्र के प्रति सदैव से करता आया है—इसमें क्षमा के लिए स्थान रह ही कहाँ जाता है? अढ़ाई-तीन वर्ष साथ रह कर भी राजीव का सुनन्दा के हृदय को न समझना, या समझते हुए भी उसे दबाते (Suppress) चले जाना—कहाँ का न्याय है? इसमें कौन सा आदर्श है? जोशीजी ने युग-युगान्तर से पीड़ित नारी-आत्मा को लाकर सुनन्दा की देह में ला बिठाया है और फिर उसके प्रचण्ड स्वरूप को पहचानकर स्वेच्छाचारी, अहंवादी, घोर अनिश्चयवादी, अति मानव के मोह-जाल से मुक्त करा कर 'मुक्तिपथ' की ओर अग्रसर कर दिया है। इसमें हमें भारतीय नारी के स्वाभिमान की विजय, आत्मनिर्भरता का प्रदर्शन और मानसिक सबलता के दर्शन मिलते हैं।

सुनन्दा-राजीव सम्बन्धी कथानक में एक-दो प्रश्न और भी हैं जिन पर विचार करना है। सुनन्दा-राजीव वार्तालाप अधिकतर उच्च स्तर के कलात्मक वाक्यों से पूर्ण हैं; फिर भी उनमें स्वाभाविकता है—कृत्रिमता की गन्ध बहुत ही कम है। एक स्थान पर जब सुनन्दा कहती है, "यह तो आपने एक अच्छा खासा लेक्चर दे डाला" तब राजीव अट्टहास कर उठा—बोला—"सोचता हूँ कि साधारण व्यक्तियों की तरह ही हँसूँ और हल्के-फुल्के ढंग की बातें किया करूँ, पर जब किसी से बातें करने लगता हूँ तो पंडिताई बघारने लग जाता हूँ। जीवन भर अकेला रहा हूँ न, इसलिए अकेले में तरह-तरह के विषयों पर कुछ अनोखे ढंग से सोचने का आदी हो गया हूँ।"

सुनन्दा-राजीव का रात के सन्नाटे में हास्य, वार्ता, आमोद और प्रमोद नैतिक, पारिवारिक और सामाजिक दृष्टि से आलोचना का विषय है। कृष्णा द्वारा पकड़े जाने पर राजीव का भीगी बिल्ली बनना और सुनन्दा का सिंह-गर्जन कर कृष्णा जी को आतंकित करना पाठक को एक नये लोक में ले जाता है। अपने लज्जा और निर्वासित नामक उपन्यासों में भी इसी दृश्य जैसी घटनायें जोशी जी ने सँजोयी थीं, किन्तु उनमें नायिकाओं का भयभीत हो जाना जहाँ भारतीय नारी के अबलापन का द्योतक रूप लेखक ने दर्शाया है वहाँ भारतीय नैतिक कुंठाओं से जकड़ा हुआ वह स्वयं को भी पाता है; ऐसा स्पष्ट ही है, किन्तु धीरे-धीरे उसकी ये कुंठाएँ खुलती गई हैं उसका अध्ययन, मनन और चिंतन विस्तृत होता गया है और दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है, अब वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि यदि मन शुद्ध हो तब चाहे दिन हो या रात; चाहे भीड़ हो या एकांत, पुरुष और नारी स्वस्थ रूप से निडर होकर वार्ता कर सकते हैं विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। अपने मत की पुष्टि उसने सुनन्दा के इन शब्दों द्वारा करा दी है:

"अपराध न करने पर भी जो व्यक्ति अपराध स्वीकार करता है वह कायर होता है, राजीव बाबू!" पृ० ४६—वह कृष्णा जी के आगे भीगी बिल्ली बने राजीव को सचेत कर देती है—उसे स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देती है। जोशीजी के मतानुसार अब किसी भी पुरुष का किसी भी नारी के साथ शुद्ध मन के साथ वार्तालाप पूर्णतया न्यायोचित एवं नीतिपूर्ण है, जो राजू के मन की अप्राकृत ग्लानि, दुःख और लज्जा को धो डालती है।

कृष्णा के मन में उपस्थित विद्वेष, क्रोध और घृणा जहाँ सुनन्दा के मन पर कठोर आघात करते हैं वहाँ उसके उपचेतन में एक संस्कार उत्पन्न करते जाते हैं—वह अपने बंधनों से घबरा उठती है, दमित कामवासनाएँ एक दम से भड़क उठती हैं और उनका निष्कर्मन वह राजीव के हाथों में पाती है। तभी तो थोड़ा सा विरोध (नारी सुलभ लज्जा के कारण) करने के उपरान्त प्रमीला की बात मानकर वह राजीव के साथ नये जीवन को अपना लेती है, क्योंकि इस नये जीवन में वह अपनी दमित

इच्छाओं की तृप्ति की राह पाती है। वह स्पष्ट शब्दों में इस तथ्य का उद्घाटन अपनी सखी प्रमीला से कर देती है:

"तुम्हें क्या लिखाऊँ सखी, अकस्मात ही इतने दिनों तक मेरे मन में कहीं-न-कहीं यह आशा बनी हुई थी कि मेरे भीतर के जलते हुए रेगिस्तान में, जहाँ चिनगारियों की राख उड़ाते हुए बालू के कणों के सिवा और कुछ नहीं है, वहाँ कहीं एक कोने में थोड़ी-सी हरियाली छा जाती, तब शायद जीवन दूसरे ही रूप में सामने आया होता। लगातार सोचकर जब उनके साथ यहाँ आई तब एक अस्पष्ट—एक दम अस्पष्ट-सी इच्छा भी मेरे मन में वर्तमान थी कि शायद उस हरियाली के छाने का समय आ गया है। पर ... आज ढाई वर्ष बीत चुके हैं और वही व गित-प्रसारित जलती हुई रेत आँधियों के वेग में साँय-साँय, भाँय-भाँय की आवाज से उड़ी चली जा रही है। कई पीढ़ियों से बंजर पड़ी हुई जमीन तुम्हारे राजीव बाबू के दुर्दम कर्मोद्यम से आज लहलहा रही है, पर मेरे भीतर की जमीन एकदम सूनी और सूनी पड़ी है। बालू रेत बालू। पानी की एक बूँद भी कहीं नहीं है—हरियाली की कौन कहे?" पृ० १८६-८७

यह अस्पष्ट-सी आशा—मन में हरियाली छा जाने की आशा, सुनन्दा के उपचेतन मन की दमित काम-वासना के अतिरिक्त और कुछ नहीं—इस आशा को निराशा में परिवर्तित होता देख कर ही उसने आशा-केन्द्र राजीव का साथ छोड़ मुक्ति-पथ ग्रहण कर लिया।

यह तो हुई राजीव-सुनन्दा की मनोदशा की बात, इसके अतिरिक्त प्रमीला-विजय की उपकथा भी कम महत्वपूर्ण नहीं। प्रमीला विजय की ओर झुकी—इसकी भी एक आश्चर्यजनक कहानी है, जिसका उद्घाटन स्वयं प्रमीला करती है। विजय एक उच्च पद पर आसीन अफसर था, जिसका आना-जाना कृष्णा-परिवार में होता ही रहता था—वह प्रमीला से प्यार भी करता था, किन्तु उससे अधिक उसके धन पर उसकी निगाह थी। यह बात न थी कि प्रमीला को इसका पता न हो। एक दिन राजीव ने सब की उपस्थिति में उसका (विजय का) चरित्रोद्घाटन घर की भरी सभा के बीच कर दिया था फिर भी प्रमीला न सभली—क्योंकि वह सभलना न चाहती थी। उसके उपचेतन मन में विजय घर कर चुका था। उसमें वह अपने विनोदप्रिय स्वभाव की तृप्ति पाती थी—तभी विवाह तक के लिए तैयार हो गई—वह सुनन्दा राजीव से स्वयं स्वीकारोक्ति रूप में कहती है:

"मैं इस विवाह के लिए राजी यह सोचकर हुई थी कि मुझे एक आदमी ऐसा मिल गया जिसे मैं जी भर कर चिढ़ा सकती हूँ, जिस पर तीखे व्यंग्य कस सकती हूँ और जो मेरे उन व्यंग्यों को अंत तक प्रेमपूर्वक सहन करने की सामर्थ्य रखता है। पृ० २७६

हाय रे मानव—तेरी बुद्धि की विलक्षणता—हाय रे मन तेरे रूप की अकल्पनीय माया, जो तू कभी-कभी नवीन प्रयोग करने से बाज नहीं आता और अपने को जीवन की भयंकरतम स्थिति में छोड़ देता है और वह भी जान-बूझकर। प्रमीला ने विवाह को गुड्डे-गुड़ियों की क्रीड़ा समझा—उसके दायित्व, उसकी गति, उसके सूक्ष्म रूप को पहिचाने बिना ही उसमें कूद पड़ी। ऐसी ही एक गलती जोशी जी के प्रसिद्ध उपन्यास निर्वासित की नायिका नीलिमा भी कर बैठी है। और इन दोनों नायिकाओं का ही नहीं—किसी भी नारी-मात्र का इन परिस्थितियों में एक करुणाजनक अंत आवश्यक-सा हो जाता है। जीवन की सुख-सुविधाओं के बीच रहते हुए भी वे पात्र इनका उपभोग नहीं कर पाते—कर ही नहीं सकते क्योंकि यदि वे ऐसा करेंगे तो आत्मा पर एक बोझ लादकर—मन के प्राकृतिक स्वरूप की अवहेलना करके ही कर सकते हैं—प्रसंगवश एक बहुत बड़े प्रश्न का उत्तर भी हमें मिल जाता है। प्रश्न है कि क्या आर्थिक अभाव ही जीवन के सबसे बड़े दुःख के मूल होते हैं ?

नहीं—कदापि नहीं—हम जीवन में हजारों नहीं लाखों नव-दम्पतियों को आर्थिक कष्ट, धनाभाव के रहते भी हँसते-खेलते और स्वस्थ जीवन व्यतीत करते देखते हैं। दूसरी ओर सैकड़ों धनी मानी परिवारों में नव-वधुओं अथवा बाबूओं को आत्महत्या तक करते हमने सुना-देखा होगा। क्यों ? इसीलिए कि मानसिक माध्यम से एक दूसरे को समझ सकने, मानसिक रूप से एक दूसरे के प्रति अपने को adjust करने में वे एक सीमा तक असफल रहते हैं। छोटी-छोटी बातों पर एक दूसरे पर व्यंग्याघात करते हम नहीं कतराते—कुछ नहीं सोचते वे व्यंग्याघात ही किसी क्षण मनुष्य-मन के किस तल तक पहुँच जायँ और उसके मस्तिष्क को कितना भ्रान्त कर दें—कौन जान सकता है—कौन कह सकता है ?

विजय ने अपने प्रथम विवाह के उपरान्त और कान्ति की मृत्यु पर भी जीवन से कोई सबक न सीखा—वह जीवन भर एक क्षण के लिए पत्नी को सरल स्नेह की एक बूँद भी न दे सका—और प्रमीला सदृश विदुषी को पाकर भी अपने को धन्य न मान सका—और-और की तृषा में जकड़े इस मानव का जो अन्त होना है— पूर्ण स्वाभाविक और शिक्षा-प्रद है। लेखक ने प्रमीला के मन के साथ ही खिलवाड़ नहीं की है नारी मात्र के हृदय को झकझोर दिया है और उसे युग-युगान्तर तक विजय सदृश घोर स्वार्थी—परम कृपण महारथियों से सचेत रहने का इंगित किया है।

उमा कृष्णा सम्बन्धी कथा बहुत संक्षिप्त है और भारतीय परिवार के एक धारण रूप में प्रस्तुत की गई है, जिसमे एक ओर गृह की प्रधान स्वामिनी के रूप मे का स्वाभिमान, क्रोध मानवसुलभ ईर्ष्या और दुःख-सुख भरे पड़े हैं तो दूसरी ोर इन्ही घरो के टुकड़ों पर पलने वाले कृतघ्न नौकरो के रूप मे बिलसिया की

चिकनी व प्रस्तुत चुपड़ी बातें, चोरी करने के अजीब हथकण्डे और अनेक उफान दिखाये गये हैं।

राजीव को पंद्रह रुपये पर नौकर रखने वाली घटना वर्तमान बुर्जुवा समाज के मुख पर एक करारा तमाचा है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रकाशित करना ही चरित्र-चित्रण है और मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार तो व्यक्ति के न केवल बाह्य आपे को प्रकाश में लाता है अपितु वह तो मर्म साइट द्वारा उसके अन्तर्मन तक पाठक को पहुँचाने में सचेष्ट रहता है। जोशी जी के पात्रों का भी अपना विशिष्ट व्यक्तित्व रहता है। उनके अधिकांश पात्र वर्ग पात्र नहीं होते अपितु अपने आपे में मस्त, व्यक्तित्व में रत, पाठक को चकाचौंध कर देने वाले पात्र होते हैं। वे समाज के द्वारा संचालित नहीं होते, अपितु किसी सीमा तक समाज को संचालित करने वाले होते हैं—राजीव, सुनन्दा और प्रमीला भी ऐसे ही पात्र हैं।

राजीव 'मुक्तिपथ' का नायक है। बहिर्मुखी होने के कारण वह वास्तविक जगत का साक्षात्कार करता है, समाज के साथ निकट सम्बन्ध जोड़ता है और उसका गम्भीर अध्ययन करता है। यौवन के प्रथम चरण में पदार्पण कर जहाँ उसमें सरल भावुकता यौवनानुकूल चंचलता दृष्टिगोचर होती है वहीं पर प्रौढ़ यौवन की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते उसमें गम्भीरता एवं धैर्य घर करते जाते हैं।

क्रान्तिकारी जीवन को अपनाने के कारण उसमें निडरता, चतुरता और असीम उत्साह (Courage) का संचार हो जाता है। स्वार्थ, ढोंग और झूठ के प्रति उसके मन में विरोधी भाव धधक उठते हैं। तुच्छ जीविका हित आत्महीन गुलाम मूर्यो को वह हेय समझता है। उसे लखनऊ के बाजार में ही नहीं विश्व भर में मिथ्यावादिता ही मिथ्यावादिता दिखाई देती है। बेकार, असहाय और समाज द्वारा पीड़ित राजीव अपने अन्तर्मन में अपार वेदना संजोये जीवन-यापन करता है। वह जगतगत दुःख-दैन्य, पाप प्रलोभन और पीड़न को आत्मगत दुर्बलता कहता है।

उसकी चारित्रिक विशेषताएँ एक दम विशिष्ट हैं। सुनन्दा के लिए वह चिर एकाकी, रहस्यमय व्यक्तित्वशाली प्रौढ़ युवा है किन्तु है सहृदय और समझदार—कृष्णा की दृष्टि में वह परम आतंकमय विकराल प्राणी है, जिसकी एक नजर से वे लोग काँप उठते थे। प्रमीला की समस्त श्रद्धा का वह पात्र है क्योंकि उसमें, एक ऐसी अकपट महानता के दर्शन वह करती है कि जिस ऊँचाई तक साधारण मनुष्य की दृष्टि नहीं पहुँच सकती।

आत्मविश्लेषण करने पर वह अपने को निपट निस्सहाय और निकम्मा पाता है। राजनीतिक कूट चक्रों से भली भाँति परिचित राजीव पारिवारिक जीवन की आदर्शहीन दिनचर्या और द्वन्द्व-चक्र के भीतर फँसने को सर्वथा असमर्थ अनुभव करता

है। यह मन-ही-मन सोचता है—"तुम यह बात क्यों भूल गये कि सुनन्दा विधवा है और किसी भी भारतीय विधवा के लिये यह अत्यन्त अनुचित है कि वह किसी भी पुरुष के साथ एकान्त में बातें करे? ठीक है! भाभी जी के क्रोध का कारण मेरा ठहाका मारना उतना गलत नहीं है जितना यह कि मैंने एक विधवा युवती से आधी रात के सन्नाटे में बातें की हैं।"

और तब यह औचित्य अनौचित्य की जांच करता है। अपने जीवन को अधिक संयत, व्यवहार-कुशल एवं स्वाभाविक बनाने की चेष्टा करता है, किन्तु उसके क्रांतिकारी विचारों का उसके इच्छुक भावों से सामंजस्य नहीं हो पाता और वह मन-ही-मन धर्म ध्वजियों की खरी-खरी आलोचना कर बैठता है: "परलोक का हित" आज के युग में भी, जब कि नये निर्माण के पूर्व चारों ओर ध्वंस और अविश्वास की भावना मानव की छाती को जकड़े हुए है, समाज उस जीर्ण संस्कार का अनुसरण अंधभाव से किये चला जा रहा है। असहाय विधवाओं को, परलोक के अनिश्चित बैंक में पूंजी जमा होते चले जाने के प्रलोभन द्वारा, इस लोक के निश्चित मानवीय अधिकारों से वंचित किया जा रहा है।" पृष्ठ ५६

राजीव के रूप में हम एक अति मानुषी व्यक्ति Supperman के दर्शन करते हैं। वह क्रांतिकारी रहा—उसका क्रांतिकारी स्वभाव एवं रूप भी साधारण क्रांतिकारी से ऊपर की वस्तु है। पुलिस की आंखों में धूल डालते तो सैकड़ों क्रान्तिकारियों को सुना है—उन्हें गोली का निशाना बनाते भी देखा है किन्तु टार्च की लाइट पाकर न पकड़ा जाना अति मानुषिक स्फूर्ति द्वारा पुनः दुबक कर खिसक जाना वास्तव में आश्चर्य-जनक है। कारावास की यातनाओं को भी वह असाधारण मानव बन कर सहन करता है। किन्तु वही राजीव सुनन्दा के सामने साधारण मानव से भी नीचे अपने को अनुभव करता है, उससे डरता है।

सतत कर्म का पाठ एक बार पढ़ जाने पर राजीव कर्म का भी अतिक्रमण कर जाता है। 'कर्म! कर्म! केवल कर्म! कठिन कर्म, कठिन कठिनतर कर्म' बस यही उसके जीवन का मूल मंत्र बन गया है। इसके अतिरिक्त भी विश्व में कुछ है इसकी वह कल्पना भी नहीं करता। सुनन्दा को वह अपना साथी समझता है। जीवन साथी नहीं—कर्म-साथी—सहयोगी, बस और कुछ नहीं। उसे नारी-रूप में देखता है, उसके नारीत्व पर उसकी दृष्टि नहीं जाती। भला सोचिए तो कि यह अतिमानुषी रूप नहीं, तो क्या है।

राजीव इस धरा पर रहता हुआ भी इस धरा का प्राणी नहीं रह जाता। जब वह इस धरा के सुख-दुःख; हास्य करुणा; प्रेम और घृणा से अपने को ऊपर उठा लेता है तब इस जग में उसका क्या काम—इस जग के लोगों से उसका कैसा सम्बन्ध ?

प्रमीला के रूप में हम एक सुशिक्षित, भावुक और सुसभ्य विदुषी के दर्शन करते हैं। बात करने और पलटने की कला में वह निपुण है। विजय के यह कहने पर" "इस समय व्यंग्य और परिहास अच्छा नहीं लगता" वह कहती है—"यह मैं जानती हूँ, इसीलिए आपसे मैं व्यंग्य और परिहास की बातें किया कभी करती नहीं।" वह पहिले कहने जा रही थी कि "इसीलिये आपसे मैं व्यंग्य और परिहास की बातें किया करती हूँ।" पर उसने बड़ी निपुणता और कौशल के साथ बात पलट दी। इस कला में वह जोशी जी के उपन्यास की अन्य नायिकाओं से किसी सीमा में भी कम नहीं और उसकी तुलना 'निर्वासित' की नायिका 'नीलिमा' से सरलता पूर्वक की जा सकती है जो कहती है "आदाब अर्ज—मैंने सुना है कि जनाब आज ही तशरीफ लाए हैं", हालांकि वह उसे वहाँ देख आई है, फिर भी यह नहीं कहती कि मैंने देखा है।

यौवन के पदार्पण के साथ-साथ उसमें नारी-सुलभ चंचलता और बनाने की कला जो पाश्चात्य साहित्य और समाज के निकट सम्बन्ध में आ जाने के कारण उसमें प्रवेश कर चुके हैं, आ जाती है। और इस कला में वह इतनी रुचि लेती है कि विवाह-सदृश महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व को बड़े हल्के रूप में स्वीकार करती है। उसके चरित्र को देखते हुए एक प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठ खड़ा होता है, "क्या मन पसंद का विवाह नारी की आन्तरिक इच्छाओं की तृप्ति कर देता है अथवा उसके भीतरी संघर्ष बढ़ा देता है।" प्रश्न वास्तव में जटिल है और किसी एक उदाहरण से ही निष्कर्ष को सही हल अथवा उत्तर नहीं माना जा सकता। वास्तव में मानव मन बना ही बड़ी जटिल धातुओं का है : कब, कौन, कैसे इसमें आ बैठता है; मस्तिष्क पर छा जाता है कभी नहीं कहा जा सकता। प्रमीला की जीवनी इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

प्रमीला ने विजय को देखा है—बहुत निकट से देखा है—उसको जाना है और चाहा है। उसके विद्रूपरूप को पहचानकर भी उसको अपनाने की भावना—उसका हो जाने की उत्कण्ठा ने एक विचित्र मन के अध्ययन को पाठक के सम्मुख प्रस्तुत किया है। उसने विजय को बनाने, उस पर मन चाहे व्यंग्यापन्न करने के लिए उससे विवाह किया है। इस तथ्य का उद्घाटन वह सुनन्दा और राजीव से 'मुक्ति निकेत' में करती है"""मैं इस विवाह के लिए राजी ही यह सोच कर हुई थी कि मुझे एक आदमी ऐसा मिल गया है जिसे मैं जी भर कर चिढ़ा सकती हूँ, जिस पर तीखे व्यंग्य कस सकती हूँ और जो मेरे उन व्यंग्यों को अन्त तक प्रेमपूर्वक सहन करने की सामर्थ्य रखता है तब मैं सोच ही न पाई थी कि अपनी इस बचकानी और नासमझदारी की पूर्ति के लिए मैं अपने सारे जीवन को ही दाव पर लगाने जा रही हूँ।

और वास्तव में प्रमीला की भावुकता ने उसके जीवन से ही उसे पटखनी दी, विजय की आत्महत्या पर वह स्तब्ध एवं हतप्रभ रह गई। भावुकता का स्थान गम्भी-

रता और विनोद का स्थान एक निष्ठ भक्तिरत्ना ने ले लिया। उसने राजीव के आश्रम के तपस्वी-जीवन को अपना कर ही त्राण पाया। उसका वैवाहिक जीवन एक क्षण के लिए भी उसे सुख अथवा सुविधा प्रदान न कर सके—सोने चाँदी के बीच बैठी हुई भी वह उससे रोग न सकी। मन में एक प्रकार पीड़ा संजोये ही उसने अपने वैवाहिक जीवन के दिन बिताये। कौन जान सकता है उसकी अन्तर-पीड़ा को—मनोद्वन्द्व को? यह तो केवल उस स्थिति में पड़ी नारी की अनुभूति की वस्तु है—कल्पना-लोक में विचरण करने वाले पाठक के बूते की बात नहीं।

विजय

विजय 'मुक्तिपथ' का उपनायक और नायक राजीव का दीर्घ कालीन मित्र है। प्रथम साक्षात्कार में वह राजीव के प्रति आकर्षित हुआ और दोनों ने बालकाल में ही क्रान्तिकारी योजनाएँ बनाईं। किन्तु दोनों की योजनाओं में अन्तर है—जहाँ राजीव साहसी, निडर और सब प्रकार के कष्टों को सहन करने में समर्थ है वहाँ विजय केवल मात्र किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्रान्तिकारी कहलाने का दम भरता रहा—"पर विजय को यह मार किसी भी रूप में ग्राह्य नहीं थी। वह तो अपने किसी दूर स्थित, किन्तु निश्चित, उद्देश्य की पूर्ति के लिए जेल जाना चाहता था, न कि किसी राष्ट्रीय आकुलता से प्रेरित होकर।" पृष्ठ २०३। लेखक की पंक्तियों में उसके चरित्र के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

मिलनसार, स्वल्प परिश्रमी और परम लोभी—इन तीन शब्दों के साथ यदि महत्वाकांक्षा का शब्द और जोड़ दिया जाये तो इसके चरित्र का पूर्ण विश्लेषण हो जाता है। उसकी मिलनसार और स्वल्प परिश्रमी प्रवृत्ति ने उसे एक मध्यम श्रेणी का प्राणी होने पर रिसर्च स्कालर से डिप्टी सेक्रेटरी के पद पर ला बिठाया। उसके लोभी स्वभाव ने अर्थ-संचय को ही उसके जीवन का एकमात्र ध्येय बना दिया। अर्थ के अतिरिक्त उसे कुछ दृष्टिगोचर ही न होता—उसकी समस्त महत्वाकांक्षाएँ उसके भीतर सिमट कर रह गईं। उसने कान्ति से विवाह किया—विवाह के लिए नहीं—उसका धन लूटने के लिए—उसके आभूषणों पर भी उसकी दृष्टि पड़ी—जिनके न मिलने पर उसके लुब्ध नेत्रों में प्यार का भी अभाव हो गया और उसका स्थान विद्वेष तथा घृणा ने ले लिया, उसकी अर्थ-संग्रह की प्रवृत्ति का भी एक मनोवैज्ञानिक कारण लेखक देता है: "छुटपन घोर आर्थिक अभाव में बीतने के कारण अर्थ-संग्रह की उत्कट लालसा उसके भीतर घर कर गई थी।" पृष्ठ १०६

अर्थ-संग्रह की महत्वाकांक्षा उसे इस सीमा तक पतित कर देती है कि वह अपने (Portion) का नलका कटवा कर अपने किरायेदार के नलके का पानी पीता है—नौकर हटाकर पड़ोसी के नौकर से अपने घर का काम करवाता है—इससे भी

मूल्निरय एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें भारतीय विभाजन के पश्चात् भारत की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा का सफल चित्रण हुआ है। कृष्णा जी के पति उमाप्रसाद जी के रूप में भारतीय अफसरों का वर्णन किया गया है, राजीव के रूप में बेकार युवकों की गति-विधि पर विचार-विमर्श किया गया है, सुनन्दा भारतीय विधवाओं की दारुण कहानी कह रही है और लाखों पुरुषार्थी सर्दी से ठिठुरते, गर्मी से उबलते दूर-दूर तक कैम्पों में पड़े दिखाये गये हैं। देशराज उनकी विवश अवस्था का दिग्दर्शक है।

हजारों वर्षों के सतत प्रयत्नों और संघर्षों के पश्चात् आजादी हमें मिली, या यों कहें आजादी हमने ली। लाखों बलिदान देकर ली, हजारों योजनाएँ बनाकर ली। जहाँ एक ओर महात्मागांधी और गोखले ने अहिंसात्मक प्रयोग किये वहाँ दूसरी ओर महात्मा तिलक, सुभाष और भगतसिंह जैसे शहीदों ने क्रान्ति के मार्ग को अपनाया। सुभाष की याद ताजा कर देने वाले लोमहर्षक काम तो राजीव ने नहीं किये किन्तु भगत सिंह आजाद, शेखर, हरदयाल की पुन स्मृति ले आने वाले काम अवश्य ही वह कर पाया। भारतीय पहाड़ियों की चक्करदार कटीली घाटियों में वह गोराशाही पुलिस के छक्के छुड़ाता है। जेल मे भाँति-भाँति की यातनाएँ सहन करता है, किन्तु फिर भी धैर्य नहीं छोड़ता; दृढतापूर्वक जीवन में पग रखता है। भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर उसका मन खिल उठता है, उसकी आशाओं का दीपक जल उठता है। किन्तु शीघ्र ही यथार्थ की आँधी उसे पल-पल मे बुझा देना चाहती है।

भारत के स्वतंत्र हो जाने पर हमने देखा कि सच्चे देशभक्त समाज-सेवी नेताओं का और क्रांतिकारी युवकों का मान यहाँ नहीं हुआ, ढोंगी, स्वार्थी और परम चापलूस लोग आगे आ गये; उन्होंने ही स्वतंत्र भारत का नेतृत्व संभाला; कुछ एक नेताओं को छोड़कर शेष चार आने की गांधी टोपी पहने एम० एल० ए० और मन्त्री बने कारों में घूम रहे हैं; भारतीय स्वतंत्रता के हित प्राणों की चिंता न कर जूझने वाले युवकों पर लाठी बरसाने वाले बड़ी-बड़ी कोठियाँ बनवा रहे हैं और बेचारे राष्ट्र-भक्त राजीव के रूप में गली-गली नौकरी की तलाश मे भटक रहे हैं। समाज ने उनका मान नहीं किया क्योंकि वे सरल हैं, सच्चे हैं, ईमानदार हैं। उनकी [illegible]दार प्रवृति ही उनके लिए अभिशाप बन गई है, यह है नव [illegible] यथार्थ चित्र।

असामाजिक प्रेम भी पाप का ही एक रूप है। राजीव-सुनन्दा प्रेम जीवन के इस पहलू पर प्रकाश डालता है। सुनन्दा एक भारतीय विधवा है, अतः प्रेम की अधिकारिणी नहीं। इस युग में, प्रगतिवादी युग में, विज्ञानवादी युग में, सभ्य समाज में भी विधवाओं का यथोचित मान नहीं हो रहा। उनका प्रेम उनके जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। उनके वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक जीवन को कटु बना देने वाला है। जब तक सुनन्दा वैयक्तिक आकांक्षाओं की अवमानता कर एक मशीन की भाँति घर की चक्की चलाती रही, वह पवित्र समझी गई, अच्छी समझी गई, घर की हर आवश्यक बात मे उसकी राय ली जाती रही किन्तु जिस दिन से उसके मन मे प्रेमांकुर प्रस्फुटित हुए, उसी दिन से घर का सारा वातावरण ही बदल गया।

उसका पारिवारिक बहिष्कार कर दिया गया, उसकी पूरी अवमानता की जाने लगी। प्रमीला का विवाह हो रहा है और उसे पूछा भी नहीं जा रहा कि क्या करना है, कैसे-कैसे करना है। इतने पर ही बस नहीं, उसके सामने ही घर की परम तुच्छ पात्र दासी सिलिया तक से राय ली जाने लगी। उसे चिढ़ाने और सताने के लिए उसके किसी भी काम में उत्साह प्रकट करने पर उसका तिरस्कार किया जाने लगा। किसी को भी उसके प्रति सहानुभूति नहीं; प्रेम नहीं; एक प्रमीला को छोड़ दीजिये, यदि वह भी न होती तब तो शायद सुनन्दा गले मे फाँसी लगाकर कब की मर गई होती। प्रमीला को उससे पूर्ण सहानुभूति है किन्तु वह मुख से कुछ बोल नहीं पाती, माँ के प्रति विद्रोह प्रकट नहीं कर पाती है। हाँ एक काम करती है। वह एक योजना बनाती है, उसके अनुसार ही सुनन्दा राजीव को इकट्ठा कर देती है।

राजीव सुनन्दा नव जीवन के प्रागण मे पग रखने पर भी नव जीवन के दायित्वों को संभालने में असमर्थ रहे। राजीव का असाधारण मनुष्यत्व उसे जहाँ एक देवत्व की कोटि मे ले जाता है, वहाँ सुनन्दा के प्रति अकृतज्ञ रूप घोर नारकीय प्राणी सिद्ध करता है। वह मानवत्व का प्रचार करता है, कर्म पर व्याख्यान देता है, परिश्रम पर बल देता है, किन्तु इन सबके मूल बीज प्रेम (जिस पर संसार खड़ा है) का उन्मूलन कर न केवल सुनन्दा का मन ही फेर देता है अपितु समस्त नारीत्व को पुरुष मात्र के प्रति विद्रोही बना देता है। यही एक शाश्वत समस्या उठ खड़ी होती है। नारीत्व की परिणति कहाँ है ? उत्तर सरल है। मातृत्व की प्राप्ति ही नारीत्व की चरम परिणति है। उसके लिए वह एक सच्चे स्नेही पुरुष का साथ चाहती है; उससे प्यार करती है और भावनाओं की कसौटी पर पूरे उतरे पुरुष के प्रति आत्मसमर्पण तक कर देना चाहती है। नारीत्व की यह चिर तृष्णा अकेली सुनन्दा की आकांक्षा नहीं है, अपितु नारी मात्र की चाह है, जिसकी पूर्ति वह एक सीमित अवधि मे चाहती है और यदि यह अवधि सूनी निकल जाती है तो वह विद्रोह कर दिया

इस चित्रण के फलस्वरूप नारी चित्रण भी जोशी जी ने कमाल का किया है। वह उसकी प्रारम्भिक विवशताओं, सामाजिक समस्याओं और मानसिक सीमाओं को खूब पहचानते हैं। नारी देखने में जितनी ससीम है, अनुभूति में उतनी ही असीम, बातों में जितनी सरल है, मनोविश्लेषण करने पर उतनी ही जटिल व्यवहार में जितनी कुशल है, तर्क की कसौटी पर नगण्य हो हम उसे असामान्य पाते हैं, ऐसा सुनन्दा के रूप में हम देखते हैं। उसकी नैतिक पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक दुर्बलताओं से भी वह परिचित है और मानसिक एवं आध्यात्मिक रचना की जानकारी भी रखती है। अपनी भावुक प्रकृति, कोमल स्वभाव और दया-वृत्ति का भी उसे ज्ञान है, पुरुषगत शोषण स्वभावता भी उसे पता है। फिर भी वह पृथ्वी की तरह बहुत कुछ सहन करती है। जैसे पृथ्वी गर्मी-सर्दी, पानी और हवा के आघात सहती है, वैसे ही वह भी कठोरता, अत्याचार, शुष्क व्यवहार और घोर उपेक्षा को सहती चलती है, किन्तु ठीक उसी प्रकार फूट भी पड़ती है जैसे ज्वालामुखी। जब लावा उबलने लगता है तब पृथ्वी के गर्भ में नहीं समाता, जब नारी गर्जने लगती है तब उसका मन वज्र से भी कठोर, उसकी आँखें ज्वाला से भी लाल रूप धारण कर लेती हैं।

सुनन्दा भारतीय समाज के शोषण की शिकार विधवा है, राजीव जैसे व्यक्ति के उपेक्षित व्यवहार से पीड़ित रमणी है। वह बहुत कुछ देख चुकी है, बहुत कुछ सह चुकी है। राजीव का स्पर्श पाकर उसने विचित्र से कम्पन, अजीब सी धड़कन और असीम पुलकन की अनुभूति की है। समन्वय के लिए उसकी आत्मा मचल उठी है। उसके शरीर की, उसके मन की उपेक्षा हुई, उसे वह सह गई, किन्तु आत्मा का शोषण नहीं सहेगी, नहीं सहेगी। आज की नारी न तो मन बहलावे की वस्तु बनने को तैयार है

और न ही सतत कर्म की दासी बने रहना ही वह चाहती है। वह सुनन्दा के भावों में संतुलित दृष्टिकोण के अनुसार सम वितरण चाहती है। प्रेम करुणा, सेवा, कर्म और लग्न का विभाजन चाहती है। इनमें किसी एक के अभाव को वह नहीं सह सकती और फिर भावनाराज प्रेम की उपेक्षा तो उसे किसी सीमा में भी अपेक्षित नहीं है। उसके अभाव में अपने को एकाकी अनुभव कर वह नितान्त एकाकी बनने का दृढ़ संकल्प कर चल पड़ती है।

सुबह के भूले

मनुष्य के जीवन मे प्राय. ऐसे क्षण आते हैं जब वह सद्मार्ग से भटक जाया करता है और भ्रांत हुआ अपने नव अपनाये पथ को ही श्रेष्ठ समझता हुआ भूला-भूला फिरता है, परन्तु उसके जीवन मे कोई महान् अभाव है, कही कोई बड़ा कंटक है, ऐसा भी कभी-कभी वह सोचता है, उसके मन मे मनोद्वन्द्व की एक बाढ सी आ जाती है—क्या जिस पथ पर वह बढा है, वह श्रेयकर है ? प्रगति की ओर ले जाने वाला है, मनोत्थान प्रद है ? ऐसे ही अनेक प्रश्न वह सोचता है और अधिकतर मनोविश्लेषण द्वारा आत्मपरिष्कार भी कर लेता है ?

मानव-जीवन के इस शाश्वत सत्य का उद्घाटन श्री इलाचन्द्र जोशी ने अपनी नवीनतम कृति 'सुबह के भूले' मे किया है। यह एक ऐसी नारी की कहानी है जिसने जीवन के मध्य मे प्रवेश करते ही सद्मार्ग को त्याग कर भ्रांत पथिक बन जीवन की अनेक कटु अनुभूतियाँ प्राप्त की, फिर उसने ही कुछ शिक्षा प्राप्त कर आत्मानुष्ठान किया। जीवन को विषमतम परिस्थितियो से उबार कर सम वातावरण की सृष्टि की । लेखक ने कहानी में प्रत्येक मोड़ देने से पूर्व उसके मनोवैज्ञानिक कारण भी जुटाये हैं, साथ ही मोड़ आने के उपरात हुए कार्यों का भी विश्लेषण किया है, जिनमें अन्तर्मन मे उपस्थित प्रत्येक घात-प्रतिघात के चित्र स्पष्ट चित्रित किये हैं। उदाहरणत: कहानी में आया सबसे पहला बड़ा मोड़ गुलबिया का गिरजा बन अपने को अनो-मानी समझे और माने जाने वाले समाज के सम्पर्क में आने पर घर लौटते ही दिखाया गया है। लेखक लिखता है—पृष्ठ ११२

"घर पहुँचते ही उसका जी खराब हो गया। अपने घर का सारा वातावरण आज उसे पहली बार अत्यन्त विजातीय, नीरस और निर्जीव लगने लगा··· अपने कमरे मे पहुँचते ही उसने अपने हाथ की पुस्तको को फर्श पर पटक दिया।···दो तीन मैले कपड़े नीचे फर्श पर पड़े थे, उन्हें भी ठोकर मार कर कोने में फेंक दिया···" आदि। वह अपनी देवी तुल्य मा से भी सीधे मुंह बात नही करती। गिरिजा के जीवन में प्रथम बार ऐसा आवेशपूर्ण परिवर्तन पढ़ कर पाठक के मन मे एक प्रश्न उठता है। आखिर यह सब क्यो ? वह जानने को उत्सुक हो उठता है। और उसको इसी

उत्सुकता को बुझाने के लिए लेखक मनोवैज्ञानिक कारण जुटाता है। कुछ पृष्ठों के अनन्तर वह लिखता है :—पृष्ठ १३६

"अपने बन्द कमरे में एकांत में लेटे-लेटे गिरजा आज की मानसिक स्थिति के संबंध में विचार करने लगी'''आज वह एक सम्पन्न परिवार का ठाटदार फ्लैट और रहन-सहन का उच्च स्तर देख कर आयी, केवल इतने से ही उसका दिमाग फिर गया। तनिक भी संयम उसमें न रहा, धिक्कार है उसे। सौ-सौ बार धिक्कार है।''' अपनी प्यारी अम्मा से ही, चाचा चाची और भोले किशन के बीच में रह कर इतने दिनों तक वह शांत भाव से सुख का जीवन बिताती आई थी, कभी किसी प्रकार का असंतोष उसने अपने जीवन में अनुभव नहीं किया था, और आज अचानक एक दम ही उसका सिर फिर गया ? नहीं, वह आज की सारी घटना को तनिक भी महत्व न देकर उसी तरह शांत भाव से नियमित जीवन बिताती चली जायेगी जिस तरह इतने दिनों तक सुख और संतोष का जीवन बिताती चली आ रही थी।"

इतना दृढ़ संकल्प कर लेने पर भी क्या वह अपनी परिवर्तित जीवन चर्या पर बाँध लगा पाई, भ्रांत मन को अंकुश में जकड़ पाई ? ऐसी कोई बात शीघ्र ही हम देखते नहीं। आखिर यह क्यों ? इसके भी मनोवैज्ञानिक कारण हैं। मन जितने शीघ्र एवं तीव्र रूप से विचलित होता है उतना ही शीघ्र संभलता नहीं। और फिर यदि शीघ्र ही संभल जाय तो फिर आगे कोई दुविधा रहती नहीं, लेखक जीवन के कुण्ण पृष्ठ पहले नहीं दिखा सकता—फिर कहानी का विकास कैसे हो, उसमें आगे आने वाले मोड़ कैसे आयें। समय-समय पर उठने वाले अन्तर्मन के घात-प्रतिघात पाठक कैसे देखें। इस तथ्य को दृष्टि में रखता हुआ लेखक बड़े धैर्य एवं गम्भीरता के साथ गिरिजा का मानसिक चित्र उतारता चला जाता है। वह उसके ऊपरी जीवन के निर्विकार और निर्विचित्र वातावरण के नीचे जमी अशांति और असंतोष की तह को कुरेदता चलता है। एक ओर वह अपने को सर्व प्रतिष्ठित समाज के बीच पाकर गर्व और अहं से फूली नहीं समाती तो दूसरी ओर आत्मलघुता की भावना से वशीभूत होकर अपार मानसिक पीड़ा अनुभव करती है। इसी के फलस्वरूप एक दिन संकोच द्वारा वशीभूत हो मोहनदास के चाय-निमंत्रण को भी ठुकरा देती है। और किसी दूसरे 'एपायंटमेंट' का झूठा बहाना भी उसके लिए गढ़ छोड़ती है। परन्तु उसके अत्याधिक अनुरोध पर पुनः विचार कर निमंत्रण स्वीकार कर जब वहां पहुँचती है तब मोहनदास की उपेक्षा देख एक सच्ची गर्वित नारी की भाँति अपने मन पर अपमान का आघात सहती है। जिसके कारण पुनः उसे घर लौटने पर अपने घर का सारा वातावरण ही विजातीय तथा घिनौना सा लगा। कैसी विडम्बना है कि कभी-कभी व्यक्ति जीवन में उन्हीं से घृणा करने लगता है जो उस पर प्राण न्योछावर ... हैं, किशन को ही लीजिए। कथानक में हम गिरिजा के जीवन का एक और

: विनय में बंधा रखते हैं। यह वही विनय है जिससे उनके जीवन का शैशव ...धित रहा है, जिसने बाल्यावस्था से ही अपने मन-मंदिर में इसे प्रतिष्ठित स्थान ...र सदैव श्रद्धा से पुष्प चढ़ाते हैं। वही विनय जब अपनी सम्पोजिंग के शुभ समा-...र की सूचना एवं उत्साह लेकर आता है, उसकी उपेक्षा भरी मूर्ति देख सहम ...र वापिस चला जाता है। लेखक लिखता है—

"विनय कुछ देर तक अत्यन्त मार्मिक वेदना से विकल दृष्टि गिरिजा की ...र गड़ाये रहा। उसके बाद चुपचाप लौट गया।" पृष्ठ ४७

गिरिजा का भाग्य जीवन दिन-प्रति-दिन चौकड़ियाँ भरता है नये-व्यक्तियों से ...सका परिचय होता है और हेम-कुमार से सबंधित होते-होते वह नये-नये मोड़ लेता ...। उसके सम्पर्क में आने पर वह अपना घर त्याग कर होस्टल-प्रवेश पाती है। फिर ...स्टल त्याग कर सिनेमा-समाज में प्रवेश करती है। गिरिजा के सिनेमा-प्रवेश का ...न्यास में एक विशिष्ट स्थान है। लेखक उसके ऐसा पग उठाने के लिए मनोवैज्ञानिक ...रण प्रस्तुत करता है। मोहनदास आदि ने गिरजा के प्रति उपेक्षित व्यवहार किया, ...ा थोड़ी देर हैन-मैन दिखा कर शीघ्र ही उदासीनता का रुख दिखाया—इसका भी ...ई कारण रहा होगा। इसी कारण को लेखक बड़े ही कलापूर्ण ढंग से हेमकुमार ...रा कहला देता है—

"बात यह है कि गिरिजा जी, कि हमारे देश के तथाकथित फैशनेबल समाज ...ा दृष्टिकोण बड़ा ही घिनौना तथा बहुत ही संकीर्ण होता है। वे एक नकली दुनिया ... नकली तौर-तरीकों की बस्तियों से घिरे रहते हैं। मनुष्य की वास्तविक पहचान उन्हें ...हीं है, उसके व्यक्तित्व के भीतरी रूप को न तो वे पहचान ही पाते हैं, न पहचानने ...ो रुचि ही रखते हैं। यदि बाहरी मापदण्ड से किसी व्यक्ति का सामाजिक स्त... ...न्हें नीचा लगता है तो उसके कारण वे व्यक्ति अपनी सभी भीतरी योग्यताओं ... ...बावजूद उन्हें अत्यन्त हीन लगता है···मैं कहना यह चाहता हूँ कि किसी जरिये ... ...न सब लोगों को यह पता लग गया है कि, आप स्पष्टोक्ति के लिए क्षमा कीजिएगा ...आ दूध बेचने वाले की लड़की है—किसी दूध बेचने वाले की लड़की से—फिर चा... ...ह कैसी ही पढ़ी-लिखी क्यों न हो—समान्तर पर बातें करने और हिलने-मिलने ... ...धिक अपमानकर बात वे अपने लिए दूसरी नहीं समझते।" पृष्ठ २७२

गिरिजा को यह सुनते ही एक मानसिक आघात पहुँचा। उसके मुख का सारा ...ध्यात्मक भाव, सारी मस्ती, सारा अल्हड़पन, जवानी का सम्पूर्ण आत्मविश्वास पल ...र में इस तरह गायब हो गये जैसे संसार ही बदल गया हो। उसकी स्मरण एवं विवेक ...क्ति भी उसका साथ छोड़ती दीख पड़ी। वह करे तो क्या करे? जाये तो कहाँ ...ाये? तभी हेमकुमार ने उसके आगे एक नये समाज का उद्घाटन किया, जो मानाप-

मान के बंधनों से, ऊँच-नीच के भावों से तथा जात-पाँत की छुआछूत से ऊपर उठा है। उस चित्र को देख कर गिरिजा की प्रतिशोध-भावना जागृत हो जाती है और उसके द्वारा विशिष्ट समाज में स्थान पाकर तथाकथित (मोहनदास सम्पर्क वाले) समाज को नीचा दिखाने का दृढ़ निश्चय वह करती है, इसी लिए हेमकुमार को अपनी अनुमति देकर उसी के प्रयत्नों द्वारा उस समाज में प्रवेश पाकर, विशिष्ट स्थान ग्रहण कर अपने को यश की चरमोन्नत अवस्था पर पहुँचाती है। तत्पश्चात् समय के साथ-साथ वह अभिनेत्री से निर्देशिका और फिर निर्मात्री बन जाती है।

कथानक में अंतिम बड़ा मोड़ वहाँ आता है जहाँ पर गिरिजा के ज्ञान-चक्षु खुलते हैं और वह आत्मविस्मृति को त्याग कर सद्‌मार्ग पर आ जाती है। 'सुबह के भूले' चित्र का निर्माण, उसकी कहानी का कथानक तथा प्रदर्शन सभी उसकी आपबीती घटनाएँ हैं, जिन्हें पढ़ कर पाठक एवं समाज एक महान् शिक्षा ले सकता है। अपने भूले मार्ग को पहचान लेने पर फिर वह हेमकुमार तक के स्वच्छ एवं स्वस्थ प्रेम को भी ठुकरा देती है और उसे दाम्पत्य प्रेम के बजाय पवित्र बहन का स्नेह प्रदान करती है। अपने विवशतापूर्ण कर्तव्य को जिन शब्दों में वह व्यक्त करती है वह पढ़ते ही बनते है—

प्रचलित अर्थ में अपने 'जीवन-संङ्गी' को बहुत पहले चुन चुकी हूँ—आप से परिचय होने से भी बहुत पहिले—बल्कि जीवन की वास्तविकता से परिचित होने से भी बहुत पूर्व। यह ठीक है कि बीच में जीवन की परिस्थितियाँ बदल जाने से मैं कुछ वर्षों के लिए भटक गयी थी और तब अपने उस जीवनसंगी के सम्बन्ध में गंभीरता पूर्वक विचार करने का अवकाश ही मुझे नहीं मिलता था, पर अब फिर मेरी आँखें खुल गयी हैं, और मेरे विचार निश्चित हो चुके हैं। इसलिए उस विशेष अर्थ में मेरे जीवनसंगी रहने की बात आप सदा के लिए अपने मन से निकाल लें—पृष्ठ २६०

गिरिजा ने 'निकाल लें' शब्द कहा है जिस से प्रकट है कि उसके शब्दों में कितनी विवशता एवं अनुरोध भरा है। उसे पता है कि शायद उसके बिना हेमकुमार के जीवन की दिशा ही बदल जायगी, उसके हृदय से शायद प्रेम नाम के भाव का स्रोत ही सूख जायेगा, फिर भी वह विवश हो जाती है। अपने कर्तव्य तथा पूर्व प्रेम-भाव-जाल में फँसी वह नारी करे तो क्या करे। तभी उसने अनुरोध पूर्ण शब्दों में 'निकाल लें' कहा है, ताकि उसके हृदय पर अधिक आघात न लगे। अन्यथा वह 'निकाल दें' भी कह सकती थी। परन्तु यदि वह ऐसा कहती तो शायद हेमकुमार की प्रतिक्रियात्मक वृत्ति जागृत हो जाती और वह बलपूर्वक उसे हथियाने या किशन को मरवाने का कुचक्र रचता। परन्तु ऐसी कोई घटना घटी नहीं, इसका एकमात्र श्रेय लेखक के 'कथा-कौशल' को दिया जा सकता है।

सद्मार्ग पर आकर वह और किशन की माँ और चाचा-चाची का आशीर्वाद पाकर वैवाहिक बंधनों में बँध जाते हैं, जो भमिया की मृत्यु शोक सूचक है, फिर भी कथानक का अन्त प्रसादात्मक वातावरण की सृष्टि कर पाठक को मनोमुग्ध कर देता है।

यह तो हुई मुख्य कथानक की बात जिसमें दो प्रेमियों का प्रथम मिलन बाल-बालिकाओं की क्रीड़ा में दिखा कर, एक को भ्रान्त पथिक बना, कुछ समय के लिए जीवन की ऊबड़-खाबड़ परिस्थितियों में से ले जाकर लेखक अन्त में दोनों को स्थायी बन्धन में जकड़ देता है। परन्तु यही तो सब कुछ नहीं है, इसके अतिरिक्त भी कथानक संबंधी अनेक प्रश्न उठते हैं जिनका समाधान लेखक नहीं कर पाता। कहीं-कहीं सम्भवता एवं स्वाभाविकता की अवहेलना कथानक में खटकने की है। आरम्भ में ही किशन और गुलबिया का वाद-विवाद असम्भव नहीं तो और क्या कहा जावे। क्या ६-७ वर्ष के बालकों से यह आशा की जा सकती है कि वे हनुमान तथा शिव सदृश महान् पुरुषों की जीवनियों तथा उनकी महानता पर तर्क-वितर्क कर सकें। यह वार्तालाप पूर्णतया असंगत, असंभव एवं अस्वाभाविक प्रतीत होता है। इस प्रकार कथानक में एक विशेष गुण संभवता पर लेखक ने कुठाराघात किया है। जबकि अब कोई सुनने को तैयार नहीं होता फिर पाठक किस प्रकार उसे धैर्य पूर्वक सुन सकता है। उपन्यास में तो सम्भव ही वास्तव में सत्य की कसौटी माना जाता है।

पीछे पति को पूर्णतः अपने वश में करके अमिया ने मधुर निराकरण की ओर प्रयत्न-शील होना ठीक होगा"—पृष्ठ ९६। उस संकल्प को हमने साकार हुआ ही देखा, परन्तु कैसे? इसका समाधान पाठक कर नहीं पाता। लगता है लेखक का ध्यान इस ओर उधार हुआ नहीं, वह मुख्य कथानक से भिन्न कर रह गया। महावीर और मालती की जीवन-चर्या उसने कहनी नहीं चाही। केवलमात्र उनके दो मानक दिखा देने से पाठक की उत्सुकता की तृप्ति होना कठिन है।

रोचकता का सार पा जाने पर कथानक सरल रहता है। स्थान-स्थान पर लेखक नवीनता तथा उत्सुकता का सृजन करता चला गया है, साथ ही समय-समय पर कौतूहल की परितृप्ति भी। उदाहरण, मोहनलाल के सम्पर्क में आने पर तथा प्रथम साक्षात् में ही कुछ वार्तालाप पढ़ कर पाठक सोचने लगता है अब क्या होगा—शायद प्रेम। सभी यह सोचते हैं। ऐसी परिस्थिति में ऐसा सोचना स्वाभाविक भी है। परन्तु आगे चल कर जब वह पढ़ता है कि ऐसा तो हुआ नहीं, बल्कि मोहनलाल ने तो उसे उपेक्षित दृष्टि से देखा, साथ ही उसकी अवमानना भी की। तब उसे मानो विद्युत का झटका लगता है, वह सोचता है यह क्या हो गया? परन्तु आगे चल कर जब हेमकुमार द्वारा वह उसके मनोवैज्ञानिक कारण को जान जाता है, तब उसके कौतूहल की परितृप्ति होती है। लेखक जब पृष्ठ १२३ लिखता है कि गिरिजा की दिलचस्पी उस नवपरिचित युवक की बातों में बहुत बढ़ चुकी थी। उसी समय हम देखते हैं कि पाठक की रुचि उन दोनों की बातों में बढ़ती जाती है। जब हेमकुमार सशंकित मन से डरते-डरते अपने प्रेमात्मक मानसिक उद्‌गारों को गिरिजा के आगे प्रस्तुत करता है तब पाठक का मन भी ठीक उसी प्रकार फड़कता है और वह यह जानने के लिए व्यग्र हो जाता है कि गिरिजा का उत्तर कहीं नकारात्मक तो नहीं। परन्तु उसका उत्तर न तो हेमकुमार जी के हृदय को ही फेल करता है न ही पाठक का हृदय ही बैठने लगता है बल्कि उसकी रुचि उस ओर से मुड़ कर किशन में लीन हो जाती है और मानसिक चक्र में घूमते हुए किशन को बड़े गौर से देखती है कि कहीं उसकी शंकाएं ही उसके दिल का दिवाला न पीट दें। उसे शंका होती है कि गिरिजा एक जन्मजात अभिनेत्री है। कहीं उसने चित्र की सफलता के लिए ही उससे प्रेम का ढोंग न रचा हो। यह विचार आते ही घनघोर अवसाद के दौरे ने उसके मन को छा दिया। साथ ही पाठक का मन भी उसके अवसाद का भागी बन भ्रम में पड़ जाता है। जब उन अवसाद की घटाओं को दूर करने के लिए गिरिजा रूपी वायु आती है तब किशन-गिरिजा वार्तालाप में भी वह रुचि रखता है, यहाँ उसकी रुचि का कारण उत्सुकता न होकर विनोद है। उसे पता है कि गिरिजा हेमकुमार जी को क्या उत्तर देती है। परन्तु किशन को वह बात पता नहीं तभी उसका मन शंकित है। एक विचित्र Dramatic Irony कथानक में आ जाती है। पाठक भी इसमें

रोचकता दर्शाता है और अब मन में किशन को खूब तंग करने के उपरांत गिरिजा बताती है—"कि अपने अंतर से पूछो" और किशन कहता है कि "सच गिरिजा" तब उसके मन का सारा संदेह सदा के लिए धुल जाता है जिसे पढ़ कर किशन और गिरिजा की खुशी के हिंडोले में पाठक भी झूमने लगता है।

झमिया की मृत्यु के समय से पूर्व गिरिजा का पश्चाताप और लगन की सेवा से उसकी जीवन पर्यन्त भूलें तथा पाप सदैव के लिए धुल जाते हैं और अंतिम वर्णन पढ़कर पाठक एक प्रशान्त वातावरण में खो जाता है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। परन्तु साथ ही स्वतन्त्र प्राणी भी। प्रत्येक जीवन का विकास दो कारणों से होता है, एक तो सामाजिक वातावरण के प्रभाव स्वरूप, दूसरे स्वतन्त्र व्यक्तित्व की प्रतिभा के अनुसार—येही दो तत्व हैं जो किसी भी व्यक्ति के चरित्र-निर्माण में प्रयोग में लाये जाते हैं। कभी-कभी जीवन में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि व्यक्ति चाहने पर भी स्वेच्छानुकूल चरित्र अपनाने में असमर्थ हो जाता है, तभी वह स्थितियों के प्रवाह में बह जाया करता है और अपने जीवन की बागडोर नियति के हाथों में सौंप दिया करता है। समय-समय पर अपने मन के संकल्पों की अवहेलना करता हुआ वह पतनोन्मुख होता हुआ भी समझता है कि वह ठीक है—परन्तु ऐसे ही पथ पर बढ़ते-बढ़ते कहीं पर पहुँच कर उसे ऐसे आघात लगते हैं कि उसके जीवन की दिशा ही बदल देते हैं तभी वह अपने भ्रांत पथ को पहचानता है और फिर से सद्मार्ग पर आता है—उसके मन के भीतरी कोने से कहीं एक आवाज निकलती है जो उसकी समस्त दुर्बलताओं और अवगुणों को समेटती हुई ले-जाकर विशिष्ट स्थान पर छोड़ देती है—यह आवाज ही वास्तव में उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व की प्रतिभा है जो उसे परमोन्नत स्थान प्रदान करती है तथा सजीवन उत्पन्न करती है जिसके बिना पात्र कठपुतली बन कर रह जाता है।

'सुबह के भूले' नायिका प्रधान उपन्यास है, जिसकी नायिका का निर्णय करना एक जटिल समस्या है। रूढ़ि के अनुसार तो गुनिया और गिरिजा इसकी नायिका हैं परन्तु प्रभाव तथा चारित्रिक अलौकिक दृष्टि से परखने पर हम झमिया को ही नायिका-पद पर आसीन पाते हैं। उसका दु:खमय वैधव्य का जीवन, धैर्यपूर्ण मौसी के अत्याचारों का सहन, तथा त्यागमय स्वेच्छानुसार अपनाया मालती परिवार वहन, उसे देवी की पदवी पर पहुँचा देते हैं। सुख नाम की कोई वस्तु कभी उसके जीवन में आई हो ऐसा पाठक नहीं पढ़ पाता। बैजनाथ से प्रथम साक्षात्कार में ही प्रेमरूपी बीज उसके हृदय में धुस गया, फिर वह विवाहरूपी प्रणय में परिवर्तित होकर फूटने ही वाला था कि यम वज्र के एक ही आघात से चूर-चूर हो गया। फिर तो सब ओर शून्य हो गया—वह जाय तो जाय कहाँ? क्या मौसी के घर? वह मौसी तो कहीं मर गई तू कुलच्छनी, रौंड कहीं की आदि...सुहागिलियाँ उसे बाँटती थी। तो क्या देवर

के पास रहे ? उस देवर के पास रहे जिसमें चरित्र सौ देवताओं से भी उज्ज्वल है। हाँ यही ठीक होगा—उसने मनोविश्लेषण करके निश्चय किया।

झमिया का जीवन स्वार्थमय न होकर परमार्थमय है। वह अपने लिए जीवित रहना भी तो नही चाहती। वह जीवित है पर सेवार्थ। उसने कहा भी है, "मुझे अपने लिए कोई चिंता नहीं है। चिन्ता सिर्फ इस छोटी सी छोकरी के लिए है।"

झमिया एक टाइप अथवा वर्गगत पात्र न होकर व्यक्ति प्रधान है। उसके जीवन के अपने विशेष सिद्धांत तथा दृष्टिकोण हैं। हनुमान जी की वह परम भक्त है। परन्तु हनुमान जी ही उसे सब देवताओं में सर्वाधिक क्यों पसन्द आये। यह शायद वह स्वयं भी न जानती थी। उसकी भक्ति श्रद्धा तथा विश्वास के आधार पर टिकी थी न कि किसी तर्क अथवा विज्ञान की भित्ती पर। जनता के हनुमान जी की जयकार का नारा लगाने पर वह पूरी शक्ति से, अन्तरात्मा की सच्चे लगन से, उनके स्वर में स्वर मिलाती हुई कहती :

"जै—ऐ—ऐ—ऐ !"

झमिया के चरित्र में दृढ़ संकल्प, मर्यादा तथा निडरता के दर्शन भी पाठक को स्थान-स्थान पर मिलेंगे। बैजनाथ के आग्रह पर उसने उसके साथ बम्बई चलने का निश्चय किया ; परन्तु सामाजिक मर्यादा के साथ। बैजू ने तो उसे भागने के लिए उकसाया था, जैसा कि जोशी जी के अनेक उपन्यासो के नायक करते हैं, ठीक नन्दकिशोर की भांति। और यह पुरुष वृत्ति भी है। पुरुष नारी की अपेक्षा अधिक उच्छृङ्खल है। परन्तु नारी है संयम की मूर्ति, मर्यादा की देवी ! झमिया ने विवाह का प्रस्ताव स्वीकार किये बिना जाने से इन्कार कर दिया। यह है उसके चरित्र की दृढ़ता तथा मर्यादा शीलता। इसके साथ-साथ वह निडरता की तो साक्षात मूर्ति ही बन गई। उसका जीवन गंगा की तरह पावन था फिर भय किस बात का—समाज का—उस समाज का जो स्वयं पाखण्डी, कपटी और महामायिक है। चोबे जी को दिये गये उसी उत्तर से कितनी सच्चरित्रता तथा निर्भयता टपक रही है। "आप की नजरों में उस औरत के लिए कभी कोई इज्जत नही हो सकती जो विधवा होने पर दुबारा ब्याह करे। इसलिए उसके बारे मे आज आपके और साथियों के मन में एक नया शक पैदा हुआ है। मैं इसके लिए आप को या दूसरो को कोई दोष नही देती, पंडित जी मैं किसी को यह समझाना भी नहीं चाहती कि देवर को मैं किस नजर से देखती हूँ और वह किस तरह मानते हैं।" सत्य में अपना ही एक तेज होता है जो कपटी को भस्म करने में समर्थ है। झमिया के निर्भयतापूर्ण सत्य वचनो को सुन चोबे जी सन्न रह गये और बातों का विषय ही बदल दिया।

आफतो से वह घबराती नहीं और त्याग से मुख नहीं मोडती। महावीर के बार बार समझाने पर कि मेरी शादी तुम्हारे लिए एक आफत होगी, वह कहती है—

"मालिक हो भले मैं उसे खुशी-खुशी सह लूँगी। पर तुम्हें घर में अकेला इस हालत में भी न रहने दूँगी!" उसकी स्नेहपूर्ण हठ ने महावीर को पराजित किया।

विवाह हुआ और मालती आई, परन्तु उसने उसे हँसते-हँसते झेला। महावीर के शब्दों में वह भोली और भली भौजी थी—

"उसे अपनी भोली और भली भौजी के ऊपर बहुत तरस आता था कि वह किस सरल विश्वास को अपना संबल बना कर, किस आशा और उत्साह से उसकी गृहस्थी का सारा काम निभाये चली आ रही थी जब कि मालती के बीच कुछ और ही पेंच काम कर रहे थे।

करते रहें, इसकी उसे चिंता नहीं। आखिर फिर अच्छाई और बुराई, पाप और पुण्य मे अन्तर क्या हुआ। मत भूलिये अच्छाई का माप ही बुराई है और पुण्य का तोल ही पाप है: यदि मालती पारिवारिक समस्याएँ उपस्थित न करती तो भमिया का स्वर्ण-चरित्र कैसे सामने आता। उसका अडिग धैर्य कैसे परखा जाता। मालती के हृदय-भेदी वचन भी उसे सत् एवं आदर्श-पथ से विचलित न कर सके। कौन ऐसी नारी होगी जो—

"मुझे क्या पता था कि सौत को मेरी छाती पर बिठाने के लिए ही तुम मुझ से शादी कर रहे हो।" सुन कर शान्त एवं गाम्भीर्य को धारण किये रहती। साधारण तो क्या असाधारण मनुष्य का खून भी ऐसे दुर्वचन सुन कर खौलने लगता है और दिल चाहता है कि कहने वाले को समाप्त ही कर दिया जावे और महावीर उसे (मालती को) समाप्त करने को बढ़ा भी था। परन्तु वह उसी का पावन चरित्र था कि उसने बीच में आकर कहा, "देवर! तुम्हें मेरी हत्या लगेगी अगर तुमने बहिन को तनिक भी छुआ तो।" पारिवारिक समता तथा स्वाभाविकता लाने का श्रेय उसी को दिया जा सकता है।

भमिया के चरित्र की चरमोन्नत अवस्था और सबसे उज्ज्वल पहलू उस समय सामने आते हैं, जब उसके जिगर का टुकड़ा, उसी के रक्त से सिंचित गुलबिया गिरिजा बन जाती है। अपने ही घर में, अपनी ही पुत्री को, अपने ही द्वारा रखे गये नाम से पुकारने की उसे आज्ञा नहीं मिलती। और यहीं पर बस नहीं, आगे बढ़, बड़ी तेजी से पतन के गर्त की ओर झुकी गिरिजा बात-बात में उसकी अवहेलना करती है। इसकी भी उसे इतनी चिंता न हुई जितनी यह आघात पाकर कि उसकी पुत्री जाने की इच्छा रखती है। वह कहती है:—

"मेरी बात जाने दे। मैं तो जन्म की अभागी हूँ। तेरे चाचा ने इतने प्यार से तुझे पाला-पोसा, उन्हीं की बदौलत तू इतना पढ़-लिख गई, अब आज उन्ही

के पास रहे ? उस देवर के पास रहे जिसमें चरित्र सौ देवताओं से भी उज्ज्वल है। हाँ यही ठीक होगा—उसने मनोविश्लेषण करके निश्चय किया।

झमिया का जीवन स्वार्थमय न होकर परमार्थमय है। वह अपने लिए जीवित रहना भी तो नहीं चाहती। वह जीवित है पर सेवार्थ। उसने कहा भी है, "मुझे अपने लिए कोई चिंता नहीं है। चिन्ता सिर्फ इस छोटी सी छोकरी के लिए है।"

झमिया एक टाइप अथवा वर्गगत पात्र न होकर व्यक्ति प्रधान है। उसके जीवन के अपने विशेष सिद्धांत तथा दृष्टिकोण हैं। हनुमान जी की वह परम भक्त है। परन्तु हनुमान जी ही उसे सब देवताओं में सर्वाधिक क्यों पसन्द आये। यह शायद वह स्वयं भी न जानती थी। उसकी भक्ति श्रद्धा तथा विश्वास के आधार पर टिकी थी न कि किसी तर्क अथवा विज्ञान की भित्ती पर। जनता के हनुमान जी की जयकार का नारा लगाने पर वह पूरी शक्ति से, अन्तरात्मा की सच्चे लगन से, उनके स्वर में स्वर मिलाती हुई कहती :

"जै—ऐ—ऐ—ऐ !"

झमिया के चरित्र में दृढ संकल्प, मर्यादा तथा निडरता के दर्शन भी पाठक को स्थान-स्थान पर मिलेंगे। बैजनाथ के आग्रह पर उसने उसके साथ बम्बई चलने का निश्चय किया ; परन्तु सामाजिक मर्यादा के साथ। बैजू ने तो उसे भागने के लिए उकसाया था, जैसा कि जोशी जी के अनेक उपन्यासों के नायक करते हैं, ठीक नन्दकिशोर की भाँति। और यह पुरुष वृत्ति भी है। पुरुष नारी की अपेक्षा अधिक उच्छृङ्खल है। परन्तु नारी है संयम की मूर्ति, मर्यादा की देवी। झमिया ने विवाह का प्रस्ताव स्वीकार किये बिना जाने से इन्कार कर दिया। यह है उसके चरित्र की दृढता तथा मर्यादा शीलता। इसके साथ-साथ वह निडरता की तो साक्षात मूर्ति ही बन गई। उसका जीवन गंगा की तरह पावन था फिर भय किस बात का—समाज का—उस समाज का जो स्वयं पाखण्डी, कपटी और महामायिक है। चोबे जी को दिये गये उसी उत्तर से कितनी सच्चरित्रता तथा निर्भयता टपक रही है। "आप की नजरों में उस औरत के लिए कभी कोई इज्जत नहीं हो सकती जो विधवा होने पर दुबारा ब्याह करे। इसलिए उसके बारे में आज आपके और साथियों के मन में एक नया शक पैदा हुआ है। मैं इसके लिए आप को या दूसरों को कोई दोष नहीं देती, पण्डित जी मैं किसी को यह समझाना भी नहीं चाहती कि देवर को मैं किस नजर से और वह किस तरह मानते हैं।" सत्य में अपना ही एक तेज होता है जो भस्म करने में समर्थ है। झमिया के निर्भयतापूर्ण सत्य वचनों को रह गये और बातों का विषय ही बदल दिया।

आफतों से वह घबराती नहीं और त्याग से मुख बार समझाने पर कि मेरी शादी तुम्हारे लिए एक

अपनी मां की इच्छा के विरुद्ध अपना नाम बदल लेती है। उसे अपने नाम से देहातीपन की बू आने लगी—उसे स्वेच्छानुसार नाम बदलने दिया गया—बिना यह विचार किये कि इसका दुष्परिणाम क्या हो सकता है—'कल उसे अपने देहाती मां और चाचा में भी बू आ सकती है।'

यही हुआ, गिरिजा बनते ही चरित्र के अनेक मोड़ आये। गिरिजा के प्रारंभिक चरित्र में ही हमें भ्रांत पथिक के चरित्र-दर्शन होते हैं। वह धीरे-धीरे बड़े आदमियों के सम्पर्क में आई और उनके महल देखकर अपनी झोपड़ी को फूंकने चली। दादा के फ्लैट से आते ही उसने कमरे की समस्त वस्तुएँ अस्त-व्यस्त कर दी और मां के पूछने पर कि यह क्यों ? उत्तर दिया —

"खूब किया ! अच्छा किया ! और करूंगी ! जैसे मकान में तुम लोग रहते हो, उसकी यही दशा होनी चाहिए।" उसकी आंखों से क्रोध के आंसू फूट चले थे। आखिर एकदम यह चारित्रिक परिवर्तन क्यों ? प्रश्न उठना स्वाभाविक है। परन्तु इसका उत्तर भी स्वाभाविक बताया जाता है। मनुष्य का चरित्र बना ही कुछ ऐसे धातुओं का है कि जैसे-जैसे वातावरण में वह जाता है वैसा ही बनने की चेष्टा करता है। गिरिजा दादा के उच्च परिवार में उच्च रहन-सहन देखकर आई थी जिसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव उसके सरल मन पर पड़ा ; जिसके कारण वह अपना पथ भूल गई।

मनुष्य के जीवन में ऐसे-ऐसे क्षण आते हैं जब वह चाहने पर भी अपने चरित्र-परिवर्तन की विस्मृत दिशा को बदलने में असमर्थ हो जाता है और फिर उसके आने के भी दो रूप है एक आन्तरिक, दूसरा बाह्य। कभी-कभी जो बाह्य रूप होता है आन्तरिक मन उससे ठीक दूसरी दिशा में चलता है। गिरिजा का चरित्र भी कुछ ऐसा ही है। उसका बाहरी भाग तथा भीतरी भाग भिन्न-भिन्न है—लेखक लिखता है। पृष्ठ १३७ "उस दिन से उसके ऊपरी जीवन के निर्विकार और निश्चिन्त वातावरण के नीचे अशांति और असन्तोष की वह लहर भीतर की गहराई में प्रतिक्षण उथल-पुथल मचाती रही।"

बाहरी चरित्र-परिवर्तन से सदैव भीतरी आत्मा बदला नहीं करती है। विजय आन्तरिक मन की ही होती है। अन्तर्मन को शुद्ध किये बिना परिष्कार एवं कल्याण दुर्लभ है। पाठक देखता ही है कि गिरिजा का आन्तरिक मन किस तेजी से पतन की ओर बढ़ा है। उसके चरित्र में कितने उतार चढ़ाव [illegible] आते हैं। 'रूप तज, पर मोह' में आज भी वह फंस जाती है। [illegible] किसी के प्रति अपने दायित्व को नहीं निभाती।

गिरिजा के चरित्र में हमें क्रमशः [illegible], [illegible], [illegible] परिवर्तन, भावुकता तथा आत्मीयता के चित्र मिलते हैं। [illegible] की [illegible] [illegible]

को दुत्कार कर तू चली जाने की धमकी देती है। ऐसे अनर्थ की बात सोचनी भी नहीं चाहिए।"

कितने करुणामय, त्यागमय तथा निराशापूर्ण वचन हैं। परन्तु क्यों नहीं सोचना चाहिए। "किसी ने अगर मुझे पढ़ाया-लिखाया तो मुझ पर क्या अहसान किया" सुनी कि ये वचन सुनकर उसकी कमर ही टूट गई। ये वचन आज के प्रत्येक भ्रांत युवक और युवती के वचन हैं। जो झमिया को बड़े ही मार्मिक, ऐसे से तीखे विष-बुझे बाणों की तरह लगे—लेखक स्वयं यह १५६ पृष्ठ पर लिखता है।

बस दिन ने अपना काम किया। हमारी नायिका का जीवन-दीप स्नेह-तेल के अभाव में बुझने लगा। बुझने से पहले वह एक बार भड़का अवश्य। जब झमिया किशन और गुलबिया को प्रणय-बंधन में जकड़ा देखती है। परन्तु तब तेल समाप्त हो चुका था। झमिया का जीवनांत पाठक पर अनुन्य वेदन छोड़ जाते हैं।

रूढ़ि के अनुसार गुलबिया उर्फ गिरिजा ही नायिका मानी गई है। रूढ़ि के अतिरिक्त दूसरे अनेक कारण भी उसके पक्ष-समर्थन में दिये जा सकते हैं जैसे उसकी चारित्रिक प्रतिमा, घटना-परिवर्तन आदि में व्यक्तिगत विशेषण तथा नायक स्पर्शण आदि। शैशव की गुलबिया जब यौवन की गिरिजा बनती है तब नाम के साथ-साथ उसके चरित्र में भी आकाश-पाताल का अन्तर हम पाते हैं।

कहाँ यह ६-७ वर्ष की भोली-भाली, गंदी-मंदी गुलबिया, बाल जिसके रूखे और बिखरे हैं, वस्त्र जिसके जीर्ण तथा शीर्ण हैं, नाक जिसकी बहती है, जिसे उसके लम्बे साँस ऊपर खींचने का व्यर्थ प्रयत्न करते हैं, और कहाँ मोहनदास सदृश सुन्दर, सुसज्जित तथा सुशील कुशाग्र बुद्धि जीव को, लड़कियों के जमघट से खींच कर अपनी प्रतिभा द्वारा, अपने शांत, संयत और गम्भीर व्यक्तित्व द्वारा आकर्षित करने वाली गिरिजा। लेखक लिखता है कि मोहनदास अपने अन्तर्ज्ञान से यह जान गया कि वह बड़ी ही बुद्धिमती और समझदार लड़की है।......यह अदना-सी लड़की स्वयं भी मनुष्य के चरित्र का अध्ययन गहराई से करने की क्षमता रखती है।

प्रश्न हो सकता है कि आखिर यह परिवर्तन क्यों कर, यह प्रतिभा एवं क्षमता कैसे आई। झमिया तथा महावीर का त्यागमय जीवन ही इसका उत्तर है। यह जानते हुए भी गिरिजा समझ न पाई। संभल न पाई। मनुष्य-चरित्र का विकास कब किस दिशा में हो सकता है, यह अनुमान लगाना जटिल समस्या है। जीवन के व्यापक क्षेत्र में कभी-कभी मनुष्य-चरित्र में ऐसे मोड़ और अभाव आ जाते हैं कि जिनकी वह कभी कल्पना भी नहीं करता। झमिया के लिए गुलबिया ही आशाओं तथा महत्वाकांक्षाओं का एकमात्र केन्द्र रह गई है। उसके लिए उसने क्या नहीं किया—अपने उस जीवन तक को, जिससे वह पूर्णतया ऊब चुकी थी, किसी-न-किसी तरह बनाये रखा—क्यों? केवल गुलबिया के लिए—गुलबिया के चरित्र में भी ऐसे अभाव आये। वही गुलबिया

अपनी माँ की इच्छा के विरुद्ध अपना नाम बदल लेती है। उसे अपने नाम से देहातीपन की बू आने लगी—उसे स्वेच्छानुसार नाम बदलने दिया गया—बिना यह विचार किये कि इसका दुष्परिणाम क्या हो सकता है—'कल उसे अपने देहाती माँ और चाचा से भी बू आ सकती है।'

यही हुआ, गिरिजा बनते ही चरित्र के अनेक मोड़ आये। गिरिजा के प्रारंभिक चरित्र में ही हमें भोले पथिक के चरित्र-दर्शन होते हैं। वह धीरे-धीरे बड़े आदमियों के सम्पर्क में आई और उनके महल देखकर अपनी झोंपड़ी को फूँकने चली। शांता के फ्लैट से आते ही उसने कमरे की समस्त वस्तुएँ अस्त-व्यस्त कर दीं और माँ के पूछने पर कि यह क्यों ? उत्तर दिया —

"खूब किया ! अच्छा किया ! और करूँगी ! जैसे मकान में तुम लोग रहते हो, उसकी यही दशा होनी चाहिए।" उसकी आँखों से क्रोध के आँसू फूट चले थे। आखिर एकदम यह चारित्रिक परिवर्तन क्यों ? प्रश्न उठना स्वाभाविक है। परन्तु इसका उत्तर भी स्वाभाविक बताया जाता है। मनुष्य का चरित्र बना ही कुछ ऐसे धातुओं का है कि जैसे-जैसे वातावरण में वह जाता है वैसा ही बनने की चेष्टा करता है। गिरिजा शान्ता के उच्च परिवार में उच्च रहन-सहन देखकर आई थी जिसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव उसके सरल मन पर पड़ा ; जिसके कारण वह अपना पथ भूल गई।

मनुष्य के जीवन में ऐसे-ऐसे क्षण आते हैं जब वह चाहने पर भी अपने चरित्र-परिवर्तन की विस्मृत दिशा को बदलने में असमर्थ हो जाता है और फिर उसके आने के भी दो रूप हैं एक आन्तरिक, दूसरा वाह्य। कभी-कभी जो वाह्य रूप होता है आन्तरिक मन उससे ठीक दूसरी दिशा में चलता है। गिरिजा का चरित्र भी कुछ ऐसा ही है। उसका बाहरी आपा तथा भीतरी आपा भिन्न-भिन्न हैं—लेखक लिखता है। पृष्ठ १३७ "उस दिन से उसके ऊपरी जीवन के निर्विकार और निर्विचित्र वातावरण के नीचे अशांति और असन्तोष की वह लहर भीतर की गहराई में प्रतिक्षण उथल-पुथल मचाती रही।"

बाहरी चरित्र-परिवर्तन में सदैव भीतरी आपा अपना पार्ट प्ले करता है। विजय आन्तरिक मन की ही होती है। अन्तर्मन को युद्ध किये बिना परिष्कार एवं कल्याण दुर्लभ है। पाठक देखता ही है कि गिरिजा का आन्तरिक मन किस तेजी से पतन की ओर बढ़ा है। उसके चरित्र में कितने उतराव उसके फलस्वरूप आ जाते हैं। 'स्व तज, पर मोह' के जाल में वह फंस जाती है। किशन, भगिया या महावीर किसी के प्रति अपने दायित्व को नहीं निभाती।

गिरिजा के चरित्र में हमें क्रमशः सरलता, बुद्धिमत्ता, मानसिक पतितता, भावुकता तथा आत्मीयता के चित्र मिलते हैं। शैशव की मुग्धविधा नितान्त सरल

एवं निगोड़ी है, जो कि किशोरावस्था तक पहुँचते-पहुँचते बुद्धिमान एवं कुशाग्र बुद्धि जीव बन जाती है, परन्तु जिसका यौवन आते ही उसे पथ-भ्रष्ट कर उसके मस्तक को अनेक महत्वाकांक्षाओं से भर देता है। जिसके कारण उसका मानसिक पतन होता है और वह धीरे-धीरे भावुकता के प्रभाव मे बहकर अपने को भूलती हुई दूसरो के मोह-जाल मे फँस जाती है। परन्तु एक ही मानसिक आघात उसकी जीवन-दिशा एवं चरित्र-चित्रण को बदल डालता है। वह है हेमकुमार द्वारा मोहनदास आदि का उसके प्रति उपेक्षा धारण करने का रहस्योद्घाटन। तभी उसमे आत्मीयता जाग्रत हो जाती है। वह अपने मन को पहचानती है। अपनी भूलों को स्वीकार करती है। उसे ध्यान आता है कि गुलबिया अभी मरी नही। वह किशन से कहती भी है।

पृ० २५१ "उस गुलबिया को तुम आज क्यों भूल गये हो ? वह गुलबिया मरी नही, अभी तक जिन्दा है, किशन ! पर सुबह की भूली हुई वह गुलबिया जीवन के उल्टे सीधे रास्ते से होकर शाम को फिर घर लौट आई है, यह सूचना अभी तक तुम्हे नही मिली, यह आश्चर्य की बात है.......।"

किशन के प्रति गिरिजा के मन मे शैशव से ही एक विशेष स्थान रहा था। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि गिरिजा गुलबिया की अवस्था से ही प्रेम करती थी तब से ही, जब उसे यह पता भी न था कि प्रेम क्या होता है। वह जानती थी तो बस यही कि किशन उसका बाल-सखा है। खेल का साथी है—क्या पता था कि खेल का साथी जीवन का साथी भी बन सकता है। परन्तु किशन के प्रति उसका व्यवहार दो प्रकार का रहा है। सरलता से समझ मे नही आता। शैशव अवस्था मे वह उसके साथ खेलती है। उसकी धाक भी मानती है। परन्तु स्कूल में कुछ पढ़ लेने पर उससे परे रहती है। पृष्ठ ८३ "परन्तु फिर भी किशन को देखकर उससे बातें करने और खेलने का लोभ वह नही संभाल पाती।" फिर वह अपनी सहेलियो में या पुस्तकों में व्यस्त हो जाती है और किशन को दुविधा तथा संदेह मे रखती है।

भमिया के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निभाने मे भी नायिका असफल रही है। उसने माँ का प्यार पाया है, उसने उसे पुत्री का स्नेह लुटाया (She only kuows to take and does not know to return) परन्तु अन्त मे वह अपनी मायिक भ्रान्ति को स्वीकार कर कर्तव्य-पथ पर लौट आती है और कथा के अन्त में माँ के चित्र का उद्घाटन अपने प्रियतम किशन से कराती है।

महावीर के प्रति उसका व्यवहार ठीक वैसा ही रहा जैसा माँ के प्रति। मिस वोहरा को उसने अपनी कुशाग्र बुद्धि तथा अनन्य भक्ति से जीत लिया।

हेमकुमार के प्रति उसका व्यवहार शिष्ट मर्यादापूर्ण नारी का व्यवहार रहा। उसने हेमकुमार के हृदय को जीत लिया, परन्तु जीत कर नाटकीय ढंग से बहिन के स्नेह-दान के रूप में लौटाया।

मोहनदास, शंकरलाल आदि उच्चवर्ग मे उसने प्रतिकार लिया और समाज को दिखाया कि छोटे कुल मे उत्पन्न होकर भी सत्प्रयत्नो तथा शुभ विवेक से असाधारण उन्नति की जा सकती है। उसका चरित्र इस तथ्य का उज्ज्वल प्रमाण है कि व्यक्ति उच्च कुल में उत्पन्न होकर बडा नही होता, बल्कि उच्च कर्मों से बडा होता है।

दीन दुखियों के प्रति उसके हृदय में अगाध प्रेम है। भिखारियों को दान करते चले जाना इसका आदर्श उदाहरण है।

मालती—नारी पात्रो मे एक प्रसिद्ध चरित्र मालती का भी है। वह भमिया की देवरानी तथा महावीर की पत्नी है। बड़ी ही अभिमानिन तथा तुनक मिजाज। बम्बई मे रहने के कारण उसे नगर की हवा लग चुकी है। भमिया जब उसे प्रथम बार देखने के लिए चौबे जी के साथ आती है तब वह भमिया की ओर इस दृष्टि से देखती है मानो उसे खा जायेगी। पर भमिया की आँखों में पुलक झलक रहा था। नाम पूछे जाने पर वह उपेक्षित भाव से किसी ओर भी न देख कर कहती है 'मालती'।

विवाह के पश्चात् ही ससुराल पर आने पर वह परिवार मे कटुता उत्पन्न करती है। पारिवारिक विषमता तथा अस्वाभाविकता इसी के कारण आती है। इसके सम्बन्ध मे जो नये-नये अनुभव महावीर को प्राप्त हुए उनके कारण उसकी परेशानियाँ बढ़ी। मालती भमिया को किसी भी कार्य में सहायता न देती थी। बल्कि उल्टे उस पर ताने कसती, ईर्ष्या, कुढन और क्रोधाग्नि उसके चरित्र के त्रिकोण हैं। दूसरों पर वाक्य कसना भी वह खूब जानती। विवेक नाम का कोई गुण उसमे नही है। तभी तो बिना विचारे ही अनेक प्रकार के वाक्य वह कह देती थी, सोचती न थी। भमिया को उसने कौन तरह कह दिया, तभी तो महावीर उसे कमीनी तक की पदवी दे डालता है। और घर से बाहर तक निकाल देना चाहता है। जिस पर इसका आवेग बढ़ जाता है और आवेग मे ही वह डालती है :—

"मैं पहले ही से जानती थी यह बात। मै जानती थी कि तुम कभी उसे छोड़ना नही चाहोगे। मुझे पता था कि वह मेरी सौत है। पर मैं पूछती हूँ कि अगर तुम उसे इतना चाहते थे तो क्यो मेरे साथ शादी करके तुम ने मेरा सर्वनाश किया ?"

दृढ़ता नाम की कोई वस्तु उसके चरित्र मे नही है। यह सङ्कल्प कर लेने पर भी कि भमिया की जड़ मैं उखाड़ कर ही रहूँगी। वह कुछ नहीं कर पाती। यदि कहना चाहूं कि भमिया के आदर्श चरित्र ने उसे सत्पथ पर ला दिया हो तो यह बात भी नहीं। समय-समय पर वह उनकी खिल्ली उड़ाने से बाज नही आती। पाठक जानते हैं कि जब गुलनिया के पाउडर लगाने में भमिया और महावीर असमर्थ रहे तब वह एक कोने में खड़ी तमाशा देखती मुस्कराती रही। फिर महावीर के अनुरोध पर अपनी

निपुणता सिद्ध कर अपने ज्ञान को सिद्ध करने तथा उनकी अज्ञानता दर्शाने का सुअवसर पाकर वह गौरव से फूली नही समाती।

दो सन्तान उत्पन्न कर साधारण जीवन-यापन उसने किया, इसके अतिरिक्त किसी निश्चय पर वह पहुँचती नहीं। उसके चरित्र मे आगामी मानसिक घात-प्रतिघात लेखक ने दिखाये ही नही है।

किशन को हम निर्विवाद रूप से नायक के आसन पर आसीन कर सकते हैं। उसके नायकत्व के बारे में किसी को भी किसी प्रकार का संदेह उत्पन्न नही हो सकता।

किशन को हम पहले-पहल गुलबिया के काम की अनिपुणता के लिए उस पर छीटे कसते देखते हैं। वह स्वयं अपने को निपुण, बुद्धिमान तथा चतुर समझता है। गुलबिया से अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क करता है। परन्तु यह सारा वाद-विवाद हास्य-गर्भित होता हुआ भी असङ्गत तथा अस्वाभाविक है।

शिक्षा एवं विद्या के प्रति उसका विशेष अनुराग और झुकाव है। वह गिरिजा को पढ़ते हुए देख स्वयं भी पढ़ना चाहता है। फालतू समय में उसकी कोई-कोई पुस्तक उठा कर ले आता है और घण्टो पढ़ता रहता है। किशन को गुलबिया की सर्व दिशाओं मे शीघ्र उन्नति देखकर अचम्भा भी होता है, साथ ही संकोच भी। वह सोचता है वही गुलबिया जिसे कभी वह डाँटता था, कभी जिस पर रौब जमाता था, आज क्या-से-क्या हो गई। अब वह अपने को उससे बड़ा मानने लगी है। अब वह जब उसके पास जाता है तब उसे पुस्तक पढ़ने या लिखने मे व्यस्त देख कर अत्यंत संकोच से उस के पास ही एक कोने में दुबक कर बैठ जाता था। कभी-कभी वह कह देती कि फिर किसी समय आना किशन। तब वह उदास चेहरा लेकर लौट आता। पृष्ठ ३८—

किशन के मन मे मानसिक द्वन्द भी आये हैं। अनेक समयों पर उसने मन में प्रतिज्ञा की है कि वह गुलबिया के पास न जायेगा। परन्तु ऐसा वह कर भी तो नही पाया। प्रेम उसके जीवन की एक शाश्वत समस्या बन गई। उसकी अवेलना करने में वह अपने को किसी प्रकार पृष्ठ १०९—भी समर्थ न पाता था। गुलबिया के गिरिजा बन जाने पर वह उसके और अपने बीच में एक बहुत बड़ा व्यवधान पाता था और भीतर एक तीव्र द्वन्द का अनुभव करता था। गिरिजा और गुलबिया उसके आगे दो भिन्न व्यक्तियों के रूप में आते थे। गुलबिया उसके मन की चहारदीवारी के भीतर अभी तक बधी थी, पर गिरिजा दीवार को फाँद कर निकल गई थी।

वही गिरजा जब फिर से यह अनुभव करती है कि वह गुलबिया ही है। उसका वास्तविक रूप गुलबिया ही है। तभी दोनों का एकाएक हो जाता है। सच्चे प्रेम में अपना विशेष आकर्षण होता है। किशन का जीवन-चरित्र इस तथ्य का उद्घाटन करता है। उसका सच्चा प्रेम सुबह की भूली हुई गिरिजा को गुलबिया बना कर लौटा लाता है।

किशन का चरित्र समय की अनेक परिस्थितियों की मार खाकर लोहे के समान दृढ़ हुआ हम पाते हैं। एक निर्धन बाप की इकलौती संतान होने के कारण उसे विद्या प्राप्त करने की सुविधा न मिली—'करत-करत अभ्यास से जड़मति होत सुजान' वाली कहावत उस पर चरितार्थ होती है। उसने कम्पोजिंग का काम किया और वहाँ पर हुए पूँजीवादी अत्याचारों को नग्न होकर तलाशी दे-दे कर उसने सहा है। अमिया के प्रति गिरिजा के उपेक्षित व्यवहार को देख कर वह अमिया के लिए पुत्र बन कर उसकी सेवा करता है।

परिस्थितियों के आघातों ने उसके मन को सशक्त बना दिया है। उसके बाद गिरिजा के कहने पर कि वह गुलबिया बन सुबह की भूली भटकी अब घर आ गई है, वह कहता है—तुम्हारी इस बात में कविता का कोई स्वर, भावुकता की कोई धारा तो नहीं है। (पृष्ठ २५१)

किशन के भीतर अभिनय-कला के बीज भी वर्तमान हैं। परन्तु उन्हें हर कोई जानता नहीं, पहचानता नहीं। जैसे सोने की परख केवल जौहरी को ही होती है वैसे ही कला की परख भी किसी कलावान को ही होती है और कलावती गिरिजा ही उसे खोज निकालती है। वह उसे अपने चित्र प्रकाश ज्योति के लिए नायक के रूप में चुनती है, जिस पर सभी को सन्देह है कि सफलता कैसे मिलेगी। परन्तु अन्त में वह उसकी अन्तर्निहित शक्तियों का विकास कर उसे सफल अभिनेता बना देती है।

किशन को हम क्रमशः एक बिगड़ा दिल खिलाड़ी, उद्योगी युवक और फिर सफल कलाकार के रूप में पाते हैं। शैशव के साथ-साथ किशोरावस्था का अमूल्य समय भी उसने रेत के घरौंदे बना कर नष्ट किया है। यौवन के दिनों में प्रेम के महल बनाये और मिटाये हैं, परन्तु अपने अनुरूप परिश्रमी शिक्षा तथा अभिनय की कलाकारिता से जीवन में ऐसी शिक्षा लेता है कि अपने जीवन की दिशा ही बदल देता है। गिरिजा के सम्पर्क में आकर आदर्श विद्यार्थी और सफल कलाकार बन जाता है। इसके अतिरिक्त उस जीवन में एक युवक-महत्वाकांक्षाएँ तथा प्रेमी की भावनाएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। गिरिजा के यह बता देने पर भी कि सुबह की भटकी गुलबिया लौट आई है—वह सोचता है—

"कहीं ऐसा तो नहीं है कि गिरिजा ने उसके मन में केवल अभिनय के प्रति आत्मविश्वास जगाने के उद्देश्य से ऐसी धारा बहा दी हो, और अन्तर्द्वन्द्व को जानबूझ कर छिपा कर उसे कुछ समय के लिए भ्रम में डाल रखा हो—गिरिजा एक जन्मजात अभिनेत्री है।"

ऐसा सोचते ही उसके मन को घनघोर अवसाद ने घेर लिया। फिर भी दुःख सुख, शान्ति कलह, सन्देह स्नेह और प्रेम तथा तनाव के झूले हुए कुछ दिन इस प्रेम के पश्चात् उसके चरित्र की अन्तिम एवं सर्वोत्तम [illegible] हम सब देखते हैं कि वह

तथा गुलबिया प्रण-बंधन मे बंधे। झमिया का चित्र हाथ मे लिए खड़े होते हैं और वह उस चित्र का उद्घाटन कर कुछ देर तक निश्चित और रोमांचित भाव से झमिया की उस राजीव सी लगने वाली प्रतिमा की ओर निहारता है।

हेमकुमार—यहउपन्यास का प्रति नायक है। यह हमारे सामने खलनायक के रूप में आता है। परन्तु उसका व्यवहार ऐसा हम पाते नही। स्वभाव से अति प्रसन्न चित्त व हंस मुख है। परन्तु दार्शनिक न था। गिरिजा जैसे स्वप्न से चौंक उठी। हेमकुमार के समान 'विदूषक' की अर्न्तदृष्टि इस कदर पैनी हो सकती है, इसकी कल्पना भी उसने न की थी। दिखावट और आडम्बर से उसे घृणा रही। तभी तो वह मोहनदास तथा चन्द्रमोहन आदि के समाज की कटु आलोचना करते हैं। पृष्ठ १७१

गिरिजा को अभिनेत्री बनाने का श्रेय भी यदि किसी को दिया जा सकता है तो इन्ही महानुभाव को। सिने-दुनिया के सभी अनुभव इन्हें प्राप्त थे, तभी तो कृपण शकरलाल से सचेत रूप में वार्ता करने की पट्टी इन्होंने गिरिजा को पढाई तथा कलाकार को कला का उचित मूल्य दिलाया।

हेमकुमार के हृदय मे दीन-दुखियों के लिए उतनी ही सहानुभूति है जितनी कि गिरिजा मे भिखारी समस्या को हल करने के लिए—वह ऐसे संघ खोलने की अनुमति देता है जिनमे उन्हें शिल्प आदि सिखा कर आत्म निर्भर किया जा सके। उसका भाषण सुन कर गिरिजा के आगे उसका एक नया ही रूप आया। पृष्ठ १८१

हेमकुमार एक सच्चे प्रेमी के रूप मे भी सामने आता है। प्रथम साक्षातकार से ही वह गिरिजा को चाहने लगा था। अप्रत्यक्ष रूप से उसने अपने प्रेम का प्रदर्शन भी समय-समय पर किया। प्रत्यक्ष रूप से उसने गिरिजा के जीवन-विकास के सूत्रों को अपने हाथो में लिया और आगे बढाया। परन्तु जब मन की ज्वाला अत्यधिक धधक उठी तब उसे वह मन में कब तक छिपाये रखता। आखिर उसने अपने मनोभाव गिरिजा के आगे स्पष्ट रूप मे व्यक्त किये—"क्या आप इस तुच्छ सेवक को अपना जीवन-साथी बनाना स्वीकार करेंगी ?" गिरिजा विस्मित दृष्टि से हेमकुमार का मुख देखती रह गई। ढाडस बाँध कर उसने जो उत्तर दिया उसे सुन कर हेमकुमार सन्न रह गया, ऐसा फीका पड़ गया, जैसे उसमे रक्त की एक बूंद भी उसका चेहरे, मे शेष न हो। यहाँ उसे हम एक असफल प्रेमी के रूप में पाते हैं। परन्तु अपने प्रेम को असफल रूप मे देख कर भी उसके मन में विकार उत्पन्न न हुआ, कोई प्रतिकार की भावना जागृत नही हुई। बल्कि मन मे पाले हुए स्वप्न के सहसा भंग हो जाने पर भी वह शांत एवं गम्भीर बना रहा। उस सारी घटना को ही उसने अजीब फिट बनाया—सारा दोष अपने भाग्य का बता कर अपनी दुःख भरी कहानी गिरिजा को सुनाई।

हेमकुमार का शैशव तथा किशोरावस्था करुणा की लम्बी कहानी है। दीनता को नग्न रूप में उसने नृत्य करते देखा है। अनेक दिन निराहार रह कर बिताये हैं। मां का स्नेह पाने पर भी मां से दूर रह कर रोज़ी की खोज में वह भटकता रहा है। उसका समस्त जीवन ही आश्रयहीन, अनाथ और असहायावस्था का जीवन बना रहा है। क्योंकि जब गिरिजा रूपी माता और आश्रय उसे मिलने लगा तभी वह स्वप्न हो गया। अन्त का स्नेह देकर भी गिरिजा उसे बचा न सकी।

जीवन दर्शन—प्रत्येक कलाकार का जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण होता है, जिसे वह अपनी कला में भिन्न भिन्न रूपों में प्रस्तुत करता है। 'सुबह के भूले' का लेखक भी जीवन के प्रति विशिष्ट दृष्टि-कोण रखता है। उसके दर्शन का सर्व-प्रबल स्तम्भ है मनोविज्ञान। उसकी प्रत्येक कृति में मनोवैज्ञानिक तथ्य तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भरे मिलते हैं। लेखक ने गिरिजा की कहानी लेकर मोहनदास, महोदय चन्द्रमोहन, शान्ता आदि पात्र देकर एक ऐसे समाज का ढांचा प्रस्तुत किया है जो ऊपर से आकर्षक परन्तु भीतर से थोथा है। जिसमें सभी ओर कृत्रिमता तथा आडम्बर है, जो सब समय एक ही तरह की बातें करता है और एक ही तरह के छिछले वातावरण से घिरा है। जहां व्यक्ति का मान व्यक्तित्व की विशेषता के कारण नहीं होता अपितु उसके सामाजिक स्थान तथा कुल की ख्याति के अनुसार होता है। जहां एक बार कुल की पोल के ढोल खुल जाने पर अवमानता ही अवमानता है, घोर तिरस्कार है, मोहनदास का गिरिजा की ओर आकर्षित होकर फिर रुख बदल जाना इसका ज्वलन्त उदाहरण है। उसका प्रारम्भिक उल्लास, उत्साह एवं उच्छ्वास मानो छू-मन्त्र हो गया।

जोशी जी की नारी की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है। वह पुरुष द्वारा अपमानित, प्रताड़ित तथा समय-समय पर उपेक्षित नारी नहीं। किसी के हाथों द्वारा संचालित कठपुतली भी नहीं, अपितु स्वेच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं तथा निजी मान्यताओं की प्रतीक आधुनिक नारी है। जोशी जी की नारी इनके प्रत्येक उपन्यास पर छाई मिलती है। हर वस्तु का संचालन मानो वह स्वयं अपने हाथों कर रही हो। पात्रों का निर्माण मानो उसके इङ्गित पर होता हो। किसी विशेष वातावरण की सृष्टि ही मानो उसके कारण हो। परदे की रानी की—सन्यासी की शान्ति और जिप्सी की—तथा 'सुबह के भूले' की गुलबिया भुलाई नहीं जा सकती। पृष्ठ १६८—मोहनदास ने प्रारम्भिक परिचय में इतनी अधिक आत्मीयता दिखा कर बाद में क्यों कन्नी काट ली—उस समाज के युवकों और युवतियों ने उसके प्रति स्पष्ट रूप में अवज्ञता का भाव जताना आरम्भ कर दिया। आखिर क्यों? इस क्यों का उत्तर मिल जाने पर वह निराश होकर नहीं बैठ जाती, आत्म-हत्या का निश्चय भी नहीं करती, अपितु दृढ़तापूर्वक स्वोत्थान कर नाम और ख्याति पाकर उन्हें नीचा दिखाने का संकल्प करती है और इस

संकल्प में वह सफल भी होती है। हेमकुमार द्वारा दर्शाये मार्ग पर चल कर सफल अभिनेत्री बनी, फिर सफलतम निर्देशिका और लेखिका भी। उसने 'सुबह के भूले' का कथानक अपने जीवन-अनुभवों से लेकर एक चित्र का निर्माण किया जिसमें बम्बई के फैशनेबुल समाज के कृत्रिम जीवन और सांस्कृतिक ढोंग का पर्दा-फाश किया। ऐसे मार्मिक व्यंग भरे दृश्य रखे जिन्हें देखकर उदासीनता कोसों दूर भागे और कृत्रिमता स्वयं रो उठे। नायक का चरित्र मोहनदास से मिलता-जुलता था। जो सम्पन्न है और सम्पन्नता से अनेक लड़कियों (फैशनेबुल) को अपनी ओर आकर्षित कर घेरे रखता है। पृष्ठ २४१—सहसा किसी अज्ञात और अपरिचित क्षेत्र से एक ऐसी नारी उसके जीवन-प्रांगण में प्रवेश करती है जो अपने साथ ही कुछ नई अनुभूतियाँ, नई प्रेरणाएँ और नई चेतना लाकर उसके रस-मय जीवन को एक मूलतः नई भाव-तरंग के तल से सतह तक हिलोरे देती है। वह अपनी अनुभवहीनता के कारण अपने अभ्यस्त जीवन से उकता कर, मोहवश फैशनेबुल समाज के कृत्रिम जीवन के प्रति आकर्षित होकर नायक को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल होती है। परन्तु वह आकर्षण कृत्रिमता के आधार पर स्थिर होने के कारण क्षण-भंगुर सिद्ध होता है। किसी प्रकार यह पता लग जाने पर कि लड़की निम्नतम स्तर से आई है, सभी उससे कन्नी काट जाते हैं। नायिका धैर्य से काम लेकर अपने जीवन-विकास में जुट जाती है और सफलता के उच्चतम सोपान पर पहुँच कर एक ऐसी शिक्षा-संस्था खोलती है जिसमें निम्नतम से निम्नतम व्यक्ति शिक्षा पाकर आत्मोन्नति कर सकें। नायक ऐसा देख पश्चाताप की अग्नि में जलता है और उससे क्षमा मांगता है और वह क्षमा कर देती है।

थोड़ी सी कल्पना होते हुए भी यह कहानी गिरिजा की अपनी है अतः सफलता उसके चरण छूती है।

जोशी जी ने भारतीय दर्शन-सार अहंकार को अपनाया है। अपनी कृतियों में इसका व्यापक वर्णन भी किया है। 'संन्यासी' का नन्दकिशोर अपनी अहं वृत्ति में लिए भटकता फिरता है तथा इसी अहं के कारण नन्दिनी के आत्मघात का कारण भी यह बनता है। 'सुबह के भूले' की नायिक गिरिजा इसी के तृप्त्यर्थ मोहनदास को अपनी ओर आकर्षित करती है और उसके सम्पर्क में अपने को पाकर अपने अहं को तृप्त करती है। यह अहं ही उसे पथ-भ्रष्ट कर, वात्सल्यमयी अमिया और स्नेहमय महावीर तथा प्रेममय किशन से कुछ समय के लिए विलग कर देता है। इसके Sublimation के पश्चात् ही वह इन सबसे मिल पाती है।

जिप्सी

यह हिप्नोटिज्म, मनस्तापों से परिपूर्ण, कुंठा, संस्कारों से पूर्ण प्रोलेतेरियन क्रान्ति के स्वर्णस्वप्नों में लीन एक पूँजीवादी जमींदारी की रोमानी गाथा है, जिसे यथासमय मानव ने अपने शब्दों में निबद्ध करने की चेष्टा की है—इस तथ्य का उद्घाटन लेखक ने स्वयं उपन्यास की अनुक्रमणिका में किया है। लेखक के मतानुसार जिसका अन्त सच्चा और दिलचस्प था, तभी उसने इसे औपन्यासिक शिल्प में ढालने का यत्न किया। उसका यह यत्न सफल बना या नहीं—यह विचार करना है।

जोशी जी सदृश्य सफल उपन्यासकार से हमें यह आशा कदापि नहीं रही कि वह एक कुंठा, मनस्तापों में पले अन्तर्द्वन्द्व युवक के चंचल रोमांस को सफल बनाने के बजाय एक शुष्क, नीरस वातावरण में ढाल कर, उस पर कुछ सिद्धान्तों का मुलम्मा चढ़ा कर विचाराधार कर उसे अरुचिकर बना डालेंगे। उपन्यास के प्रारम्भ में अनुक्रमणिका और अन्त में ही दो पृष्ठ का उपसंहार लिखकर लेखक ने सारा दायित्व कथा-नायक पर डालने की चेष्टा की है। किन्तु फिर भी आलोचना की सीमा के दायरे से बाहर वह निकल नहीं सकता, क्योंकि सारी कथा का लेखक वह है, कथा-नायक नहीं।

औपन्यासिक कला की दृष्टि से यह रचना जोशी जी की निकृष्टतम रचना है। कथा-तत्व का पूरा ध्यान रखना चाह कर भी लेखक अपने कथानक के साथ पूर्ण न्याय नहीं कर पाया। लगता है कुछ विशेष सिद्धान्तों का प्रचार करने के निमित्त ही उसने यह प्रपंच रचा है। कथा में एक नहीं अनेक स्थानों पर लम्बे-लम्बे भाषण जोड़ दिये गये हैं। धार्मिक, आर्थिक और नैतिक क्रान्ति ही उसे अभीष्ट है। उसके लिए विशेष-विशेष पात्रों द्वारा विशिष्ट समस्याओं पर प्रकाश डलवाया गया है और ये पात्र अपनी बात कहते समय भूल जाते हैं कि कथा क्या है, वातावरण क्या है, घटना क्या है समय और स्थल क्या है? पात्र कौन है, पाठक कैसा है? ये बातें तो मानो लेखक भूल ही बैठा है। वह कुछ नवीन प्रयोग करने बैठा है।

हिप्नोटिज्म को ही लीजिए। लेखक ने कथा का विकास ही हिप्नोटिक कला के साथ-साथ दिखाया है। मनिया नामक एक साधारण सी जिप्सी बालिका रंजन सदृश्य सुशिक्षित, सुसभ्य बुद्धिवादी प्राणी के संसर्ग में आकर जीवन की साधारण प्रवृत्ति प्रेम को स्वाभाविक रूप में स्वीकार नहीं करती। उसमें प्रेम-भाव जाग्रत करने के लिए, उसे अपनी ओर आकर्षित कर, पूर्णतः वशीभूत करने के लिए, लेखक को

विशेष मनोवैज्ञानिक क्रियाओं का आश्रय लेना पड़ा है। वह नायक द्वारा यों करता है कि जैसे उस स्त्री को अपने निकट लाया जा सकता है। रंजन दिन भर ही नहीं रात को भी अशांत और उद्विग्न मन से सोचता है कि किस उपाय से मनिया से निकट-सम्बंध स्थापित हो। उसके रोमानी प्राणों में एक विचित्र सा प्रवाह बह रहा है, मस्तिष्क में अनगिनत विचार कौंध रहे हैं। फलस्वरूप वह मनिया का समस्त सामान खरीद कर उसके मन पर अजीब सा आतंक जमा देता है। उसे मर्मभेद की प्रथम घूंट पिला कर मस्त कर देता है और फिर यथार्थ जीवन की ठोकर लिखा कर (उसकी चोरी हो जाने के कारण गाढ़ी अन्तर पीड़ा के प्रति) उसे सांत्वना देकर उसकी अन्तर-चेतना को विशेष परिस्थिति में डाल कर अपनी हिप्नोटिक कला का प्रयोग करता है। प्रथम बार किया गया उसका प्रयोग उसे आशातीत सफलता प्रदान करता है, जो इस प्रकार है। रंजन मनिया को हिप्नोटिक स्लीप की अवस्था में ले जाता है। फिर दृढ़ता से आदेशात्मक वचनों में पुकारता है—

"मनिया"

"वह उसी सोयी हुई अवस्था में बोल उठी—"हाँ !"

"मैं कौन हूँ।"

"रंजन बाबू।"

"सच बताना मनिया, तुम क्या मुझे चाहने लगी हो।"

"मैं तुमसे बहुत डर गई हूँ। तुम मुझे साक्षात् काल की तरह लगते हो। मेरी रूह तुम्हें देख कर काँप उठी है। मैं तुमसे छुटकारा चाहती हूँ, पर छूटने का कोई उपाय खोज नहीं पाती। मुझे बचाओ !" और वह उसी सम्मोहन की निद्रावस्था में ही फफक-फफक कर रोने लगी।"[1]

इस हिप्नोटिक स्लीप में कहे गये वचन मनिया के अवचेतन में समाये भावोद्गारों का चित्र प्रस्तुत करते हैं। वह किसी कारण से रंजन से बहुत ही अधिक भयभीत है। उसके अवचेतन मन ने कभी-भी-किसी भी रूप में रंजन को प्यार नहीं किया। उधर धुंआँ वातावरण में पला, पूंजीवादी संस्कारों से ढला रंजन उस पर अधिकार चाहता है, पूर्ण अधिकार। उसे प्राप्त करने के लिए वह सम्मोहन शक्ति का आश्रय लेता है। और सुषुप्तावस्था में रो रही मनिया पर आतंक डालता है। वह उसके भोले मन और भावी में सम्भावित विद्रोही भावों को जीत कर अपने प्रति आसक्त करने के निमित्त कहता है—"तुम्हें छुटकारा तभी मिलेगा जब मैं चाहूँगा।" बोला "मुझे प्यार करोगी तो खुश रहोगी।" "हाँ, प्यार करूँगी और खुश रहूँगी।"[2]

१. जिप्सी पृष्ठ ५८
२. " " ५६

किन्तु भावी प्रबल है। रंजन और उसकी सम्पूर्ण सम्मोहन शक्ति बेकार सिद्ध होती है। कथा के अन्तिम छोर पर पहुँच कर मनिया स्वयं मंजुला का रूप धारण करके आती है और रंजन के आगे उसका कच्चा चिट्ठा खोल देती है और सम्मोहन शक्ति की व्यर्थता सिद्ध करती है। इसका अर्थ यह नहीं कि सम्मोहन शक्ति नामक कोई कला नहीं है। है! किन्तु उसका प्रयोग, और प्रयोग के लिए पात्र और वातावरण की सृष्टि अनिवार्य है।

लेखक का सम्मोहन के प्रति अति मोह ही उसे कथा-तत्व को गौण कर मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों में उलझे रखने में समर्थ हुआ है। जोशी जी ने यदि एक बार इस कला का प्रयोग करवा कर इसे छोड़ दिया होता और पात्रों को स्वाभाविक गति से प्रगति करने की छूट दी होती तो सम्भवतः कथानक का रूप कुछ सुघड़ होता। किन्तु वह तो जल्दी-जल्दी इसका प्रयोग कर इसके प्रचार में संलग्न दृष्टिगोचर होते हैं। लेखक ने कम-से-कम चार पाँच प्रसंगों में इस कला को उद्धृत किया है और क्रमशः इसका प्रभाव कम होता दिखलाया है। एक स्थल पर तो उसने इसकी असफलता के बाद असफलता के कारणों का उल्लेख भी किया है। "इसका मूल कारण मैं स्वयं हूँ, दूसरा कोई नहीं। तब मेरी सफलता का कारण यह था कि तब मैं मनिया की सच्ची मंगल-कामना से प्रेरित होकर, उसकी दयनीय परिस्थिति को देखते हुए आन्तरिक करुणा से सच्चा आत्मिक बल पाकर उसके मन को प्रभावित करने को उद्यत हुआ था। पर आज मैं उसकी वास्तविक कल्याण-कामना से प्रेरित न होकर अपनी स्वार्थ-हानि की आशंका से ईर्ष्या-दग्ध होकर कृत्रिम मानसिक बल के प्रयोग से उसे 'हिप्नोटाइज' करने लगा था।"[1]

इन मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों को पढ़ते-पढ़ते पाठक ऊबने लगता है। मूलतः वह कथा प्रेमी है, मनोविज्ञान अध्येयता नहीं। उसे कथा चाहिए। कथानक का स्वाभाविक विकास वह चाहता है। पात्रों के अत्यधिक मनोद्वन्द्वात्मक उतार-चढ़ाव; गति यति और उन्नति-अवनति ही प्रभावित कर सकते हैं। हिप्नोटिक कला का विवरण उसे नहीं चाहिये। एक परिचयात्मक शैली के रूप में ही उसे वह स्वीकार कर सकता है; कथा-शिल्प के रूप में नहीं।

हिप्नोटिक चमत्कारों के पश्चात् बुर्जुआ संस्कारों का वातावरण खींचने की चेष्टा की गई है। कथानक में कई जगह रंजन अपने बुर्जुआ संस्कारों का परिचय देकर एक बुर्जुआ वातावरण का सृजन करता है। मसूरी के होटल में, शान्तिनगर के बंगले पर, शोभना की कोठी में हमें एक भव्य, कलित, ऐश्वर्यपूर्ण संसार के दर्शन होते हैं। मनिया के मन को पूर्णतया वशीभूत करने के लिए हिप्नोटिक प्रयोगों के साथ-साथ

---

1. जिप्सी पृष्ठ १४७

रात की सैर करते हुए, छिटकी हुई चाँदनी में भी रोमांचित न होकर जीवन की यथार्थता और मनिया की महानता के गुण-गान कराना और वे भी प्रतिद्वन्द्वी नारी से, एकदम विश्वसनीय बात है। कार में बैठी मनिया पर तेजाब भरे बल्ब का गिरना उपन्यास की एक लोमहर्षक घटना है। इससे न केवल मनिया का चेहरा झुलस जाता है, अपितु रजन का मन भी काला पड़ जाता है। वह अपने यथार्थ पूँजीवादी स्वरूप में प्रकट हो जाता है। मनिया के चेहरे की आकृति के बदलते ही रजन को उसकी मुस्कान मधुर नहीं भयावनी लगने लगती है। उधर वीरेन्द्र पुलिस की गोली खाकर वीरगति प्राप्त करता है। अब शोभना और रजन गुल खेलते हैं। पूँजीवादी संस्कारों में पले और बढ़े ये दोनों पात्र (रजन और शोभना) नित नवीन उपकरण जुटाते हैं। कलकत्ता से दूर हुगली के तट पर खड़ी जीर्ण-शीर्ण कोठी को नया ही रूप दे दिया जाता है। शोषक वर्ग से सहानुभूति रखने वाले सभी पिशाच वहाँ पशु लीला रचते हैं। पंजाबरत्न सिंघानियों और श्री गणपत भौंरों का जमाव होता है। शराब जल की भाँति पी जाती है।

उधर प्रोलेतेरियत आन्दोलन भी तीव्र गति से चलता है। कलकत्ता में नित प्रतिदिन नये समाचार आते हैं। कहीं हड़ताल, कहीं आग, कहीं गोली और कहीं कर्फ्यू। कन्हाई लाल बड़ी बुद्धिमत्ता से अपने गुप्त दल का संघटन करके उसे जन-सेवा के लिए तैयार करता है। मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित यह दल कम्यूनिस्ट नहीं है। सामूहिक चेतना में ही इसका विश्वास है। वीरेन्द्र की वीर गति के पश्चात् इसको मनिया का पूर्ण सहयोग मिलता है। बच्चे की मृत्यु हो जाने पर मनिया का व्यक्तिगत जीवन के प्रतिकोई मोह शेष नहीं रह जाता। वह सर्वस्व जन-हित पर न्योछावर कर देती है। प्रोलेतेरियत विचारधारा का प्रचार करती है।

मंजुला आदि नर्सों और डाक्टरों का दल उपन्यास की कथा में एक विशिष्ट स्थान रखता है। जो कार्य निशीथ के तर्क, भय और धमकी द्वारा सिद्ध न हुआ वह मंजुला की कौशल पूर्ण नीति द्वारा पूरा हो जाता है। वह प्रेम का प्रपंच रच कर रजन को शोभना की ओर से तोड़ कर पटने ले जाती है। वहीं पर उसकी पंद्रह लाख की सम्पत्ति 'जन-संस्कृति समन्वय केन्द्र' के नाम हस्तगत कर लेती है।

लेखक ने समस्त कथा को विशालाकार दिया है जिसमें लम्बे-लम्बे भाषण रूपी पर्वत और हिप्नोटिक कला रूपी नदियाँ तथा मनोविश्लेषण रूपी रेगिस्तान पार करने पड़ते हैं, जिनके कारण पाठक का मन ऊबने लगता है। स्थल-स्थल पर वह घबरा उठता है। कहीं-कहीं कथा में छोटी-छोटी झट भूल जाने वाली घटनाएँ जोड़ दी गई हैं किन्तु कहीं-कहीं पर प्रेम से परिपूर्ण रोमानी वातावरण को उत्पन्न कर देने वाले दृश्य भी जोड़ दिये गये हैं।

रंजन

उपन्यास का नायक है। वह बुलन्दशहर का रहने वाला एक उच्च वर्ग में उत्पन्न हुआ मनमौजी जमींदार है है। गर्मियाँ व्यतीत करने के लिए पर्वतों की रानी मसूरी की शरण लेता है। शृंगार प्रवृत्ति रोमांस इसकी रग-रग में विराजमान है। एक कोमलांगी सम्पर्क ही उसे अभीष्ट नहीं है, इसे तो उसका तन और मन दोनों चाहिएँ और वे भी सदैव के लिए चाहिएँ।

प्रारम्भिक रूप एक सहृदय जमींदार का दिखाया गया है। जिप्सी मनिया के रूप के अतिरिक्त उसकी दीन-हीन दशा देखकर भी उसके प्रति आकर्षित हुआ। और जब हुआ तो इतना हुआ कि अपने और मनिया के बीच किसी तीसरे व्यक्ति को अथवा उसके किसी प्रकार के व्यंग्य को सहन नहीं कर सकता। क्रोध और उत्तेजना, प्रेम और घृणा सभी इसके चरित्र की सहज प्रवृत्तियाँ हैं। सामाजिक मर्यादाओं का ध्यान वह रखता है तभी तो मैनेजर द्वारा सामाजिक विरोध की सूचना पाते ही होटल छोड़ देता है।

भावुकता का प्रवेश भी उसके मन में हुआ है तभी मसूरी की सड़क पर चलता हुआ बिना मोल-तोल किये चाकू-छुरी खरीद लेता है। मिसेज रालिन्सन की काटेज को पच्चीस हजार में खरीद लेना चाहता है। कलकत्ते में पहुँचते ही होटल मैनेजर को एक सप्ताह का एडवांस भी रुपया अतिरिक्त भी पकड़ा देता है। शोभना के सम्पर्क में आते ही उससे मन की बातें भावुकता के प्रवाह में बहकर करने लगता है।

यह पूँजीवादी वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। इसका चरित्र वर्गगत type न होकर वैयक्तिक रूप से चित्रित किया गया है। वर्गगत कुछ विशेषताएँ उसे परम्परा से मिली हैं किन्तु अधिक गुण उसके अपने हैं। कोई भी पूँजीवादी जो रंजन की कोटि का होता झटपट स्कीम बनाकर मनिया सदृश्य एक नहीं अनेक जिप्सी बालाओं के नारीत्व को रौंद डालता किन्तु जिप्सी का नायक बहुभोक्ता नहीं है। उसका प्रेम केवल दो स्त्रियों मनिया और शोभना से होता है। कह सकते हैं कि मंजुला से भी हुआ, जो मनिया का ही रूपांतरित व्यक्तित्व है। वह शराब और औरतों में व्यय किये गये धन की कोई सार्थकता स्वीकार नहीं करता।

मनिया के प्रति भी रंजन पूरा ईमानदार रहता है। वह उसके तन को नहीं मन को भी जीतना चहता है। इसके लिए सम्मोहन कला का आश्रय लेता है। उसकी करुण गाथा सुनकर उसके प्रति झुक जाता है उसका उद्धार चाहता है। अपनी इस भावना का रहस्योद्घाटन वह स्वयं करता है। 'मैंने केवल इस उद्देश्य से मनिया को अपने वश में करने का प्रयास नहीं किया कि वह मेरी आत्मतुष्टि के लिए

मुझसे प्रेम करे, इसलिए कि मैं उसके भटके हुए, जीवन-संघर्ष में पिसे हुए पारिवारिक दुर्घटनाओं की ग्लानि से पीड़ित मन को ठीक रास्ते पर लाना चाहता था।"[1] उसे अपनाने के लिए वह अपना धर्म परिवर्तन तक कर डालता है जो इसके लिए उसे मन में कई बार पश्चाताप होता है। अपने मानसिक द्वन्द्व को, पश्चातापपूर्ण भावों को वार वह फादर जेरेमिया से कर लेता है। उसने मन से कभी भी नये धर्म को मान्यता नहीं दी, परिस्थिति से विवश होकर उसे एक बार अपना भर लिया। मनिया को सन्तुष्ट करने के लिए, अपना बना लेने के लिए। धर्म बदलने पर भी हिन्दू नाम नहीं बदला। उसके धर्म-परिवर्तन में अकेले मनिया का ही नहीं कट्टर धार्मिक नारी मिसेज़ जिन्दिया का भी हाथ रहा। वह उसे तर्क द्वारा पराजित करके उसे धर्म परिवर्तन पर विवश कर देती है। उसके अहं पर आघात कर उसे दूषित कर देती है। उसे चेतावनी तक दे-देती है कि मनिया का परिवर्तित धार्मिक मन रंजन को तभी स्वीकार करेगा जब वह अपनी जिद छोड़ परिवर्तित धार्मिक पुरुष के रूप में मनिया के सामने आयेगा।

रंजन का त्यागपूर्ण जीवन मनिया के अवचेतन तक प्रवेश नहीं कर पाया, अन्यथा वह उसे जीवन में कभी न छोड़ती, उसका नैतिक पतन न होने देती। उसका सचेत मन स्वीकार करता है कि रंजन महान् है, सेवा और त्याग उसमें कूट-कूट कर भरे हैं। इस त्याग और महानता को वह मरते दम तक न भूले, ऐसा चाहती है, पर कर नहीं पाती। इसी कारण कलकत्ता पहुँचने पर उसका नैतिक पतन हो जाता है, किन्तु वह भी एकदम नहीं होता। रंजन अपने मन और मस्तिष्क में एक संतुलन रखना चाहता है। वह अपने भावों को संयत रखना चाहता है। शोभना की ओर एकदम नहीं झुक जाता। मनिया की नितान्त उपेक्षा पाकर ही उसके पग डगमगाते हैं और जब उसी मनिया ने जिसे उसने हृदय से चाहा था उसे ठुकरा कर मुक्त मार्ग का अवलम्ब लिया तब तो उसके अवचेतन मन पर भी एक ठेस लगती है। और वह कराह उठा: "मुझे लग रहा था जैसे मेरे शरीर का अंग ही कटकर अलग हो गया हो। यह ठीक है कि वह अंग जलकर निकम्मा हो गया था और मेरी विवशता को याद दिलाने और बदसूरती बढ़ाने के अतिरिक्त मेरे और किसी काम का नहीं रह गया था; पर सब कुछ होने पर भी वह था मेरा अंग ही"[2] वह था मेरा अंग ही में नायक की संवेदनशील आत्मा बोल रही है। उसका सच्चा प्रेम बोल रहा है, ईमानदार प्रवृत्ति बोल रही है। ऐसे उदात्त नायक को अवनति की ओर धकेलने का सारा श्रेय औपन्यासिक परिस्थितियों को है न कि स्वयं उसके मन को। मनिया के अलग हो

---

१. जिप्सी पृष्ठ १२३
२. जिप्सी पृष्ठ १४३

मुझसे प्रेम करे, इसलिए कि मैं उसके मरते हुए, जीवन-संघर्ष में घिसे हुए पारिवारिक दुर्घटनाओं की ग्लानि से पीड़ित मन को ठीक रास्ते पर लाना चाहता था।"[1] उसे बदलाने के लिए वह अपना धर्म परिवर्तन तक कर डालता है जो इसके लिए उसे मन में कई बार पश्चात्ताप होता है। अपने मानसिक द्वन्द्व को, पश्चात्तापपूर्ण भावों की बात वह फादर जेरेमिया से कर लेता है। उसने मन में कभी भी नये धर्म को मान्यता नहीं दी, परिस्थिति से विवश होकर उसे एक बार अपना भर लिया। मनिया को सन्तुष्ट करने के लिए, अपना बना लेने के लिए। धर्म बदलने पर भी हिन्दू नाम नहीं बदला। उसके धर्म-परिवर्तन में अकेले मनिया का ही नहीं कट्टर धार्मिक नारी लिलियन का भी हाथ रहा। वह उसे तर्क द्वारा पराजित करके उसे धर्म परिवर्तन पर विवश कर देती है। उसके अहं पर आघात कर उसे दूषित कर देती है। उसे चेतावनी तक दे देती है कि मनिया का परिवर्तित धार्मिक मन रंजन को तभी स्वीकार करेगा जब वह अपनी जिद छोड़ परिवर्तित धार्मिक पुरुष के रूप में मनिया के सामने आयेगा।

रंजन का त्यागपूर्ण जीवन मनिया के अवचेतन तक प्रवेश नहीं कर पाया, अन्यथा वह उसे जीवन में कभी न छोड़ती, उसका नैतिक पतन न होने देती। उसका सचेत मन स्वीकार करता है कि रंजन महान् है, सेवा और त्याग उसमें कूट-कूट कर भरे हैं। इस त्याग और महानता को वह मरते दम तक न भूले, ऐसा चाहती है, पर कर नहीं पाती। इसी कारण कलकत्ता पहुँचने पर उसका नैतिक पतन हो जाता है, किन्तु वह भी एकदम नहीं होता। रंजन अपने मन और मस्तिष्क में एक संतुलन रखना चाहता है। वह अपने भावों को संयत रखना चाहता है। शोभना की ओर एकदम नहीं झुक जाता। मनिया की नितांत उपेक्षा पाकर ही उसके पग डगमगाते हैं और जब उसी मनिया ने जिसे उसने हृदय से चाहा था उसे ठुकरा कर मुक्त मार्ग का अवलम्ब लिया तब तो उसके अवचेतन मन पर भी एक ठेस लगती है। और वह कराह उठा: "मुझे लग रहा था जैसे मेरे शरीर का अंग ही कटकर अलग हो गया हो। यह ठीक है कि वह अंग जलकर निकम्मा हो गया था और मेरी विवशता की याद दिलाने और बदसूरती बढ़ाने के अतिरिक्त मेरे और किसी काम का नहीं रह गया था; पर सब कुछ होने पर भी वह था मेरा अंग ही"[2] वह था मेरा अंग ही में नायक की संवेदनशील आत्मा बोल रही है। उसका सच्चा प्रेम बोल रहा है, ईमानदार प्रवृत्ति बोल रही है। ऐसे उदात्त नायक को अवनति की ओर धकेलने का सारा श्रेय औपन्यासिक परिस्थितियों को है न कि स्वयं उसके मन को। मनिया के अलग हो

---

१. जिप्सी पृष्ठ १२३
२. जिप्सी पृष्ठ १४३

जाने की पीड़ा के फलस्वरूप ही उसे बुखार हो जाता है, जो उसकी मानसिक पवित्रता का प्रतीक है। शोभना की मीमांसा सुनने पर मनिया की प्रशंसा सुन उसकी छाती गर्व से फूल उठती है।

रंजन के नैतिक पतन के लिए तीन महत्वपूर्ण बातें हमारे सामने आती हैं। मनिया की कुरूपता के साथ-साथ स्वभावगत परिवर्तन, वीरेन्द्र की मृत्यु और शोभना की अकपट सेवा और बिखरी हुई स्वस्थ सहृदयता जो उसे मनिया के चले जाने पर बीमार अवस्था से स्वस्थ कर देती है। पर शारीरिक स्वस्थता पाकर मानसिक रूप से अस्वस्थ हो जाना ही उसके पतन की प्रथम सीढ़ी है। हुगली की कोठी में सुरा और सुन्दरी का भोग करते-करते जब उसका मन थक जाता है तो फिर एक बार जन सेवा के लिए लालायित हो जाता है। कहीं-कहीं उसमें नैतिक बल का अभाव दृष्टि-गोचर होता है। वह डटकर शोभना का विरोध नहीं कर पाता। मनिया को जाने से नहीं रोक पाता। पर अन्तिम छोर पर पहुँचकर अपना चारित्रिक उत्थान कर ही लेता है। चाहे रूप से वशीभूत होकर समझिये चाहे कुछ और पन्द्रह लाख का दान उसके मन में चल रहे पहिले के बूर्जवा प्रोलेतेरियन संघर्ष में प्रोलेतेरियन विचार-धारा का प्रतीक है। आश्रम में जाकर कुदाली पकड़कर काम करना उसके महान् व्यक्तित्व का प्रतीक है। व्यक्ति उसमें इस कदर डूब जाता है कि अपने अहं के ऊपर उठ ही नहीं पाता और करुणा की सहज और उदार मानवीय भावना को आत्म-करुणा में सीमित कर देता है या फिर अपनी उस भावुकता को कृत्रिम नैतिक उपायों से फुलाकर वास्तविकता से कोई सम्बंध नहीं रखता।

मनिया :

मनिया जिप्सी-बाला के रूप में हमारे सामने आती है। इसका व्यक्तित्व कितना निखरा हुआ है वह इसके चरित्र के सभी उतार-चढ़ावों का विश्लेषण करने पर ही पता चलता है। कहाँ छटी पास एक अर्ध शिक्षित मुग्धा बाला मनिया और कहाँ अमेरिका से लौटे तर्क-वितर्क करने में पारंगत मंजुला देवी ? दोनों के चरित्र में आकाश-पाताल का अन्तर है। यह पहला उपन्यास है जिसमें जोशी जी ने फिल्मी दुनिया की तरह ही उपन्यास में नायिका से डबल रोल कराया है।

मनिया का रूप मनोमुग्धकारी है। उसमें से एक ऐसी स्निग्ध, सरस और सरल सहृदयता का भाव टपकता दीख पड़ता है जो किसी भी पथ-भ्रान्त पथिक को प्रथम साक्षात्कार में ही अपनी छटा का आलोक बिखेरे हैं, जो अपरिचित रहस्य-लोक का आभास छिपाये हैं। सरलपन ही है उसका मन, निराशापन ही आजीवन। किसी कवि की यह पंक्ति उस पर लागू होती है। पच्चीस हजार रुपया कितना होता है उसे पता नहीं है। किन्तु विचित्र प्रकार का तर्क-वितर्क वह कर सकती है। रंजन से कहती

है कि यदि तुम इतने धनी हो तो अपना धन व्यय क्यों नही कर डालते। जब वह पूछता है कि कैसे व्यय करूँ ? तब वह उत्तर देती है जैसे भी सभव हो। वह सुरा और सुन्दरी मे खर्च किये धन को तो सार्थक मानती है, किन्तु बैंक में जमा पूँजीवादी धन का कोई महत्व स्वीकार नही करती।

मनिया का प्रेम विवशता जनित है। हिप्नोटाइज्ड अवस्था का प्रेम है जो प्राकृतिक नही है। अतः किसी समय भी उसके विच्छेद की आशंका उसे बनी ही रहती है। वह एक बार रंजन से कहती भी है कि वह उससे भयभीत रहती है। उसे ऐसा भय लगता है कि वह-वह नही है। किसी दूसरे व्यक्ति की आत्मा उसमें आसन जमा कर बैठी है। रंजन के सम्पर्क मे आने पर उससे घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाने पर भी वह उसे कभी भी अपने अवचेतन मन मे न बिठा सकी। तभी तो वह उससे डरती है। डर निकल जाने पर, पत्नी बन जाने पर भी उसकी आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर पाती। इसके दो कारण हो सकते हैं एक उसके जन्मजात संस्कार दूसरे सामाजिक एवं धार्मिक संस्कार। जन्म से वह एक असहाय नारी है। असहाय, पीडित और शोषित समाज मे उसे प्यार है और धनी-मानी शोषक समाज से घृणा। वह रंजन को एक पूँजीवादी जमींदार के रूप मे ही देखती रही, एक आदर्श पति और प्रेमी के रूप में नही। केवल एक स्थल पर उसने उसे महान् और त्यागी कहा। इस स्वीकारोक्ति मे हमें संन्यासी की शांति बोलती हुई प्रतीत होती है। मनिया कहती है—"तुमने मेरे लिए कितना बडा त्याग किया है, यह बात मैं मरते दम तक नहीं भूलूँगी—शायद मरने के बाद भी नही। मैं तुम्हे बात-बात मे अपनी मूर्खतापूर्ण हठ से परेशान करती हूँ, पर तुमने बिना तनिक भी विरोध के मेरा प्रत्येक हठ पूरा किया। मेरी बेवकूफियों को तुमने अपने स्नेह और करुणा से बार-बार दुहराया है। न कभी तुमने मुझे मेरे किसी दुराग्रह के लिए डाँटा, न छोटी-से-छोटी माँग की। वकता की तुम महान् आत्मा हो। मैं तुम्हारे योग्य कभी नही। मुझे क्षमा करना"[1] इस स्वीकारोक्ति में कितना बडा सम्मान रंजन को दिया गया है, किन्तु फिर भी उसे अन्तर्मन से न पूजना, उसके अनुसार अपने को न ढालना ही जीवनगत विषमता और दाम्पत्य की असफलता का कारण है। सन्यासी की नायिका शान्ति भी नन्दकिशोर से कहती है, "जन्म-जन्म तक मैं तुम्हारा ऋण नही भूलूँगी।"[2] किन्तु अन्त में दोनो ही नायको को दुःख देती है। मैं मानता हूँ कि सन्यासी मे ज्यादती नायक नन्दकिशोर की ओर से हुई, किन्तु जिप्सी में सारी परिस्थिति के लिए स्वयं मनिया जिम्मेदार है। वह धीरे-धीरे रंजन की अवमानना करने लगती है। उसके समस्त उपकारो को विस्मृत कर शोषक को

---

१ जिप्सी पृष्ठ २४६

२. सन्यासी पृष्ठ

आगे रखकर उससे तर्क-वितर्क कर उसे पथ-भ्रष्ट कहकर त्याग देती है। भूल जाती है कि पत्नी होने के नाते उसका क्या दायित्व है। वह चाहती तो पथ-भ्रष्ट पति को सन्मार्ग पर ले आती। अतः हम उसे एक सच्ची प्रेमिका और सद्गृहिणी के रूप में नहीं देखते, एक क्रांतिकारी नव युगीन चेतना से प्रभावित नारी के रूप में देखते हैं। यह स्वयं अपनी नितान्त उपेक्षा के कारण अपने पति रंजन को पतन के मार्ग की ओर धकेलने का मार्ग खोल देती है। पुत्र की मृत्यु के पश्चात् रंजन द्वारा दी गई सान्त्वना और सहानुभूति को ग्लानि की दृष्टि से देखती है। उसकी समवेदना को ठुकरा देती है, उसके प्यार का कोई मूल्यांकन नहीं करती। उसकी आज्ञा के बिना कई-कई दिन तक घर के बाहर रहती है। यह बात कोई भी पति सहन नहीं कर सकता। उसके पूछने पर एक युगांतकारी उत्तर देकर पूंजीवादी पुरुष का चारित्रिक विश्लेषण कर उसे रंजन के सिर मंढ़ देती है, जो पठनीय है— "वही करुणा और वही समवेदना जिसकी प्रेरणा से एक दिन तुमने मेरे भोले से जीवन की द्वन्द्व रहित बस्ती को उजाड़कर, मेरा सर्वस्व लूटकर, अपने जाल में चारों ओर से मुझे इस तरह जकड़ लिया था कि भाग निकलने के लिए कोई रास्ता ही नहीं छोड़ा······ तुमने मुझे जो पढ़ाया-लिखाया वह इसलिए नहीं कि मैं विचारों के जगत् में स्वतंत्र रूप से विचर सकूँ। बल्कि इसलिए कि मैं तुम्हारे इशारों पर, एक अच्छी खासी बौद्धिक और फैशनेबिल कठपुतली की तरह नाच सकूँ। ···आज अपने चारों ओर के जीवन का सीधा और सच्चा रूप मेरी खुली हुई आँखों के आगे सुस्पष्ट हो उठा है। बाहर से थोपा हुआ कोई भी भ्रम-जाल अब मुझे धोखे में नहीं रख सकता।"[1]

मनिया के चरित्र पर कट्टर धार्मिक नारी सिलविया के विचारों की गहरी छाप पड़ी, तभी तो वह किसी-न-किसी धर्म का आश्रय लेने की चाह रखती है। आरम्भ में अपने पिता के धर्म बौद्ध धर्म में विश्वास रखती है, किन्तु सिलविया के सम्पर्क में आने पर ईसाई धर्म अपनाना चाहती है। बिना धर्म के सहारे के वह जीवन को पंगु समझती है। परलोक सुधारना चाहती है। अतः रंजन से स्पष्ट शब्दों में कह देती है कि दोनों में शारीरिक संबंध तभी स्थापित हो सकता है जब दोनों ईसाई धर्म को स्वीकार करलें। उसे हम धर्म भीरू कह सकते हैं। वह किसी भी विषय पर मस्तिष्क से विचार नहीं करती। प्रकृति प्रदत्त अनुभूति ही उसके लिए सर्वस्व है। अतः वह जितनी सीधी है उतनी ही जिद्दी भी, जितनी भोली है उतनी ही क्रोधी भी। अतः नायक को नियत हट के आगे झुकाकर ही छोड़ती है। आरम्भिक जीवन में धर्म को प्रमुख स्थान देती है। विवाह हो जाने पर मद मत्त नहीं हो जाती। कुशल नारी की तरह गृहस्थ का प्रबंध सभालती है। प्रात. उठते ही प्रभु ईसा के ध्यान के लिए अवश्य

---

१. जिप्सी पृ० ३३५-३६.

गमय निराश्रयी है। किन्तु उसकी धार्मिकता विचारों की सुदृढ़ शिला पर नहीं टिकी है, वह तो भावुकता के बालू में चमक रही है, जो पुष्ट होने ही एक क्षण में उड़ जाती है। वह पुनः नास्तिक बन जाती है।

नास्तिक होने के साथ-साथ प्रगतिवादी भी बन जाती है। कन्हाई लाल के सम्पर्क में आने पर उसके चरित्र में आमूल परिवर्तन हो जाता है। वह अमेरिका चली जाती है। वहाँ से नया वेश, नया नाम और नये भाव लेकर लौटती है। वह मनिया से मंजुला बन जाती है। नर्स बनकर अकाल पीड़ित जनता की सेवा करती है और रंजन के साथ प्रेम-लीला रचाती है। उसके साथ तर्क-वितर्क कर उसे पराजित करती है। जब रंजन उसे बधाई देता है तब कहती है कि आपने मुझे ही बधाई क्यों? जब वह कहता है आप मुझे जाने क्यों, बहुत अच्छी लगती हैं, तब वह कहती है नृपेन्द्र बाबू इस तरह की बात आप मुझे छोड़कर और किसी स्त्रियों से कह चुके हैं। शब्द सुनते ही नायक आश्चर्यचकित हो जाता है। मंजुला की बौद्धिक सूक्ष्मता का कायल नहीं होता, अपमान अनुभव करता है। पर कुशल मनिया मंजुला के रूप में उसे लुभाये रखती है, फिर भ्रम जाल में जकड़ कर प्रेम-डोर से बाँधकर अपना उल्लू सीधा करती है अर्थात् उससे जन-संस्कृति समन्वय-केन्द्र के लिए पन्द्रह लाख रुपया ऐंठ लेती है। मंजुला के रूप में हम एक निर्मम व्यवहार बुद्धिवादी प्रगतिशील नारी को देखते हैं। जो सफल अभिनेत्री भी है और कुशल वक्ता भी। वह स्वतन्त्र पथ की गामिनी है।

सिल्विया

यह लजीली नारी है। कट्टर धार्मिक भी है। उसके विचारानुसार व्यक्ति को पहले भगवान् से प्रेम करना चाहिए, फिर आदमी से। वह प्रेम के तर्कों से किसी भी प्राणी को प्रभावित करके अपने विचारानुकूल सर्वश्रेष्ठ धर्म ईसाई धर्म में प्रवेश दिलवा देती है। मनिया को वह अंग्रेजी पढ़ाने आई पर अधिकांश समय ईसा की बातें कर उसके अवचेतन मन में ईसा की मूर्ति प्रतिष्ठित कर दी। रंजन को वह एकान्त में मिली तो उससे वार्तालाप कर उसे ईसाई धर्म अपना लेने की प्रेरणा दी। उसके तर्क अकाट्य हैं। वह उसे (रंजन को) कहती है कि मनिया का मन अज्ञान जनित है किन्तु आप तो जान बूझकर हठ पर तुले हैं। बुद्ध धर्म अपना सकते है तो ईसाई धर्म क्यों नहीं, इसके प्रति विद्वेष की भावना क्यों? आप सदृश्य सुसंस्कृत व्यक्ति को तो ऐसी जिद शोभा नहीं देती। बस रंजन भी मन-ही-मन सिल्विया की बौद्धिकता के प्रति कृत कृत्य हो उठता है।

सिल्विया अन्तरजातीय विवाह प्रणाली के पक्ष में है। किन्तु विशेष परिस्थिति में इस नियम को ढील भी देने के पक्ष में है। सिल्विया एक उत्साही धार्मिक महिला है। यदि उसके वश की बात होती तो संसार भर में ईसाई धर्म का प्रचार और प्रसार

परिवर्तन की आशा लगाये बैठी है। समग्र मानवता को वह व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठाकर सामूहिक प्रगति की ओर उन्मुख करा कर ही चैन लिया। यही दृढ़ संकल्प कर जीवन के अनेक घुमाव-फिराव में होकर जीवन की नव अनुभूतियों को ग्रहण करता है। उसकी ये अनुभूतियां और आदर्शमयी कल्पनाएँ ही समग्र कथानक के दो दृढ़ स्तम्भ हैं।

लेखक ने सबसे पहले कथा के नायक द्वारा अर्जित अस्पताल के अनुभवों पर प्रकाश डाला है। सार्वजनिक अस्पताल भी सरकार की अन्य संस्थाओं की भांति भ्रष्टाचार और अनाचार का केन्द्र है जहाँ पर मरीजों की मन से सेवा नहीं की जाती अपितु कठोर चित्त डाक्टर और नर्स इधर-से-उधर दौड़ते दृष्टिगोचर होते हैं, जो सेवा का उपक्रम रचते हैं। रोगियों को अखाद्य-खाद्य दिया जाता है। दूध में आधे से अधिक पानी होता है। अस्पताल का सारा वातावरण ही नीरस होता है, जो उत्साही-से-उत्साही और स्वस्थ-से-स्वस्थ प्राणी को भी उदासी की सीलन की गन्ध से निरुत्साही और अस्वस्थ बना सकता है फिर अस्वस्थ प्राणियों का ईश्वर ही स्वामी है, रक्षक है। ऐसे वातावरण में भी कथा-नायक एक मीठी मादकता भरी आशावादिता और मोहक गुलाबी नशे की अनुभूति करता है। ऐसा क्यों?

यह इसलिए संभव हुआ कि नायक को वहां सामूहिक समवेदना और सहानुभूति का मर्मस्पर्शी अभिताव मिला। प्यारे नाम के धोबी में उसे सहज समवेदना और अतल करुणा एक चमकीले हीरे की भांति जगमगाती हुई दिखाई दी। यही प्यारे एक दिन उसका आश्रय दाता बनता है। प्यारे के भाई की दास्तां विशाल कथानक में जगमगाते जुगनू के समान है। उसके द्वारा 'नटखट छोकरी' का वर्णन कथा में प्रेम-रस घोलने लगता है जिससे सबकी आंखों में रस छलक उठता है, किन्तु लेखक प्रेम-स्रोत को अधिक नहीं बहाता उसे छुटपुट छिटके ही कथा में छिड़कता चलता है।

अस्पताल से निकाल कर कथाकार ने नायक को जीवन की अन्य अनुभूतियां अर्जित करने के लिए कथानक के ऊबड़-खाबड़ स्थलों पर घुमाया है। एक ओर वह है जो निश्चित आश्रय पाने के लिए रोगी होने का स्वांग रचता है, सदैव के लिए जेल की बंद कोठरी को भी वरदान मानता है तो दूसरी ओर कथाकार है जो उसे अनिश्चित दिशाओं में भ्रमाता है। कथानक में घुमाये प्रत्येक मोड़ पर मनोवैज्ञानिक कारण दिये गये हैं। वह पुस्तक की दुकान पर हो, या पार्क की बेंच पर, जहाज केबिन में हो या जेल की कोठरी में, प्रत्येक प्राणी उस पर सदेहात्मक कटाक्ष करता है। इसका प्रभाव उसके अवचेतन मन पर पड़ता है, जिसके फलस्वरूप वह एक विचित्र प्रकार की पीड़ा की अनुभूति करता है।

प्रतिदिन नौकरी की खोज और निराशा, प्रतिपल समाज की उपेक्षा और घोर तिरस्कार पाकर भी नायक दृढ़ता पूर्वक जीवन में आगे बढ़ता है। सेठ के घर

हुए अपमान वाली घटना लेखक के प्रसिद्ध उपन्यास मुक्तिपथ के नायक के बेकारी वाले दिनों की याद दिला देती है, किन्तु 'जहाज का पंछी' में नायक द्वारा तिरस्कार का प्रतिकार अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि राजीव के पीछे एक आश्रयदाता तो है किन्तु यहाँ पर नायक निराश्रय और निस्सहाय है। सेठ के घर से सत्येन्द्र मोहन भादुड़ी एम० एल० ए० की कोठी पर और वहाँ से जहाज पर उसकी भेंट क्रमशः भादुड़ी साहब और नेरा से होती है किन्तु दोनों स्थानों पर दो विपरीत अनुभव उसे प्राप्त होते हैं। पहिली जगह प्रयत्न करने पर भी वह भादुड़ी महोदय में आत्म करुणा जाग्रत नहीं कर पाता किन्तु दूसरी जगह नेरा साहब उसे साई समझ अकल्पनीय श्रद्धा और स्नेह का धन लुटाते हैं। अगले सप्ताह नौकरी तक दिला देने की बात कहते हैं, हालांकि उन्हें उसकी यथार्थ स्थिति (कि वह साई नहीं) बेकार है का ज्ञान हो जाता है।

उपन्यासकार ने यत्र-तत्र पुलिस के हथकण्डों का वर्णन भी किया है, किन्तु इस विषय में वह इतना लोमहर्षक चित्रण प्रस्तुत नहीं कर पाया जितना यज्ञदत्त शर्मा ने किया है। यज्ञदत्त शर्मा द्वारा वर्णित पुलिस के हथकण्डों और अत्याचारों का ब्यौरा पढ़-पढ़कर पाठकों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं किन्तु जोशीजी द्वारा वर्णित पुलीस की धमकियाँ, मार और भोर वाले अधिकतर बेकार प्रमाणित होती हैं। या यों कहिए कि उनका भय प्रभाव क्षणिक रहता है। लेखक ने कथा में चार-पाँच स्थलों पर नायक की पुलिस के साथ मुठ-भेड़ कराई है और सब स्थलों पर पुलिस उसके आगे हतप्रभ हुई। जबकि वास्तविक जीवन में इसके ठीक विपरीत घटित होता है। एक बार सम्पन्न व्यक्तित्व-शाली व्यक्ति भी एक बार पुलिस के चंगुल में फँसकर अपने को मुक्त कराने में अनेक दुविधाओं को पार करता है किन्तु 'जहाज का पंछी' का नायक केवल दो चतुर व्यंग्यात्मक फब्तियाँ कसकर ही पुलिस पर विजय प्राप्त कर लेता है। पहली बार तो नायक को गिराकर पुलिस का कान्सटेबल चल पड़ता है, किन्तु दूसरी बार वही [illegible] में उसके व्यंग्य बाण सहता है। तीसरी बार पुलिस को पक्का सबूत उसके विरुद्ध न जुटा सकने के कारण मुँह की खानी पड़ती है। यह माना कि बिना पक्का सबूत जुटाये किसी को भी हानि पहुँचाना पुलिस के लिए अति दुर्लभ है किन्तु उसके हथ-कण्डे बड़े विकट और विशाल होते हैं जिनके चक्रव्यूह से बाहर आना किसी ही माई के बूते की बात है। प्रेमचन्द के प्रसिद्ध उपन्यास 'गबन' का नायक एक बार पुलिस के हथकण्डे चढ़ा तो चढ़ा, समस्त कथानक में पुलिस के जाल में उलझा रहा किन्तु इसके पर नायक हट मजिस्ट्रेट द्वारा मुक्त कर दिये जाने पर 'मी वकेंट' के बिना मतलब के घूमता है जहाँ पर पुलिस अपने अपमान का प्रतिकार भी कर उसको कहीं का नहीं रखती।

मिस गाडमन की हत्या के पश्चात् जब उस बेदस्तनद को डेक पर बन्द किया जाता है और पुलिस पूछताछ के लिए आती है—एक उस समय और एक बार फिर

साइमन के जीवित रहते जब मिस साइमन के बुलावे पर पुलिस अमला और सुजाता को निकालने के लिए उस अड्डे पर आती है—उस समय—दोनों बार ही वह नायक से मुँह की खाती है। मिस साइमन के बुलावे पर आई पुलिस और नायक की वार्ता पढ़ने योग्य है। इससे पुलिस की आधुनिकतम क्षीण शक्ति और रौब का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। "दरवाजे से हट जाओ!" पुलिस 'अफ़सर' ने कड़क कर कहा।

"यह नहीं हो सकता," मैंने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया। "आप लोगों को इस कमरे का दरवाज़ा खुलवाने का कोई हक नहीं है।"

"क्यों" विकट क्रोध भरी मुद्रा से पुलिस 'अफ़सर' बोला, "यह लड़की क्या लगती है, तुम्हारी ?" उसकी वाणी में क्रूर व्यंग्य छिपा था।

"मेरी बहन लगती है," बिना एक क्षण की भी हिचक के मैंने उत्तर दिया। "और फिर चाहे वह मेरी कुछ भी लगती हो या न लगती हो, आपको कोई अधिकार नहीं है उसे दरवाज़ा खोलने के लिये बाध्य करने का। किस लिये आये हैं आप लोग ? क्या उसकी गिरफ्तारी का कोई वारन्ट लाये हैं ? वारन्ट लाये हो तो दिखाइए।"

पुलिस 'अफ़सर' कुछ क्षण तक मूर्खों की तरह मेरी ओर देखता रहा, जैसे मेरी शक्ति और सामर्थ्य को अन्दाजना चाहता हो।

"वारण्ट लाये हों या न लाये हों, तुम्हें क्यों दिखायें ? तुम कौन होते हो ?" इस बार उसका स्वर कुछ धीमा पड़ गया था।[1] और इसके पश्चात् दी गई नायक की स्पीच सुनकर तो उनका रहा-सहा जोश भी ठंडा पड़ जाता है और वे पैंतरा बदलकर बातें करते हैं। नायक द्वारा झाँसे में न आने पर उल्टे पाँव वापिस लौट जाते है।

मिस साइमन की मृत्यु के पश्चात् भी पुलिस कुछ कम शोर मचाना नहीं चाहती किन्तु नायक के साहस को देखकर हत-प्रभ हो जाती है। और उसके भाषण से चिढ़कर उसे अपराधी न मानकर भी केवल तंग करने के उद्देश्य से घसीट ले जाती है। इस बार भी हमें पुलिस की नपुंसकता के ही दर्शन होते हैं। एक बार नायक पर 'कम्युनिस्ट' होने का प्रबल आरोप लगा कर शीघ्र ही उस ओर से कोई तर्क न कर सकना पुलिस अफसर की शान के अनुसार नहीं दीख पड़ता। घसीट भाषा में यह कहकर बस कर जाना कि एक कारण यह भी सकता है।' पर सिर्फ यही मूल कारण नहीं है और तुम्हे हर कारण को बताने के लिये मैं बाध्य भी नहीं हूं, चलो। और मार्ग मे ही उसकी ओर से अचेत होकर मार्ग में हो रही हाथापाई और मारपीट के दृश्य में लीन होकर उसे मुक्त ही जाने का अवसर दे देना, पुलिस को किसी भाँति भी शोभा नहीं देता।

---

१. जहाज का पंछी पृष्ठ ३२१

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस उपन्यास में पुलिस का प्रभाव बहुत ही क्षीण दिखाया गया है। या यों समझ लो कि यह स्वतन्त्र भारत की स्वतन्त्र और स्वस्थ सामाजिक चेतना हो।

कथाकार ने कथा में कुछ रोचक प्रसंग जोड़कर पाठक की रुचि को बराबर पकड़े रखने का यत्न किया है। कुछ नवीन घटनाओं का सृजन करके उसके कौतूहल की तृप्ति भी की है। निराश्रित नायक को अनेकों आश्रय प्रदान करके भी नई-नई दिशाओं में घुमाया है। करीम चाचा के अखाड़े में पहलवानों की कसरतों का स्वस्थ वातावरण उत्पन्न किया गया है। वैसे इस अखाड़े का अस्सी पृष्ठों में जो वर्णन किया गया है वह आवश्यकता से अधिक है और उपन्यास के आकार को विस्तार करने वाला है किन्तु नायक द्वारा विश्लेषण करने पर उसका एक महत्त्व तो सिद्ध हो ही जाता है। ऐसे अखाड़े एक पतले-दुबले निस्सहाय व्यक्तित्वहीन व्यक्ति को व्यक्तित्व प्रदान करने में सहायक सिद्ध होते हैं। इस अखाड़े में एक मात्र विनाशक नायक का कायाकल्प हो जाता है। वह एक स्वस्थ और पुष्ट व्यक्तित्व जुटाकर जीवन की नवीनतम परिस्थितियों का सामना करने के योग्य बनकर ही वहाँ से बाहर आता है। करीम के भतीजे पहलवान का आतंक न केवल हरिपद और अन्य चार व्यक्तियों तक सीमित है अपितु पाठकों तक के रोंगटे खड़े कर देने वाला है। वैसे सारी कथा अस्वाभाविक है। करीम का सच्चरित्र न केवल रामबली को प्रभावित करता है अपितु नायक को भी जीवन में ब्रह्मचर्य के सद्गुण से परिचित कराता है जिसके फलस्वरूप वह प्रतिक्षण हर नारी से सचेत रहता है, दूर रहना चाहता है।

नायक बन्धनहीन, निर्द्वन्द्व, निर्मुक्त प्राणी की भाँति निरुद्देश्य भ्रमण करना चाहता है किन्तु समय-समय पर विभिन्न स्थानों में जीवन की विविध परिस्थितियाँ उसे बाँध लेने को तत्पर हैं। प्रछन्न कम्युनिस्ट होने का आरोप या आधुनिक शास्त्र के क्षणिक (विशाल जीवन में कुछ मास क्षणिक ही हैं) आश्रय को त्याग कर वह 'मौ-करई' का स्वाद चखने के लिए विचरने लगता है तभी उसे प्यारे की दया का आश्रय मिलता है। और यहीं पर मुख्य कथा की टूटी हुई शृंखला को पुन: जोड़ने का उपक्रम करता है। उसके सम्पर्क में आकर वह लॉड्री में मुंशी का काम [illegible] कर लेता है। यहीं उसका बेला नाम की विधवा से परिचय होता है जो एक दिन उसकी प्रेम में परिणत हो जाने के कारण उसके जीवन की जटिलतम समस्या बन जाता है। वह अपनी ओर से टेढ़ी-टेढ़ी बातें कर बेला को हतोत्साह करना चाहता है किन्तु बेला [illegible] की अनुपस्थिति का लाभ उठा कर उसे [illegible] चाय पिलाती है और [illegible] [illegible] गाने सुनाती है, जो न चाहने पर भी उसके कानों में [illegible] उसके मन में गूँजने लगते हैं। प्यारे के परिवार में वह घुल-मिल जाता है, किन्तु बेला के [illegible] के साथ किसी भी तरह मेल नहीं बिठा पाता। उधर बेला की [illegible]

ही लोक में पहुँच जाना है जो प्रत्येक पाठक के लिए परम रोचक और परम उत्सुकता का केन्द्र सिद्ध होता है। यह वह लोक है जहाँ रूप का व्यापार होता है, यौवन थोड़े दामों बिकता है, मानवता रोती है और दानवता अट्टहास करती है। यहाँ की प्रत्येक घटना रोमांचकारी होती है और यहाँ विनाश प्रतिपल सनसनी पैदा कर देने वाला हुआ करता है।

वेश्याओं के जीवन की दारुण गाथा जिस रूप में जोशीजी ने 'जहाज का पंछी' में अंकित की है वह अपूर्व है। हमें एक बार फिर से प्रेमचन्द के 'सेवासदन' की याद दिला देती है। दोनों ही कृतियों में वेश्या जीवन की एक झाँकी प्रस्तुत की गई है। सेवासदन का समस्त कथानक ही मूल विषय वेश्यावृत्ति और उसके दुष्परिणाम को लेकर रचा गया है जिसके कारण सम्पूर्ण वातावरण एवं चरित्र गठन प्रबल हो उठे हैं। इसकी तुलना में 'जहाज का पंछी' का कथानक किसी एक सामाजिक समस्या को लेकर नहीं रचा गया। वेश्याओं का केन्द्र सार्जेन्ट का अड्डा समस्त कथानक रूपी सागर में एक बूंद के समान है। फिर सबसे विशेष बात यह है कि यहाँ कथानक विशृंखल है। इसका होने पर इस एक बूंद का वही महत्व है जो किसी दवाई के रूप में यदि रोगी को दी जावे तो उसके रोग को मूल से उखेड़ कर उसे पूर्ण स्वास्थ्य-दान देती है।

सार्जेन्ट के अड्डे पर लगभग पंद्रह लड़कियाँ पेशा करती हैं। किन्तु इस घृणित रूप को मन से वे कभी भी स्वीकार नहीं करती हैं। परिस्थितियों की विवशता ने उन्हें बांध रखा है। ईरानी लड़की जुलेखा, बंगाली युवती ममता और [illegible] सुजाता सभी विद्रोह कर देना चाहती हैं परन्तु पुलिस के भय और समाज की घृणा की कल्पना कर दबी पड़ी हैं। उनके बीच में केवल एक लड़की है जो [illegible] के प्रभाव से मन को कुण्ठित होने से बचाती है। उसका नाम सुशिला है। परन्तु वह भी [illegible] की मर्मस्पर्शी पीड़ा की अनुभूति अवश्य करती है, [illegible] और इस मार्मिक जीवन का हँस कर स्वागत करती है। कभी-कभी [illegible] और इन हृदय दुर्बलताओं में भी बल और [illegible] भरती है। [illegible] ही करती है। ममता और सुजाता को निकालने के लिए बुलाई गई पुलिस के [illegible] होकर लौट जाने पर तो वह मिस सार्जेन्ट की यह [illegible] करती है [illegible] भी भूल पाती। यहाँ पर लेखक ने कथा में हास्य [illegible] दक्षिण लड़कों का बनाई हिन्दी में गाया गया गीत — [illegible] दूर हेला। जो गुन गाई शहर कोलकाता [illegible] करके हँसा कर लोटपोट कर देता है। उनके नीरस जीवन में [illegible] जाता है। कुछ क्षणों के लिए वे अपनी स्थिति, शारीरिक [illegible] को भूल जाती हैं।

इसके लिए महान् त्याग करता है। अपना सर्वस्व पीड़ितों के लिए देकर नायक को पड़ती है। ईश्वर के लिए ही वह सो।

'जहाज का पंछी' का कथानक विशृंखल है। इसमें कथा तत्व गौण है। कुछ गौण कथाएँ हैं और अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ जो अधिकतर एक दूसरे से असम्बद्ध हैं। कलकत्ता के किसी प्लाट से लेकर पागलखाने में भेंट हुए सन्यासी जी तक सभी पात्र एवं भौतिक पदार्थ तक नायक के सम्पर्क में आते हैं और उसे नव अनुभूतियों से परिचित करा कर कथा को आगे धकेलते हुए लुप्त होते जाते हैं। इस उपन्यास का विशृंखल कथानक यथार्थवाद की धरा पर खड़ा है। इसकी कथा किसी के जीवन की यथार्थ अनुभूतियों को लेकर रची गई है। कथा में अधिकतर कुछ मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है। नायक द्वारा लम्बे-लम्बे भाषण दिलवाकर एक ओर जहाँ उसके आकार को बढ़ा दिया गया है वहाँ दूसरी ओर कथा की स्वाभाविक गति में भी अवरोध प्रस्तुत कर दिया गया है।

'जहाज का पंछी' चरित्र-प्रधान उपन्यास है। इसके कुछ पात्र अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण पाठक के मन को मोह लेते हैं। विशेषकर नायक को तो वह सदैव के लिए स्मरण रख सकता है। सारे उपन्यास में उसका व्यक्तित्व छाया हुआ है, जो मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मक प्रणाली के साथ प्रस्तुत किया गया है। बाह्य जीवन के साथ-साथ उसके अन्तर्जीवन की झाँकी हमें स्थान-स्थान पर देखने-पढ़ने को मिलती है। उसका अन्तर्द्वन्द्व और तत्सम्बन्धी घात-प्रतिघात अलौकिक है।

सत्रह वर्षीय सवेदनशील, जीर्णकाय, उदारचित्त और सत्यनिष्ठ फक्कड़ युवक उपन्यास का नायक है। अपने निष्प्रभाव और शंकित व्यक्तित्व के कारण कह लीजिए अथवा युग की सामूहिक परिस्थितियों के फलस्वरूप समझ लीजिए—वह जीवन की साधारणतम आवश्यकताओं की पूर्ति, रहन स्थान और वेश भूषा से वंचित है। जीवन की इन सुविधाओं को न जुटा पाने के कारण दिन-प्रतिदिन क्षीण-से-क्षीणतम और मन से भी अस्वस्थ होने लगता है।

कितनी प्रतिशत ईमानदारी इसमें है, यह भी देख लीजिए। जेब भरी होने पर तो सभी सचाई और ईमानदारी की बातें सोचते हैं, करते हैं, किन्तु जेब के साथ-साथ पेट के खाली होने पर मानसिक सतुलन को स्थायी रूप से बनाये रखना विरले जन का कार्य होता है, जिसकी कोटि में हमारा नायक आ जाता है। जब वह एक पार्क की बेंच पर बैठा होता है, सुभीता पाकर भी बटुआ नहीं उठाता। आत्मसम्मान भी उसमें कूट-कूट कर भरा है। तभी तो वह दूसरों में आत्म करुणा की भावना जगाने की कला से अनभिज्ञ है, किन्तु परिस्थितिवश जब उसे जागृत करने का दु साहस करता है तब दूसरा ही परिणाम निकलता है। उसके सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक प्राणी उससे मुँह फेरता है। कुछ उसके पेशेवर गुण्डा अथवा गिरहकट होने की शंका करते हैं

गुरिपाओं को लात मार कर निर्द्वन्द्व, निर्बन्ध जीवन का आश्रय लिया। निरुद्देश्य अन-जान पथ की ओर ताका, केवल मात्र अपने अहं की तृप्ति के लिए। मार्ग में चलते-चलते किसी से भी तर्क कर, उसे पछाड़, उसे सुख मिलता है।

नव पथ पर चलने पर, नई परिस्थितियों से जूझने पर, नये वातावरण की चकाचौंध में उसकी दिव्य आत्मा ने अलौकिक दृश्य देखे। कोई रसिक होकर भड़क उठे, यह वह देख नहीं सकता, सह नहीं सकता। होटल में मिले, साहब के अन्धेरे में ले जाने पर जब ठगा जाने लगता है तब ठगे जाने के स्थान पर साहब की भरपूर मरम्मत करता है। उसका पर्स भी छीन लेता है, किन्तु उसमें मिले पचहत्तर रुपयों को निजी उपयोग में न लाकर फ्लोरा नाम की आवारा किन्तु विवश एवं अस-माधिक शोषण की शिकार किसी भी नारी के प्रति उसके मन में कितनी समवेदना है, हाथ नारी को दे देता है। इससे प्रकट होता है कि शारीरिक, आर्थिक, नैतिक एवं सहानुभूति है।

अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व को देखकर नायक के मन में दो प्रकार के परस्पर विरोधी भाव जागृत होते हैं। एक ओर उसे अपने अत्यधिक विकसित स्वास्थ्य पर घोर लज्जा और ग्लानि होती है, तो दूसरी ओर व्यक्तित्व के सौन्दर्य-निखार पर अपार आनन्द अनुभव होता है, जिस पर युवतियों तक की दृष्टि टिक जाती है किन्तु नायक का चरित्र-गठन इस प्रकार का है कि उसके सेक्स-सम्बन्धी विचार केवल सौंदर्य तक सीमित रहते हैं। सौंदर्य के भोग-पक्ष की ओर नहीं झुकते। इसी कारण वह बेला को निराश करता है।

नायक को अपने नि सबल, निरुपाय एव आवारा होने की सर्वाधिक पीडा उस समय होती है जब वह त्रस्त हृदय नारी बेला को असहाय अवस्था में छोड़कर पुन. निरुद्देश्य भटकने लगता है।" मुझे ले चलो। कहीं भी ले चलो। यहां मेरी मौत नाच रही है।" बेला के ये शब्द नायक के मर्म को भेद कर सदैव के लिए उसके अव-चेतन मन मे प्रवेश कर जाते है। उसके स्वभाव मे अनमना सा परिवर्तन हो जाता है। वह अधिक मननशील बन जाता है। मनोविश्लेषण करने लगता है और अपने चरित्र का विश्लेषण कर कहता है। "तुम पुरुषार्थहीन हो! नपुंसक हो! कायर हो! बड़ी-बड़ी बातें सोचते हो, बड़ी-बड़ी बाते दूसरो को बताते फिरते हो, पर इतनी सी भी शक्ति न तो भीतर से बटोर पाये न बाहर से ही संगठित कर पाये कि समस्त पीड़ितों और दलितों की अवस्था मे सुधार तो क्या एक अदना सी असहाय नारी ... का उद्धार कर सकते! इतनी सी बात के लिए भी तुम निपट अक्षम सिद्ध हो ... हो। धिक्कार है तुम्हारी पराक्रमहीनता पर, लानत है तुम्हारे निकम्मेपन पर!"

... ही स्थिति में यदि कुछ विद्रोहात्मक बल्कि यह कहो विनाशात्मक विचार उसके ... मे क्रोध आये तो अचम्भा कुछ भी नहीं—वह सोचता है कि यदि समाज

उसे जीने का अधिकार नही देना चाहता, उसकी किसी भी सांस्कृतिक अथवा सामाजिक सेवा का किंचित भी मूल्य उसे स्वीकृत नही तब जीने के लिए असांस्कृतिक अथवा सामाजिक आश्रय प्राप्त करना भी बेजान होगा। किन्तु इन विचारों को उस की ईमानदार, सांस्कृतिक अति उन्नत स्तर पर पहुँची आत्मा स्वीकार नही करती। वह किसी के साथ भागना या किसी को भगाना नही चाहता। उस पर दीप्ति सदृश्य नारी के तेज की छाप है। जो नये युग की, नई मानवता की, नव मंगलमयी वहन है। जिसके सुदृढ़ आत्म विश्वास से प्रेरणा प्राप्त करके नायक जीवन के गन्दे-से-गन्दे और घिनौने से घिनौने वातावरण मे अडिग रूप से खड़े रहने का साहस जुटाये है।

अर्थ लिप्सा, भौतिक सुख अथवा ऐहिक इच्छाएँ उसमे ढूंढे नही मिलती। उसे तो एक ही चीज का चसका है और वह है की वर्ल्ड की सैर[1] वह इस जीवन मे इस लोक मे निर्द्वन्द्व निर्बन्ध और निर्भय होकर घूमना चाहता है। वैयक्तिक चेतना के विकास में उसका विश्वास है। विश्व का एक नया ही रूप देखने की चाह है जिसमे जीवन की सामूहिक व्यवस्था का रूप उसके मनानुरूप हो। मनुष्य-मनुष्य के बीच का व्यवधान हटकर परे हो जाये। वैयक्तिक चेतना के विकास की पूर्ण सुविधा व्यक्ति को प्राप्त हो और वह उसे सामूहिक चेतना के विकास हित वरते जिसके फलस्वरूप नव-चेतना का जन्म होवे जो प्राणी मात्र के लिये सुख, शान्ति सुविधा एवं स्वस्थ जीवन का संदेश लाये।

प्रेमी के रूप मे हम उसे कही भी नही देखते। इसलिए नहीं कि वह प्रेम करना नही जानता अपितु इसलिए कि उसके मन की कोमल रसमयी प्रवृत्तियाँ जीवन के दारुण अनुभवों के कारण कठोर बन गई हैं और जब लीना उनमे कोमलता का संचार करती है तभी वे लचककर उसकी ओर झुक सदैव के लिए उसकी हो जाती है। नायक अन्त तक अपने सिद्धांतों पर दृढ रहता है और लीना को भी अपने मनानुकूल करके अपनाता है।

लीला—

लीला 'जहाज का पंछी' की नायिका के रूप मे हमारे सामने आती है, जो अनेक कुण्ठाओं से ग्रस्त है। उसकी सबसे प्रधान कुण्ठा है उसकी कुरूपता जनित मानसिक पीड़ा। धनी मानी होने पर भी वह एकाकिनी है। पार्थिव सुविधाओं के होते हुए भी दैहिक सुखों के लिए तरसती रही है। उसमे सहज सयानेपन की गम्भीरता भी है और दबे हुए लड़कपन की अस्फुट चंचलता भी, किन्तु दोनों ही उसकी कुण्ठा जनित मान-सिक अवस्था को उस स्तर पर लाने मे असमर्थ हैं। रह-रहकर उसकी असुन्दरता उसके वैयक्तिक मानसिक विकास मे अवरोध प्रस्तुत करती रहती है।

---

1. जहाज का पंछी पृष्ठ २८६.

इस असुन्दरता के कारण विवाह न कर पाने पर भी वह मानसिक संतुलन नहीं खो बैठती। उसका बौद्धिक स्तर उच्च कोटि का है। वह जानती है कि इस लम्बे-चौड़े विश्व मे कहीं-न-कहीं से किसी-न-किसी दिन कोई-न-कोई प्राणी अवश्य ऐसा आयेगा जो उसकी सम्पत्ति को नहीं उसे देखेगा, उसके शुद्ध, पवित्र महान् हृदय को अपनायेगा। उसे खूब पता है कि विश्व के अधिक पुरुष धन-लोलुप हैं जो उससे नहीं उसकी सम्पत्ति से विवाह करने को तैयार हैं। वे केवल अपने सुख, शांति और सुविधा की बात सोचते है उन्हें नारी के हृदयगत भावोंमन तो मान करना आता नहीं उनका यथार्थ स्वरूप वे पहचान नहीं पाते हैं। अतः उसकी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि एक ऐसे पुरुष की खोज मे व्याकुल और ग्रस्त है जो उसके भावों को समझ सके, पहचान कर उनका मान कर सके।

और ऐसे एक पुरुष को (कथा नायक को) वह पहली नजर मे ही भाँप लेती है। लीला की समस्त क्रियाएँ, बोलना, बैठना और सोना शिष्ट ढंग की हैं। वह एक नौकरी माँगने आये व्यक्ति का पूरा मान करती है। उससे विराजिए कहकर बात करती है। कुछ अंध विश्वासो की कायल भी है। तभी जन्म दिवस पर पधारे हुये निठल्ले, आवारा से दीखने वाले नौकरी माँगने आये व्यक्ति के आगमन को भी बड़े गम्भीर रूप से लेती है। उसके आगमन को सौभाग्य का चिन्ह मानती है। अतः उसके आदर सत्कार मे कोई भी कमी नहीं रहने देती। इसमे उसका एक और उद्देश्य भी है। उसकी अन्तर्दृष्टि नायक का मन परखना चाहती है। उसके आगे विलास के सब साधन उपलब्ध कर उसके सहज स्वाभाविक स्वरूप को पहचानना चाहती है। इससे उसकी चरित्रगत दूरदर्शिता की झलक मिलती है। नायक के मतानुसार उसकी सहज प्रज्ञा बड़ी पैनी है।

लीला का कला-प्रेम उसके साहित्य-प्रेम से किसी भी अंश मे कम नहीं है जहाँ उसके रैक अंग्रेजी, हिन्दी और बंगला की पुस्तको से ठूँस-ठूँसकर भरे थे वहाँ लेखक ने यह भी लिखा है कि वे पुस्तकें ठूँस-ठूँसकर सजाई गई थी। उसने 'सजाई गई थीं' क्रिया का प्रयोग किया है, भरी गई थी का नहीं, जिससे पाठक को लीला की कलाप्रियता का परिचय प्राप्त हो। इतना ही नहीं अपने मत को और अधिक पुष्ट करने के लिए वह स्पष्ट शब्दों मे लिखता है ?—"पर उस ठुसाव मे भी न जाने क्या विशेषता थी जो अपना कलात्मक प्रभाव मन पर छोड़ती थी।"[१]

उसके ड्राइंग रूम मे विविध कलाकारो के चित्र कलात्मक ढंग से सजाकर टाँगे गये थे। उसकी मुस्कान भी एक कलात्मक ढंग की थी जो एकदम उसके चेहरे की समस्त कुरूपता को धो डालती थी। उसके वार्तालाप मे कलापूर्ण माधुर्य है, जो किसी

१. जहाज का पंछी पृष्ठ ३६१.

भी व्यक्ति, सभा या गोष्ठी पर अमिट प्रभाव रखता है। नायक की अन्तर्बुद्धि इसी कला का मूल्यांकन एक अर्ध प्रगतिवादी कम्यूनिस्ट आलोचक की भांति करती है जिसके फलस्वरूप अपने मन में अनेक द्वन्द्वों को नियन्त्रण देकर ला बिठाती है, उसके मतानुसार लीला की कला जीवन-संघर्ष के अभाव से अवकाश जनित बौद्धिक विलास का फल है। यह वह पहचानने में असमर्थ है कि लीला का जीवन भी महान् अभावों से भरा पड़ा है, उसकी भी अनेक समस्याएँ हैं, उसके मन में भी हजारों द्वन्द्व रात-दिन मचते रहते हैं। इतना होने पर भी वह कलात्मक, शिष्ट, सुन्दर जीवन बिता रही है। यही उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है।

भावुकता का एक अंश भी उसके चरित्र में चौकड़ी मारकर बैठा हुआ है। नायक द्वारा पंत की प्रसिद्ध कविता 'गंगा यमुना में आंसू जल' सुनकर वह रो पड़ती है और तत्काल ही मुस्करा भी पड़ती है। हम देखते हैं कि उसकी भावुकता भी कुण्ठित है। इसका कारण है प्रेमी के अभाव में शून्यता की अनुभूति। वह अपनी भावुकता का दिग्दर्शन किस को कराये। सामाजिक दृष्टि से यह सम्पन्न है, किन्तु वैयक्तिक तुला पर विपन्न है। प्रेम भिखारिनी यह नारी किसी एक की एक मन्द मुस्कान देखने के लिए तरस रही है। और प्रेमवल्लभ के मिल जाने पर किसी भी मूल्य पर उसको छोड़ना नहीं चाहती। उसे नायक से प्रेम हो जाता है। इसीलिए वह उसे कभी खिझाती है तो कभी नाना भांति रिझाती है। सकेतगत वाक्यों द्वारा अपने प्रेम का स्पष्टीकरण भी करती चलती है। वह नायक को नये-नये कपड़े सिलवा कर देती है। एक दिन तो स्पष्ट शब्दों में कह देती है। "हटो—तुम बड़े दुष्ट हो तुम !" और ऐसा कहने में एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति करती है। उसका रोम-रोम प्रेम-रस में द्रवीभूत होकर पुलकित हो उठता है। इस एक 'हटो' शब्द में क्या नहीं भरा है? नायक भी इसको सुन मानसिक द्वन्द्व की अनुभूति करता है। उसे ज्ञात हो जाता है कि वह सोने के पिंजड़े में आबद्ध है। यहां पर जोशीजी ने अपनी चिर परिचित कला का परिचय दिया है। उनके इस शब्द 'हटो' में न जाने कैसा जादू भरा है कि जिसका नशा 'सन्यासी' के नायक नन्दकिशोर पर और 'जहाज का पंछी' के नायक पर बराबर चढ़ता ही जाता है और अनेक उतार-चढ़ाव के पश्चात् पूर्ण प्रणय में परिणत होता है।

लीला अग्रगामी नारी संघ की प्रमुख सदस्या है। वह नारी के अधिकारों से परिचित है, उसकी सीमाओं और विवशताओं को पहचानती है, जानती है। नायक के विचारों में उसकी नारीत्व की अनुभूति तीव्र और उन्नत है। वह पुरुष के स्वार्थ और निर्दय स्वरूप को पहचानती है तभी तो नायक द्वारा सोचा गई सभी योजनाओं पर पानी फेरकर अनेक बार उसे भागने से रोक लेती है और भाग जाने पर भी अपने कौशल द्वारा सदैव के लिए बांध लाती है।

इस असुन्दरता के कारण विवाह न कर पाने पर भी वह मानसिक संतुलन नहीं खो बैठती। उसका बौद्धिक स्तर उच्च कोटि का है। वह जानती है कि इस लम्बे-चौड़े विश्व में कहीं-न-कहीं से किसी-न-किसी दिन कोई-न-कोई प्राणी अवश्य ऐसा आयेगा जो उसकी सम्पत्ति को नहीं उसे देखेगा, उसके शुद्ध, पवित्र महान् हृदय को अपनायेगा। उसे खूब पता है कि विश्व के अधिक पुरुष धन-लोलुप हैं जो उससे नहीं उसकी सम्पत्ति से विवाह करने को तैयार हैं। वे केवल अपने सुख, शांति और सुविधा की बात सोचते हैं उन्हें नारी के हृदयगत भावों का मान करना आता नहीं उनका यथार्थ स्वरूप वे पहचान नहीं पाते हैं। अतः उसकी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि एक ऐसे पुरुष की खोज में व्याकुल और प्रयत्न है जो उसके भावों को समझ सके, पहचान कर उनका मान कर सके।

और ऐसे एक पुरुष को (कथा नायक को) वह पहली नजर में ही भाँप लेती है। लीला की समस्त क्रियाएँ, बोलना, बैठना और सोना शिष्ट ढंग की हैं। वह एक नौकरी माँगने आये व्यक्ति का पूरा मान करती है। उससे विराजिए कहकर बात करती है। कुछ अप विश्वासों की कायल भी है। तभी जन्म दिवस पर पधारे… निठल्ले, आवारा से दीखने वाले नौकरी माँगने आये व्यक्ति के आगमन गम्भीर रूप से लेती है। उसके आगमन को सौभाग्य का चिन्ह… आदर सत्कार में कोई भी कमी नहीं रहने देती। इस… है। उसकी अन्तर्दृष्टि नायक का मन परखना… साधन उपलब्ध कर उसके… उसकी…

की इच्छा स्पष्ट में नायक के आगे व्यक्त कर देती है। 'अच्छा तो सुनो—मुझे कहीं ले चलो।' उसके ये शब्द भावुक प्रेम के प्रतीक है। जीवन की विकटतम समस्याओं का चिन्तन किये बिना ही वह नायक के साथ भाग निकलने को तैयार है। उसकी ओर से प्रेम का रंच भी संकेत न पाकर सदैव के लिए उसकी हो जाने को मचल उठने का द्योतक है। उसका प्रेम अबौद्धिक अवचेतन मन की सहज वासना की प्रेरणा से उपजा है और केवल मात्र आश्रय चाहता है, विकास चाहता है।

मिस साइमन—

मिस साइमन के रूप में हम एक अर्थ पिशाचिनी वेश्या स्वामिनी के दर्शन करते हैं। तीन भाषाएँ (फ्रांसीसी, जर्मन और अंग्रेजी) धड़ल्ले से बोल लेती है। उसके जन्म और कुल के विषय में किसी को यथार्थ ज्ञान नहीं। जितने मुह उतनी ही बातें सुनने में आती हैं। वह स्वयं किसी को अपने को जर्मन बताती है तो किसी को फ्रांसीसी या अंग्रेज। किसी भी भोली-भाली लड़की को अपनी बातों द्वारा अपने फंदे में फंसाने की कला में वह निपुण है।

कृपणता उसका जन्म जात गुण है। फ्रेंक ने ऐसी खसीस, हड्डीचूस औरत अपने जीवन में दूसरी नहीं देखी। युवतियों का व्यापार कर उनके यौवन से अर्जित धन में से उनके लिए वह दासाश भी व्यय नहीं करना चाहती। उसके यहाँ नारीत्व को तिल-तिल करके बेचने वाली नारी तन और मन से भूखी की भूखी रह जाती है। उसने तो शोषण सीखा है और शोषण का घृणित-से-घृणित रूप वह जानती है, प्रयोग में लाती है। ग्राहकों से पहिले ही पैसे वसूल कर लेती है। उनको डालडा घी भी नाप-तोल कर दिलाती है। भूठन तक छोड़ने की किसी को आशा नहीं देती। क्रुकेशा नाम की ईरानी लड़की को बेहोश हो जाने पर दूध दिये जाने पर बिगड़ उठती है। ममता को उसके कारण अपनी बच्ची को अफीम घोल कर पिलाना पड़ता है, ताकि वह निर्विघ्न दैत्य क्रीड़ा खेल सके।

पुलिस को वश में करने के अनेक ढंग वह जानती है। परन्तु समय-समय पर उसकी मुट्ठी गर्म करते रहना और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें लड़कियों का प्रलोभन देना ये ही दो ढंग अधिक प्रयोग में लाती है। नायक के विचार-अनुसार वह मनुष्य भक्षिणी है, जो अपने अड्डे में फंसी लड़कियों को तीन प्रकार से खाती है। एक तो उनका पोषण ठीक से नहीं होने देती, दूसरे पोषण के अभाव के बावजूद शरीर का दुहरा शोषण और फिर उनमें निर्मम ग्लानि की [illegible]
तन-मन और आत्मा का सत्व निचोड़ कर पीती है।

मिस साइमन कुछ अभिमानी, कुछ चिड़चिड़ी तथा कुछ ग्रोरी [illegible]
गारी है। ये तीनों बातें उसमें परम्परागत वंशगत रूप में मिलती हैं, [illegible]

वेला

वेला बाल वैधव्य की शिकार, अनमेल विवाह की बलि पर चढ़ी नारी है। सांवले रंग की होने पर भी बन-ठन कर रहती है और उसकी कजरारी आँखें तथा कपाल के नीचे तक पत्तियों के रूप में बड़ी सफाई से सँवारे गये बाल, कपाल के केन्द्र में अंगारे की तरह लाल फूल नुमा लौंग किसी भी पुरुष को साक्षात्कार में ही आकर्षित कर लेने के लिए काफी है।

एक बाल-विधवा का चरित्र पहले भी जोशीजी अंकित कर चुके हैं। वह है 'मुक्तिपथ' की नायिका सुनन्दा। किन्तु सुनन्दा और वेला के चरित्र में आकाश-पाताल का अन्तर है। सुनन्दा में यौवन के उन्माद के साथ-साथ सहज गम्भीरता भी है, वेदना के साथ-साथ परम धैर्य भी है और है जीवन के प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण। थोड़ी पढ़ी होने पर भी वह राजीव सदृश ग्रेजुएट नायक के साथ तर्क-वितर्क कर उसे हरा भी देती है। और वेला में है केवल यौवनमय चपलता, माधुर्य और अनन्त उन्माद। जहाँ सुनन्दा दिन भर ही नहीं रात को दो-दो बजे तक घर-गृहस्थी के कामों में उलझी रहती है, सबकी सेवा कर, सबको विश्राम की नींद सुलाकर तब दो घड़ी आराम करती है, वहाँ वेला एक लम्बी चौड़ी गृहस्थी के छोटे-मोटे काम करने से भी कतराती है। जब प्यारे और उसकी पत्नी घाट पर कपड़े धोने चले जाते हैं तब वह घर पर निठल्ली बैठ कर फिल्मी गीत गाया करती है, और स्वप्नों के संसार में खोई रहती है।

वेला में काम-दमन (Sex-depression) जनित ग्रन्थियाँ विद्यमान हैं। उसकी काम चेष्टाएँ, वासना की उच्छृंखलता सब दमित काम के परिणाम हैं। नायक को देखते ही उसका दमित काम अति वेग से बहने लगता है। वह उसे छिप-छिप कर देखती है। नाना भाँति रिझाती है। भीतर गलियारे में जाकर, 'तेरे बिन छलिया रे बाजे न मुरलिया रे', आदि गीत गाती है। उसे दबकर, सिमटकर रहना ही नहीं आता। तभी वह ससुराल में नहीं रह पाई। मायके आकर विविध भाँति नाचने-कूदने लगती है। सप्ताह में एक पिक्चर भी अवश्य देख लेती है। जिसके फलस्वरूप उसकी समस्त निष्क्रियता एवं विफल महत्वाकांक्षा तथा कुण्ठित जीवन को नई ही दिशा मिलती है। उसके मन में नये चित्र खिंचते है। वह स्वप्न लोक में विहार करने लगती है। प्रेम के स्वप्न देखती है। वह नायक से हँसी करने लगती है, उसे मिस्टर बाथरमैन कह कर पुकारती है।

वेला का प्रेम एक भावुक मुग्धा का प्रेम है। उसे प्रेम के वास्तविक रूप की समस्याओं का ज्ञान नहीं है, सामाजिक पक्ष का पता नहीं है। वह प्रेम को व्यक्तिगत सम्पत्ति समझ कर उस पर अधिकार रखना चाहती है, उसका उपभोग करना चाहती है। तभी तो वह एकाकी घेरे से ऊब चुकी है और संकुचित दायरे से बाहर निकलने

मिस साइमन—

मिस साइमन में हम एक ऐसी विलासिनी वेश्या स्वामिनी के दर्शन करते हैं। तीन भाषाएं (फ्रांसीसी, जर्मन और अंग्रेजी) धड़ल्ले से बोल लेती है। उसके जन्म और कुल के विषय में किसी का यथार्थ ज्ञान नहीं। जितने मुह उतनी ही बातें सुनने में आती हैं। यह स्वयं किसी को अपने को जर्मन बताती है तो किसी को फ्रांसीसी या अंग्रेज। किसी भी भोली भाली लड़की को अपनी बातों द्वारा अपने फंदे में फंसाने की कला में यह निपुण है।

[illegible] उसका जन्म [illegible] हुआ है। [illegible] ने ऐसी मसीहा, हड्डीमुस औरत [illegible] जीवन में दूसरी नहीं देखी। कुरूपता का व्यापार कर उनके यौवन से अर्जित धन में से उनके लिए एक छदाम भी व्यय नहीं करना चाहती। उसके यहां नारीत्व को तिल-तिल करके बेचने वाली नारी तन और मन से भूखी की भूखी रह जाती है। उसका तो शोषण होता है और शासन का पृणित-से-घृणित रूप वह जानती है, प्रयोग में लाती है। [illegible] से [illegible] पैसे वसूल कर लेती है। उनको डाक्टर की भी [illegible] कर दिखाती है। भूखा मर [illegible] भी किसी को आज्ञा नहीं देती। [illegible] नाम की [illegible] लड़की को बेहोश हो जाने पर दूध दिये जाने पर बिगड़ उठती है। ममता को उसके कारण अपनी बच्ची को अफीम घोल कर पिलाना पड़ता है, ताकि वह निर्विघ्न [illegible] सके।

पुलिस को वश में करने के अनेक ढंग वह जानती है। परन्तु समय-समय पर उनकी मुट्ठी गर्म करते रहना और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें लड़कियों का [illegible] देना ये ही दो ढंग अधिक प्रयोग में लाती है। नायक के विचार-अनुसार वह मनुष्य भक्षिणी है, जो अपने अड्डे में फसी लड़कियों को तीन प्रकार से खाती है। एक तो उनका पोषण ठीक से नहीं होने देती, दूसरे पोषण के अभाव के बावजूद शरीर का दुहरा शोषण और फिर उनमें निर्मम ग्लानि की मर्मशोषी भावना भर तन-मन और आत्मा का सत्व निचोड़ कर पीती है।

मिस साइमन कुछ अभिमानी, कुछ चिड़चिड़ी तथा कुछ क्रोधी स्वभाव की नारी है। ये तीनों बातें उसमें परम्परागत वंशगत रूप में मिलती हैं, साधारणतः इस

'[illegible]' में व्यक्ति के साथ समाज का सफल और सजीव चित्रण हुआ है। पराजयशील, निष्प्रभाव और कुंठित व्यक्तित्व के कारण ही नायक को कष्ट उठाने पड़े हों ऐसी बात ही लेखक ने नहीं लिखी है अपितु, सामाजिक एवं सामूहिक परिस्थितियाँ भी इसके लिए जिम्मेदार हैं ऐसा उसने सिद्ध करने का यत्न किया है। आकाशचारी यान, अणुयान और रात को भी दिन में परिणत कर देने वाली प्रकाशोत्पादनशील बिजली के होते हुए भी आज का साधारण जन सुरक्षित होने पर भी सुखपूर्वक जीवन बिताने में असमर्थ है। बेकारी के इस युग में उसकी शिक्षा उसके लिए वरदान नहीं अभिशाप सिद्ध हो रही है। उसका मान उसके शुद्ध मनोभावों और उच्च बौद्धिक स्तर के कारण नहीं अपितु स्वच्छ कपड़ों और स्वस्थ शरीर के कारण होता है। एक रसोइया भी रवीन्द्र जैसी महाविभूतियों के साहित्य से, उनके व्यक्तित्व से परिचित हो सकता है, शिष्ट समाज के लिए यह कल्पनातीत बात है। उसे प्रान्तीयता के घेरे से निकाल कर अखिल विश्व का पुजारी कहने का पुरस्कार नौकरी से अलग कर दिए जाने के रूप में मिलता है और वह भी एक अभियोग के साथ। ऐसे विचार एक प्रच्छन्न कम्युनिस्ट के ही हो सकते हैं, किंचित पहेली है। अखिल मानवता में विश्वास रखना, विश्व को एक कुटुम्ब मानना भारत की इस चिर परंपरा को भुला कर इसे कम्युनिस्ट पूंजी मानकर नायक के मत्थे मढ़ देना तो कुछ अजीब-सा लगता है।

अपनी चरम दुर्गति की अवस्था में भी, परम कष्टमय परिस्थिति में भी नायक प्रसन्न रहता है। आशावाद और आदर्शवाद का सबल नहीं छोड़ता, सामाजिक अवरोधों और मार्मिक विघ्नों से सतत संघर्ष करता रहता है। इसमें हमें आधुनिक युग में वर्तमान मानव की वैयक्तिक चेतना की झलक मिलती है। हर व्यक्ति ईमानदारी से रहना चाहता है, किन्तु समाज उसे पग-पग पर ठोकरें मारता है। उसका बाह्य

देखता है जो उसी के शब्दों में वर्णन किया जाता है—"वह मूक दृश्य बहुत ही सुन्दर, सहज, सुखद और अनिर्वचनीय मधुरिमामय है। दो परस्पर अपरिचित युवा प्राणी के प्रथम संयोजन की जो रहस्यमयी क्रिया-प्रतिक्रिया एक अप्रत्याशित वातावरण में, आशा और आशंकाजनित उच्छ्वासों के बीच चल रही थी, उसका एक मात्र अदृश्य साक्षी समग्र विश्व में अकेला मैं ही था" प्रेम की चर्चा आज के युग में, विषम भौतिक संघर्ष के काल में कुछ जचती नहीं, फिर भी इसकी नितान्त उपेक्षा कोई नहीं कर पाता बड़े-से-बड़े यथार्थवादी लेखक भी किसी न किसी रूप में इसका प्रदर्शन कर ही बैठते हैं। गोदान में तो प्रेम-लीला में मग्न अनेक जोड़े दृष्टिगोचर होते हैं। और तो और बूढ़े भी इश्क लड़ाते हैं, मालती मेहता का प्रेम भी अपूर्व है। 'जहाज का पंछी' के लेखक ने अधिक यथार्थवादी धरा पर प्रेम का अवलोकन किया है। नायक जब तक जीवन की आर्थिक परिस्थितियों को बदल नहीं देता वह प्रेम का स्वप्न नहीं देखता। वेला के शुद्ध प्रेम को वह इसीलिए ठुकराता है। लीला का जीवन-साथी वह तभी बनता है जब वह उसकी योजनाओं को स्वीकार करके सर्वस्व जन-हित त्याग देती है।

उपन्यास में नव युगीन युवक समाज में आ रही नव चेतना का भी चित्रण किया गया है। समाज में बढ़ रहे दुराचार को, देश में बढ़ रहे भ्रष्टाचार को रोकने के लिए नवोत्साह से पूर्ण युवक अफसरों की आवश्यकता पर भी लेखक ने जोर दिया है। उनका रवैया सहानुभूतिपूर्ण एवं संवेदनशील होना चाहिए। नायक को जब पुलिस द्वारा मजिस्ट्रेट के आगे खड़ा किया गया और उसके नाम की [illegible] 'बनरंजन्म प्राप्त दी टग' को उसके दोषी होने के सबूत के तौर पर पेश किया गया तो एक दम मजिस्ट्रेट ने भावुकता में बहकर उसके विरुद्ध निर्णय नहीं सुना दिया अपितु जाँच-पड़ताल करके उसे निर्दोष घोषित कर पुन: [illegible] दिया और साथ ही समाज के [illegible] से सावधान रहने की चेतावनी भी दी। उसे देखकर नायक के मन पर गुमस्वार पड़ा कि नई पीढ़ी के [illegible] भीतर एक नया आदर्श, नई चेतना और उदार विचार भरे पड़े हैं [illegible] उठाया जा सकता है। एक ऐसा समाज जिसमें पुलिस [illegible] जैसा चाहे बर्ताव करे उसे पसन्द नहीं। इससे [illegible] सम्भावना है।

[illegible] चाचा और पहलवान के अखाड़े में [illegible] है। [illegible] पर जिज्ञासा एवं दर्प नायक की काया-कल्प ही कर देता है। [illegible] स्फूर्ति, नव तेज और नव संस्कार लेकर नये दृष्टिकोण के साथ [illegible] है। [illegible] मात्र से उसकी सहानुभूति है। वह उसके [illegible] है। उसने उसके अनेक रूप देखे हैं—[illegible]

प्रेम को तिरस्कार देना, अनैतिक व्यवसाय में लीन रहना, कुबेरा और मुनिया तथा सर्प निगलिनी गार्डमन और इन सबसे ऊपर कुरूप होने पर भी सुन्दर मनीषी लीला तथा विदुषी दीप्ति ने उसे आधुनिक युगीन नारी से परिचित कराया है, जो परिस्थिति-वश कठोर होने पर भी स्वभावतः कोमल है त्याग सेवा और सरल स्नेह की मूर्ति है।

प्रतिपल के ज्वलन्त यथार्थ के सम्पर्क में रहने के कारण नायक के जीवन गत अनुभव अनन्त और गहन हैं। उसे चारों ओर हाहाकार, अशान्ति और अव्यवस्था दृष्टिगोचर होती है, किन्तु एक विश्वास भी उसके अवचेतन मन में विद्यमान है—वह मानवता का स्वर्णोदय देख रहा है उसकी कल्पना कर रहा है। उसे दृढ़ विश्वास है कि एक-न-एक दिन जीवन की सामूहिक व्यवस्था अवश्य ही बदलेगी और मानव-मानव के बीच का व्यवधान हट कर ही रहेगा। तब ही उसकी दृढ़ रहस्यात्मक चेतना सजग रहेगी। वैयक्तिक चेतना का एकांकी विकास न उपयोगी ही है न वाञ्छनीय ही। जब सभी की वैयक्तिक चेतना पूर्ण रूप से विकसित होकर सामूहिक के विकास में योग देवे तभी उसकी सार्थकता है तभी उसका अस्तित्व बना रह सकता है। यही है जहाज के पंछी की नव चेतना—नव युगीन चेतना।